श्री जिनेन्द्रायनमः ।

जैनाचार्य्या श्री १००८ श्री मतीपार्वतीजी के

जीवनचरित्रका

प्रथम भाग ।

अर्थात्

मनुष्यमात्र का जीवन सुधार अध्यात्मिक शिक्षाओं का भण्डार और सत्यासत्य की परीक्षा के लिये कसौटीवत् है ।

जिसको

ला० रल्लाराम साहब अनरेरी मैजिस्ट्रेट जालन्धर के सुपुत्र ला० पन्नालाल ने सं० १९७० वि० में उर्दू में लिखा ।

और

ला० निहालचन्द्र के सुपुत्र ला० दयालचन्द्र ने उर्दू से हिन्दी में अनुवाद कराया ।

और

स्यालकोट निवासी स्वर्गीय लाला रुलदुमल की पुत्रवधु वैरागन बाई पार्वती ने निज द्रव्य से

सं० २४५० श्रीमहावीर, सं० १९८० वि० में

बाम्बे मशीन प्रेस लाहौर में मैनेजर शरत् चन्द्र लखनपाल के अधिकार से छपा कर प्रकाशित किया ।

प्रथमबार १०००] सन् १९२३ ई० मूल्य

प्रस्तावना

* ओं असि आउसाय नमः *

धन्य है यह भारत खण्ड की आर्य्य देश भूमि कि जिस मे सहस्रों महा पुरुष हो चुके हैं जिनमें से कई एक महा पुरुषों के जीवन चरित्र भी विद्यमान हैं जिन से हमको बडी२ उच्च धार्मिक शिक्षाए मिलती हैं और उनसे आत्माका उद्धार होताहै इसलिये ऐसे समय में जब कि स्थान स्थान यन्त्रालय विद्यमानहैं जिनके प्रयोगसे प्रत्येक मतके शास्त्र व प्रत्येक मतके विद्वानोके जीवन चरित्र प्रकाशित हो रहे हैं तो फिर हमको भी उचित है कि किसी धर्मात्मा भक्त जन अथवा सत्पुरुष व सत्यव्रती स्त्रियो का जीवन चरित्र पुस्तक रूपमे लिख कर प्रकाशित करे जिनका जीवन आत्मिक शिक्षाओं का लाभदायक हो जैसा किसी कविने कहा भी है—

जने तो जननी भक्त जन, या दाता या सूर ।
नही तो वंध्या ही भली, काहे गवावे नूर ॥

इसका अर्थ यह है कि मातायदि सतानको जन्म दे तो ऐसी सतान हो कि या तो परमात्माकी भक्त हो वा दातार हो वा शूरवीर हो अन्यथा वंध्या ही भली है, अपना यौवन भी क्यों गवावे क्योंकि मूर्ख सन्तान अपने पूर्वपुरुषों के नामको भी कलंकित कर देती है इस लिए आवश्यकहै कि प्रत्येक मनुष्य अपनी माताके जन्म देनेको सफल करे अर्थात् इन तीनो गुणो से युक्त हों परन्तु इन तीन गुणों वाला बनना कोई सहज बात नही है किन्तु अत्यन्त कठिन है इस लिए बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिए कि इन तीनों गुणों के साधन के लिये प्रयत्न करे । सब से पहला साधन यह है कि जो महा पुरुष इन तीनों गुणोंसे युक्त थे और हैं उन के जीवन चरित्रों को बडे विचार के साथ पढें और सोचें कि किस२ प्रकार इन महापुरुषों ने अपने जीवनको सुधाराहै किन्तु जीवनचरित्रका पढना एक साधारण विषय नहीं है प्रत्युत असंख्य लाभ पहुचाने वाला है । महापुरुषोंका

जीवन पाठकों के हृदय पर इतना प्रभाव डालता है कि उनकी प्रकृति स्वयमेव सद्गुणोंकी ओर प्रवृत्त हो जाती है और वह साधनाओं द्वारा शनैः २ महान् पद को प्राप्त करनेके योग्य हो सकते हैं क्योंकि जीवन चरित्र के पाठसे सांसारिक और धार्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएं मिलसकती हैं इस लिये महा पुरुषों का जीवनचरित्र पढना अत्यन्त आवश्यक है।

बडे हर्ष का विषय है कि इस समयमें भी जिसको कि कलियुग कहा जाता है अद्वितीय पण्डिता ज्ञानामृत वर्षिणी वाणी सती परम उपकारिका भक्त पद दातार पद और शूर पद की धारिका सत्य धर्म उपदेशिका बालब्रह्मचारिणी जैनाचार्य्या श्री १००८ महासती श्रीमती पार्वतीजी का जीवन इस भारत भूमिको पवित्र कर रहा है और भारत वर्षके नर नारियोंके हृदयोंको सत्य ज्ञान के प्रकाशसे मोक्षके योग्य बना रहा है, आपके भक्तिपदका वर्णन करना तो लेखिनी की शक्ति से बाहर है क्योंकि आपने बालकपनसे ही अपना जीवन परमेश्वर की भक्तिमें अर्पण किया हुआ है, और आपका दातार पदतो जगत् प्रसिद्ध है कि आप राजाओं से लेकर रंक जनों तक नि:स्वार्थ और निरीह भावसे सत्य ज्ञान जैसे अमूल्य पदार्थका प्रतिदिन दान करती है और शौर्य्य भावका वर्णन करने में तो मेरी जिह्वा शक्ति से हीन है अर्थात् आप बाल्यावस्था से ही शीत, ताप, मान, अपमान आदि सहन रूप कठिन वृत्तिओं का साधन करती हुई संयम पालरही हैं और स्त्री हो कर भी पुरुष व स्त्रियोंकी सभा में निर्भय हो कर जिनेन्द्र भाषित सत्य ज्ञानका इस वीरतासे प्रकाश करतीहैं कि श्रोताजन अति आश्चर्यको प्राप्त हो कर धन्य२ करतेहैं और बहुतसे कवियोंने आपकी भजनोंमें भी प्रशंसा की है। एक कविके भजनका एक पद में पाठकोंकी भेंट करता हूं। पद " चौंकी पर बैठिओंकी देखो जैसे सिंह सधूर सुनो " अर्थात् जब आप चौकी पर व्याख्यान देने को बैठती हैं तो आप सिंह सधूर अर्थात् शेर बबर की न्याई शोभा पाती हैं निस्सन्देह यह सत्य है इसमें तनक भी झूठ नही यदि इससे भी बढ कर उपमा दी जावे तो भी उचितहै। इस पंचम दुखम कालमे आपने सच्चे सुखको प्राप्त किया है और भव जीवों को सच्चा सुख प्राप्त कराने का उपाय

ऐसे सरल मनोहर प्रभावशाली मीठे वचनों में कथन करती हैं कि जिससे अनेक भद्र पुरुषों व स्त्रियोंने सासारिक सकल क्लेशों को और विषय सुखों को छोड कर अपना सारा जीवन परमेश्वर की स्मृति में अर्पण कर दिया है और बहुत से पुरुष व स्त्रियोंने गृहस्थ में रह कर ही दया दानादि धर्म धारण किया है बहुत लोग कुमार्ग से हटकर सुमार्ग पर चलने लग गये हैं यहा तक कि कई कसाई और झटकई जैसे निर्दयी पुरुषों के हृदयभी पिघल गए अर्थात् बहुत लोगोंने हिंसा, मिथ्या, चोरी, शिकार, मद्य, मास भक्षण आदि पापोंका परित्याग कर दिया है तथा आपने अपने पवित्र और उच्च विचारोंको कई पुस्तकों द्वारा भी प्रकाशित किया है जिनकी सूची आपको इसी पुस्तकमें मिलेगी, किं यहुना, आपके पवित्र उपदेशों से भारतीय नर नारियों को धर्म सम्बन्धी अनेक लाभ हुए हैं और हो रहे हैं और होएगे, यथा दृष्टान्त जैसे राजा महाराजा अपनी प्रजाकी रक्षा व सुख के कारण लाखा रुपया खर्च करकर के जिन्ह हिंसा, झूठ, चोरी, जूआ, जिनाकारी (व्यभिचार) आदिक पापों के करने से रोकते हैं। उन्ही पापों का आप अपने प्रभाव शाली उपदेशों और वैराग्य भरे शब्दों से ऐसा खण्डन करती हैं कि सैकडों क्या सहस्रों पुरुषों ने सर्वथा इन पापों का त्याग कर दिया है, इस के अनन्तर आपके उपदेशों में एक यह भी बडी महिमा है कि जिस पुरुष ने पूर्वोक्त कर्मों का त्याग कर दिया है, फिर उन कर्मों का करना तो एक ओर रहा प्रत्युत मन से भी उन कर्मों की घृणा करने लगजाता है, (किन्तु) राजाओं के प्रबन्धो (इन्तिजामों) से डरते हुए तो लोग प्रकट पाप नही कर सकते, परन्तु प्रछन्न (पोशीदा) पापों से नहीं भी हटने, और जो सत्य शास्त्रों के सुनने वाले हैं अर्थात् सच्चे गुरु जोधन और कामिनी के त्यागी हैं (आलम अमल हैं), इन के समझाये हुए अर्थात् परमेश्वर और परलोक को मानते हुए प्रकट तो कहा, प्रछन्न (छिपकर) भी पाप नहीं करते, इत्यर्थ धन्य है यह आर्यदेश, और धन्य है आपका नगर, कुल, वश जिस में आप जैसी श्रेष्ट पुत्री उत्पन्न हुई ॥

लाला रलाराम जी आनरेरीमैजिस्ट्रेट जालन्धर नगर के सुपुत्र लाला पन्नालालजी ने आपके उपरोक्त गुणों को देखकर

विचार किया कि ऐसी महान पवित्र आत्मा का पूर्णतया जीवन चरित्र अवश्य होना चाहिये, जिससे कि बहुत मनुष्यों का उद्धार हो सुतरा उन्होंने जैनाचार्य्या श्री १००८ श्री महामती पार्वती जी महाराज की शिष्या श्री सती श्रीमती भगवान देवी जी तस्या. शिष्या श्री सती श्रीमती द्रौपदीजी ने जो स० १९६६ वि० तक का आपका जीवन चरित्र लिखा था और रावलपिण्डी के भाइओं ने स० १९६६ में छपाया था, उसको पढा, वह अत्यन्त सूक्ष्म (छोटा) था इसलिये लाला पन्नालाल जी ने उसको पूरा करने के लिये फिर बडे प्रयत्न से उर्दू में लिखा जिसमें श्री महासती पार्वतीजी महाराज के जन्म स० १९११ वि० से लगा स० १९७० वि० तक का वर्णन है, इस पुस्तक में श्री महासती जी की बाल्यावस्था, विद्याभ्यास, सयम वृत्तिका धारण करना अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, निर्ममत्व, इन पाच महाव्रतों का आजीवन धारण करना और जैन की फकीरी की कठिन साधनाओं को सहर्ष सहन करना और देश देश, नगर नगर, गाओं गाओं में जैन वृत्ति के अनुसार पैदल चल कर सत्य उपदेश का पवित्र दान करना जिससे अच्छे अच्छे उच्च कुलों की सुशीला महिलाओं का योग वृत्ति का धारण करना, और भिन्नमतों के पुरुषों के प्रश्न और महासती श्री पार्वती जी महाराज के यथार्थ उत्तर, इत्यादिक वर्णन सक्षेप से लिखे गये हैं। इसके अनन्तर जैनाचार्य्या श्री १००८ श्री महासती पार्वती जी महाराजकी रची हुई कई उपयोगी पुस्तकें भी विद्यमान हैं यथा—

(१) "ज्ञानदीपिका" जिसके प्रथम भागमें, सवेगी श्री आत्मारामजी कृतजैन तत्वादर्श ग्रन्थ में से कई एक मिथ्यावादों के खण्डन हैं। द्वितीय भाग में सक्षेप मात्र देव गुरु धर्म के लक्षण और साधु धर्म व गृहस्थ धर्म के साधन की विधि तथा सामायिक का पाठ और सामायिक की विधि, और स्त्री व पुरुषों के लिये यत्न विवेक के विषय में हित शिक्षायें भी लिखी हैं, प्रथमा वृत्ति स० १९४९ वि० में छपा, कीमत ॥)

(२) "जैन धर्मके १० दम नियम" पुस्तकाकार जिसमें संक्षेप से जैन धर्म के मन्तव्य और कर्तव्य दिखलाये हैं जो बालकों को कण्ठस्थ कराने के योग्य हैं प्रथम बार स० १९५१ वि० में छपा।

(३) "सम्यक्त सूर्योदय जैन" जिसमें ईश्वर को कर्ता मानने में ईश्वर में चार दोष सिद्ध करके दिखलाये गये हैं और प्रारब्ध कर्म में कर्म कर्ता और क्रियमाण कर्म में जीव कर्ता है ऐसा अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया गया है और साथ में पदार्थ ज्ञान (सायंस) अर्थात् जड़ चेतन का विचार (फिलास्फी) (सम्यक्त का मूल तत्व का विचार) भी कुछ लिखा है और नास्तिकत्व आस्तिकत्व का खण्डन मण्डन भी लिखा है स० १९६१ वि० में छपा, कीमत १) रुपया।

(४) "सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन," जिसमें जैन सूत्रानुसार ४ निक्षेपों का स्वरूप दिखला कर दृष्टान्त सहित जड़ मूर्ति पूजा का खण्डन और दया सत्यादि धर्म का मण्डन किया है, स० १९६१ वि० में छपा कीमत ॥।) आने ॥

(५) "गोरक्षा उपदेश" जिसमें अनुकम्पा का स्वरूप भली भान्ति दिखलाया है, प्रथम बार स० १९६७ वि० में छपा।

(६) "कुव्यसन निषेध" जिसमें जूआआदि सात कुव्यसनों का भिन्न २ स्वरूप और उन दुष्कर्मों के दुष्फल दिखलाये हैं यह पुस्तक बालकों तथा नव युवकों को अवश्य पढने के योग्य है जिस से वे अपने अमोलक जन्म को पवित्र बनाये रखें सं० १९७२ वि० में छपा।

(७) "मुक्ति निर्णय प्रकाश" जिसमें जैन मतानुसार मुक्ति का स्वरूप और मुक्ति की साधना का सक्षेपत. यथार्थ दृष्टात सहित वर्णन किया है स० १९७३ वि० में छपा।

(८) "श्री नेमिनाथ राजीमती जीवन चरित्र" जिसमें २२ वें जैन धर्मावतार श्री मद्भगवान् नेमिनाथ और श्रीमती राजीमती जी के दया, वैराग्य और ब्रह्मचर्य्य आदि परमगुण अतिमनोहर शब्दों में लिखकर दिखलाये हैं, स० १९७५ वि० में छपा।

(९) "ब्रह्मचर्य्य विधि" जिसमें ब्रह्मचर्य्य और ब्रह्मर्य्य की साधना का स्वरूप दृष्टान्त सहित, स्त्री व पुरुषों के हृदय में दर्पण के समान झलकाया है इस ग्रन्थ के देखने से स्त्री व पुरुषों को विशेष करके धर्मात्माओं को भली भाति ब्रह्मर्य्य परम धर्म के पालने की रुचि होगी, स० १९७६ वि० में छपा।

होगा उससे जैनाचार्य्या महासती श्री १००८ श्रीमती पार्वती जी महाराज का जीवन चरित्र हो तथा इन्ही की रची हुई पुस्तकें छपवाई जाया करेंगी और उनमें वैरागन बाई पार्वती जी का नाम भी लिखा जाया करेगा इस लिये में वैरागन बाई पार्वती जी का हार्दिक (दिली) धन्यवाद करता हू।

शुभ भूयात्

श्रीसघका हितेच्छु—

१ ज्येष्ठ १९८० } लाला दयालचन्द्र का सुपुत्र रतचन्द्र जैनी।



प्रथम भाग सूची पत्रम् ।

श्रीवीतरागायनमः

जैनाचार्य्याश्रीमतीपार्वतीजीका

जीवनचरित्र

भारत वर्ष के संयुक्त प्रान्त (आगरा व अवध) में आगरा के निकट पुनीत खेड़ा भोड़पुरी नामका एक गांव बसता है. यहां चौहान राजपूत अधिकतर बसते है. इस कारण इस गांवको चौहानो का गांव भी कहते हैं.

महासती पार्वतीजी का जन्म इसी गांवमे हुआ. इनके पिता बलदेवसिंह जी एक प्रतिष्ठित ज़मीदार थे. इनकी माता का नाम धनवन्ती जी था; जो कि साक्षात् पतिव्रतधर्म की मूर्त्ति थी.

महासतीजी के माता पिता सौभाग्य, सदा चार और विद्वान भी थे वहां के निवासी उनके गुणो पर प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा किया करते थे. कि यह प्रीति और प्रेमकी जीवित व जाग्रत युगल छवि है. इसी कारण इनका घर सदैव आनन्द और उल्लास से भरपूर रहता था. क्यों ना

रहे जिस घर में स्त्री और पुरुष दोनों प्रेमके रंगमें रचे हों; वहां बारहों मास आनन्द बर्सता है.

यथा श्रीमान् जीवानन्द भट्टाचार्य्य विद्यासागरजी ने अपने चाणकशतक कलकत्ता सरस्वती यन्त्रे मुद्रित ईस्वी १८८६ पृष्टि २५ वी श्लोक ९०वें में लिखा हैः—

सुभिक्षं कृषके नित्यं, नित्यं सुख मरोगिणि.
भार्य्या भर्तुः प्रिया यस्य, तस्य नित्योत्सवं गृहम्

अर्थः–समय पर वर्षा होजाने से कृषिकारों को सुख होता है. निरोगी मनुष्य को सदैव सुख है. तथा जिसके घरमें पति पत्नी का परस्पर प्रीतिभाव है; उस घर में सदैव आनन्द व मंगल है.

इसके अतिरिक्त श्रीमहासतीपार्वतीजीका इस गृह में जन्म होना था; फिर क्यों न आनन्द होता.

दोहा–ज्यों वृष्टि के आदि में, घटा होत सुखकार.
उदय चन्द्र की आदि तिथि, शुक्ला नाम विचार.

अर्थात्–जैसे वृष्टि होने से कुछ समय पहले काली घटा प्यासे और सूखे नेत्र तथा हृदयों को सुख देती है और जिस प्रकार चन्द्रमा द्वितीया को दृष्टि गोचर होता [illegible] (एकम्) भी शुक्ल पक्ष [illegible] है. उसी

प्रकार महा सतीजीके जन्म से पूर्व ही यह घर सुख और आनन्द से परिपूर्ण था.

दोहा.

तारीकी जाती रही पहले ही यह मान.
सूर्य्य अभी निकला नहीं रौशन हुआ जहान.



श्रीमहासतीजी का जन्म और नाम संस्कार.

श्री महासती पार्वतीजी महाराजका जन्म श्रीमती धनवन्तीजी की कुक्षि से सं० १९११ विक्रमी मे हुआ. महासती के जन्म होने पर उनके माता पिता और सम्वन्धियों को वड़ी प्रसन्नता हुई आपके पिताजी ने आपके जन्म के कुछ दिन पश्चात् एक योग्य ज्योतिपी को पूछा कि इस कन्या का नाम क्या रखना चाहिये.

ज्योतिपी ने विचार करके उत्तर दिया कि इस कन्याके जन्म ग्रह के अनुसार तथा लक्षणों से ऐसा जान पड़ता है कि यह वड़ी गुणवती होगी मेरी सम्मति में इसका नाम (पार्वती) रखना चाहिये. यह सुन कर आपके माता पिता वड़े प्रसन्न हुए और इसी नाम से कन्या का नामकरण संस्कार

स्वामीजी महाराज के मस्तक पर एक असाधारण शान्त तेज था. आपके पिताजी ने जाते ही उनके चरणों में यथाविधि प्रणाम किया और बड़ी श्रद्धा से प्रार्थना की कि महाराज ! मैं एक बड़े संकट में पड़ा हूं. स्वामीजी ने सहज भाव से कहा कि भाई चिन्ता न कर. संकट भी दो तीन दिन में कट जाने वाला है. यह सुनकर आपके पिताजी को पूर्णरूप से सन्तोष हुआ और प्रणाम करके अपने घर चले आये.

दैव वशात् तीन ही दिन में अभियोग का निर्णय होगया; और विजय लक्ष्मी आपके पिता जी को प्राप्त हुई (मुक़दमा फते होगया) आपके पिताजी को उसी समय निश्चय होगया कि जैन मुनियों का वचन सत्य और निर्भ्रान्त होता है.

यह पहली घटना थी; जिसने आपके पिता जी के हृदय में जैन धर्म का बीज बोदिया. इसके पश्चात् वह समय मिलने पर स्वामीजी महाराज के दर्शनो के लिये जाते रहे.

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा.

एक दिन श्रीमती महासती पार्वतीजी महाराज के पिताजी आपको भी आगरे में अपने साथ ले गए और स्वामी कँवरसेनजी महाराज के दर्शनार्थ गए. स्वामीजी ने उनके साथ आपको देखकर पूछा कि यह कन्या किसकी है. आपके पिताजी ने उत्तर दिया कि आपकी कृपा से मेरी है. इस पर स्वामीजी महाराज ने श्रीमतीजी के हाथकी रेखाओ को दूर से ध्यान पूर्वक देखा और विचार करके कहा कि इस कन्या मे कई लक्षण तो ऐसे पायेजाते हैं जो शास्त्रों में पुण्यवान् प्राणियों के अर्थात् राजा महाराजाओं के अथवा योगियों के प्रतिपादन किये है. इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि यह कन्या पुण्यवती है. या तो यह कन्या राज्य करेगी अथवा योग वृत्ति मे पूर्ण होगी. फिर सोचकर वतलाया कि स्त्री को राज्य मिलना तो कठिन सी वात है परन्तु (योगवृत्ति) होजाय तो अच्छा है. जिससे परलोक भी सुधर जाता है. यदि यह कन्या योगवृत्ति को धारण करेगी तो यम नियम को पूर्णतया पालन करेगी. इसलिये यह कन्या वड़ी गुणवतीविदुषी और पण्डिता होगी. और इसकी

सेवा भक्ति में बहुत लोक पुरुष व स्त्रियें सदैव उपस्थित रहा करेंगे. आपके पिताजी स्वामीजी महाराज के इन अमृतोपम मधुर वचनों से बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि स्वामीजी महाराज जो कुछ आपने कहा है. सत्य है परन्तु अपनी सन्तान को साधु बनाना यह अत्यन्त कठिन है स्वामीजी बोले अच्छा इस कन्या को विद्याभ्यास तो कराओ फिर जैसा होगा देखा जायगाः इस पर श्रीमतीजी महाराज के पिताजी ने कहा. आपका कथन सत्य है परन्तु पढ़ावें किससे. स्वामीजी बोले हम पढ़ा सकते हैं. बलदेवसिंहजी ने कहा बहुत अच्छा इस की माता के साथ विचार करके देखा जायेगा.

आपके पिताजी श्रीस्वामीजी महाराज को प्रणाम करके चले आये. और उपरोक्त सब वृत्तान्त श्रीमती धनवन्तीजी को कह सुनाया. इस विषय पर आपके माता पितामें कुछ समय तक विचार होता रहा और अन्त में यह निश्चित हुआ कि राज्य हो वा त्याग हो यह सब प्रारब्ध के हाथ मे है परन्तु विद्या का पढ़ाना तो प्रत्येक अवस्था मे आवश्यक है. इसलिये उन्होने, अपने मन में यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि जिस प्रकार भी होसके इस

कन्या को विद्या पढ़ाने का प्रयत्न किया जाये.

सुतरां एक शुभ मुहूर्त्त पर आपको श्रीस्वामी जी महाराज के चरणों में लेगये. उस समय आप की आयु सात वर्षके लगभग थी. वलदेव सिहजी की प्रार्थना पर स्वामीजी महाराजने आपको पढ़ाना स्वीकार तो करलिया; परन्तु यह कहा; कि हम जैन मुनि है. दिनके समय तो इस कन्याको पढ़ा सकेंगे, परन्तु रात्रिके समय स्त्री मात्र हमारे स्थान पर नही रह सकती. और यह और भी कठिन है; कि इतनी छोटी बालिका अपने गाओसे जो यहांसे चार कोस दूर है प्रति दिन आया जाया करे. इस लिये यदि आपकी इच्छा हो तो यह कन्या रात्रिके समय श्री मती हीरांदेवीजीके पास जो हमारे ही सम्प्रदायकी आर्य्या हैं; रहा करे और वह आर्य्या स्वयं भी वड़ी विदुषी है श्रीमान् वलदेवसिहजी वोले. कि यह कन्या तो हमें प्राणोसे भी प्यारी है इसको यहां कैसे छोड़ जाये हां यह होसकता है कि मै जो यहां कोतवाली में नौकर हूं; कार्य्यवशात् प्रति दिन इधर आता हूं इसे भी साथ ले आया करूंगा स्वामीजीने कहा, मै पहले भी कह चुका हूं; कि कन्या छोटी है इसका प्रति दिन घरसे आना जाना कठिन है परन्तु यहां

आपके मित्र बलदेवसिंहजी का भी तो घर है; क्यों न आप इसको उसके हां रख देवें. आपके पिताजी ने स्वामीजी की इस बात को स्वीकार करलिया. और आपका अपने मित्र बलदेवसिंहजीके हां रहने का प्रबन्ध करदिया.

पाठक यह तो भली भान्ति जान गए होंगे कि जैन मुनि श्रीस्वामी कँवरसेनजी महाराज जैन शास्त्र तथा अन्य धर्मोंके शास्त्रोंमें एक अद्वितीय पण्डित थे उनकी पाठक विधिने श्रीसतीजीके हृदय की विद्वत्ताके संस्कारों को थोड़े ही दिनोंमें जागृत करदिया जब आपने स्वामीजी महाराजसे सं०१९१८ वि०में पढ़ना आरम्भ किया, तो आप साधारण पढ़ना लिखना तो थोड़े ही समयमें सीख गई क्योंकि आप की बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण और निर्मल थी जो संथा आप उनसे लेती थीं, उसे तत्काल कण्ठस्थ कर लेती थीं. जिन श्लोकों का अर्थ आप स्वामीजीसे सुनती थीं, उन श्लोकों का अन्वयार्थ अपने आप करके स्वामी जीको सुना देती थीं जिन्हें सुनकर स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न होते थे. आपकी अवस्था के साथ साथ आप की बुद्धि, विद्याभ्यास और विद्याप्रेम भी शनैः २ बढ़ता गया यहां तक कि आपके पिताजी जब कभी

आपको घर जानेके लिये कहते तो आप यह उत्तर देतीं कि घर जानेसे मेरे पढ़नेमें हानि होगी. इस लिये मेरा यहां रहना ही उचित है. एक दिन आपके पिताजीने यह भी कहा कि बेटी! बस इतना ही पढ़ा बहुत है. चिट्ठी पत्री का पढ़ना तो सीख चुकी हो. और पुस्तके भी पढ़ सकती हो तथा भक्तामर आदि का पाठ भी कर लेती हो अब और अधिक पढ़कर क्या करोगी, आपके पिताजीके यह वचन आपको ऐसे दुखदाई प्रतीत हुए जैसे कोई किसी प्यासे को अमृतके पीनेसे रोकता है. इधर स्वामी कँवरसेनजी महाराजने भी जो आपका विद्या में इतना प्रेम देखकर प्रसन्न हो रहे थे और जिन को विश्वास था कि श्रीमती पार्वती जी विद्या पढ़नेके योग्य है और इनको विद्या का दान देना मानो एक कल्पवृक्ष को सींचना है जब आप बड़ी होंगी निस्सन्देह आप एक कल्पबृक्षके समान गुणों की देने वाली होंगी अर्थात् स्वयं धर्मकी मूर्त्ति बनकर और अनेक प्राणियो के हृदयों मे धर्म का भाव उत्पन्न करेगी इस विचारसे आपके पिताजी को बोले "अरे बलदेवसिंह! अभी इस बालिका को तू यहीं रहने दे" स्वामीजीके इन वचनोको आपके पिताजी अस्वीकार

न करसके और बोले' बहुत अच्छा महाराज". स्वामी जीने बड़ी प्रसन्नतासे इनको विद्या पढ़ाई इस प्रकार छे वर्षके निरन्तर विद्याभ्यासने आपको एक प्रवीण पण्डिता बना दिया. जिन ग्रन्थोंको आपने स्वामी जी महाराजसे इस अवसरमें पढ़े उनके नाम यह हैं.

(१) नव तत्त्व पदार्थ. (२) प्रतिकर्मणा सूत्र. (३) चौवीस डण्डकका विचार. (४) अमरकोष. (५) दसवें कालिक सूत्र (६) उत्तराध्ययन सूत्र. (७) वीर स्तुति. (८) नमी प्रवर्जा. इत्यादि.

——: :——

वैराग्य उत्पत्ति.

श्रीमहासतीजीके हृदयमें शास्त्रोंके पढ़ते २ स्वयमेव वैराग्यकी उत्पत्ति हुई अर्थात् आपके मनमें यह भाव उत्पन्न हुआ; कि ऐसे उपाय सोचने चाहियें जिनसे चौरासी लाख योनियों से मुक्ति मिल सके. सांसारिक सुख अस्थिर होनेके कारण असत्य हैं. नित्य सुख उसी आनन्दका नाम है, जो इस आवागमन से निकल कर मोक्ष पदमें प्राप्त होता है. पाठक ! इतनी छोटी आयु में ऐसे महान् और उच्च विचारोंका विकास होना, एक आश्चर्यजनक और कठिनतर बात है परन्तु घट में (कुम्भ) में जैसी वस्तु

रखो उसमें वैसीही गन्धि होजाती है इस लिये श्रीमती पार्वतीजी महाराजने स्वयमेव मिथ्या सांसारिक सुखोंकी इच्छा न करके; अपने माता पिता से योग वृत्तिके धारण करनेकी आज्ञा मांगी क्योंकि जैन धर्म्म के नियमों के अनुकूल वैरागी को अपने माता पिता की आज्ञा लेना आवश्यक है. आपके माता पिता आपके मुखसे इन वचनोंको सुनते ही अधीर होगये किन्तु कौन चाहता है कि उसके हृदयका टुकड़ा जो इतने प्रेम और परिश्रम से पाला गया हो, साधु हो जावे और सांसारिक सुखो से वञ्चित रह जावे तथा उन कठिनाइयो को सहे जिनको कि साधुही समझसकते और सहसकते है तथापि आपके पिताजी बोले "पुत्रि ! अभी तेरी आयु छोटी है जैन नियमानुसार संयम वृत्तिके साधन वहुत कठिनहै, तू इन कष्टो को कैसे सहन कर सकेगी और तूने साधु वनकर लेना ही क्या है खाओ, पीओ, खेलो. अच्छा घर देखकर तेरा विवाह कर दिया जायेगा वस सावधान रहे ! फिर कभी साधु वनने का नाम न लेना

परन्तु श्रीमती पार्वतीजी महाराजका हृदय वैराग्य की तरल तरंगो से तरंगित होरहा था इसलिये हाथ जोडकर बोली पिताजी ! सांसारिक सुख तो अज्ञा-

नियों को अच्छे लगते हैं ज्ञानियों के लिये तो विष सम्पृक्त अर्थात् विष मिले अन्नके समान त्याग करने के योग्य हैं आपके मातापिता इस उत्तर से आश्चर्य्य और दुःख में भरकर अवाक् (चुप) रह गये फिर बोले 'पुत्रि! यह तू सत्य कहती है परन्तु साधुत्व भी तो अति कठिन है, अर्थात् कौड़ी पैसा पास न रखना; संसार के भोगों से तटस्थ रहना भूख लगे तो गृहस्थियों के घर से निर्दोष भिक्षा लाकर खाना यह काम ऐसे हैं जैसे जीते जी मर जाना है और इस छोटी अवस्था में तेरे लिये तो महा असह्य है इस लिये हम तुझे कभी आज्ञा न देगे क्या हमनें तुझे इतने दुखों से इसी लिये पाला है, कि तू हमें छोड़ कर साध्वी बन जाये ?

श्रीमती जी महाराजने अपने माता पिता के इन स्नेह युक्त वचनों को सुन कर. नम्रता पूर्वक कहा 'पिता जी ! देह धर्मके साधन. खान पान. भोग विलास तो हम प्रत्येक जन्ममें अनादि कालसे ही करते आये हे. ऐसे सुखो का ज्ञान तो पशुओ तक को भी प्राप्त हे. परन्तु ज्ञान वैराग्य संयम आदि आत्म धर्मके साधन तो मनुष्य देह की प्राप्ति पर आप जैसे आर्य्य कुल में ही उत्पन्न होकर किये

जा सकते हैं अर्थात् वास्तविक सुखकी उपलब्धि केवल धर्म कार्य्य से ही हो सकती है. और अन्य सांसारिक सुख तो नश्वर है इसी प्रकार नाना प्रकार के प्रश्नोत्तर परस्पर होते रहे फलत ! श्रीमती जी महाराज इस वार्तालाप से वैराग्य में और भी दृढ़ होगईं सत्य है. जिसके हृदय में सत्य धर्मका प्रकाश होचुका हो उसको असत्य धर्म्मका अंधकार कब दबा सकता है

यथा दृष्टान्त—प्राचीन समयमे भारतवर्षमें वसन्त पुर नामक एक नगर था. उस नगर का निवासी एक धनदत्त सेठ था उसका एक पुत्र जिसका नाम देवदत्त था देवदत्तकी आयु छोटी ही थी कि उसका पिता कालवश होगया और धनदत्त की मृत्यु से उसके घर का सब प्रबन्ध बिगड गया कार्य्य व्यवहार नियम पूर्वक न रहने से दरिद्र देवने अपनी सत्ता आ जमायी अपितु देवदत्त पैसे पैसे को तरसने लगा और दीन दुर्बल दुखिया होकर मन मारकर बैठ रहा एक दिन वह अपने सखाओं के साथ खेलने गया. तो वे हंसकर उसे कहने लगे कि "क्या तेरी मां तुझे दूध नहीं पिलाती ? जो तू इतना दुर्बल हो रहा है".

देवदत्त बोला "दूध क्या होता है" ? उन्होंने कहा "सफ़ेद सफ़ेद" उस दिन देवदत्त ने घर आकर मां से दूध मांगा परन्तु माता उसकी अब दरिद्रा वस्था को प्राप्त होरही थी दूध दे कहां से प्रत्युत सुनते ही अधीर होकर आंसु भर लाई और मन में सोचने लगी. कि यह अबोध बालक अपने दुर्भाग्य को नहीं जानता. इस लिये दूध मांग रहा है जब घरमें दूध था तो उस समय बालक नहीं था अब बालक हुआ तो दूध न रहा. इस विचार ने उसे शोक के समुद्रमें डुबो दिया माताने देवदत्तको बहुत समझाया. परन्तु देवदत्तने अपने हठको न छोड़ा जब कुछ बन न आई. तो माताने आटेको जलमें घोल कर दे दिया देवदत्त बालक उसका रंग सफेद देख कर और दूध समझ कर पी गया अस्तु उस दिनसे जब कभी बालक दूध मांगता. तो उसकी माता उसे आटा ही घोल कर दे देती. एक दिन देवदत्त अपने एक मित्र के घरचला गया मित्रकी माताने जब अपने पुत्र को दूधका ग्लास दिया. तो देवदत्त को भी एक ग्लास दूधका दे दिया. जब देवदत्त ने दूध पीया तो उसका स्वाद ही अनोखा पाया अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मन मे विचारा कि जो

दूध मेरी मां मुझे देती रही है. उसका स्वाद तो बुरा था और जो दूध मैंने आज पिया है इसका स्वाद बहुत अच्छा है अत. मुझे आज निश्चय हुआ कि वास्तव में दूध यह है और यही बल देने वाला तथा देह के पुष्ट करने वाला है, अस्तु वह तुरन्त अपने घर गया, और रीति पूर्वक अपनी मॉ से दूध मांगा तो उसने भी पूर्ववत् आटा घोलकर देदिया. देवदत्त तुरन्त बोल उठा "माताजी! आज मैं असली दूध पीकर आया हूं, अब बनावटी दूध कदापि नहीं पी सकता अर्थात् अब मुझे विश्वास होगया है कि यह दूध नही है प्रत्युत आटे का धोवन है. अब मैं इसे नही पी सकता हूं.

इसी प्रकार जब श्रीमती पार्वतीजी महाराज ने ज्ञानमय अमृतरूप वास्तविक दुग्ध का पान कर लिया तो फिर उन्हे आटे के धोवन के समान मिथ्या और नाशवान् सांसारिक सुख कैसे पसन्द आसकते थे,इसलिये श्रीमतीजीमहाराज सर्वथा प्रकार श्रीमुख से वैराग्य की ही बड़ाई करती रही, जब आपके पिता जी ने आपको वैराग्य मे दृढ़ पाया तो उस समय उन्हें स्वामी कॅवरसेनजी के वे वचन स्मरण हुए कि "यह कन्या संयमव्रतलेगी" अस्तु कुछ तो स्वामीजी के वचन पर विश्वास करके और कुछ श्रीमती महासतीजी

महाराज के पूर्व जन्म के पुण्योदय से वलदेवसिंहजी आपको संयमी व्रत लेने से रोक न सके प्रत्युत प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देदी.

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज अपने माता पिताकी आज्ञा लेकर श्रीमती हीरांदेवीजी महाराज के पास उपस्थित हुई और श्रीमती सती हीरांदेवी जी भी इस शुभ समाचार को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई.



आपका संयमव्रत धारण

श्री श्री श्री सती हीरांदेवीजी महाराजने श्रीमती पार्वतीजी को वैराग्य में दृढ़ पाकर उनको दीक्षा देने के लिये आगरे से यमुना पार की ओर विहार कर दिया, और विचरती हुई अलम गांव जो मुज़फ्फर नगर के जिले में कांधला के पास है वहां पधारी, उन दिनों वहां पर श्री श्री श्री स्वामी जीवनरामजी महाराज जैनमुनि के शिष्य आत्मा रामजी जो पश्चात् पीताम्बरीवेष धारणकरके आनन्द विजयजी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे. विराजमान थे, और श्री श्री श्रीस्वामी रत्नचन्दजी महाराज के शिष्य श्री

श्री श्रीस्वामी चतुर्भुजजी महाराज भी विराजमान थे. अस्तु अलम गाओंके श्रावकोंने प्रसन्नतापूर्वक श्रीमती पार्वतीजी महाराज का दीक्षा महोत्सव करना अपने ही गांओं में स्वीकार किया और आपके साथ निम्नलिखित तीन और बालब्रह्मचारिणी वैराग्यवती श्रीमतियों की भी दीक्षा थी

(१) बीबी मोहनियांजी (२) बीबी सुन्दरियाजी (३) श्रीमतीपार्वतीजी महाराज के–

सगे चचा सुखदेवसिंहजी की कन्या बीबी जीवोजी इन चारो श्रीमतियो की दीक्षा सँ० १९२४ चैत्रशुदि २ के दिन की नियत हुई अलम गाओं के भाइयों ने उस शुभ अवसर पर अनेक नगरों के श्रावक और श्राविकाओ को आमन्त्रित किया, उस समय वहां साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चारो तीर्थ उपस्थित थे और एक दर्शनीय दृश्य था

उस समय केवल उन वैराग्यवती श्रीमतियों के दर्शन ही कोटानुकोट पापो के दलो को क्षय करने वाले थे, क्योंकि वैराग्य मे निर्मल और धर्म में चढते पर नाम दीक्षा लेने के समय साधु महाराज व आर्य्याजी महाराज के जितने उत्साह में होते हैं उतने किसी अन्य अवसर पर होने दुर्लभ हैं क्योंकि

वैरागी पुरुष दीक्षा लेने के समय परनामों की निर्मलता होने के कारण सातवें गुण स्थान पद को प्राप्त करते हैं. विशेष वैराग्य को प्रकट करने वाली जो जो घटनाएं दीक्षा के समय हृदयों में उत्पन्न होती हैं, उनका अन्य अवसरों पर उत्पन्न होना अत्यन्त कठिन है. धर्मात्मा पुरुष इस बातको अवश्य स्वीकार करेंगे कि दीक्षा लेने के समय वैराग्यवान् पुरुष व स्त्रीओं के गुणों का अनुमान लगाना कठिन ही नहीं वरञ्च असम्भव है और इसीलिये दीक्षा लेने के समय साधु साध्वी श्रावक श्राविका चार तीर्थों के एकत्रित होने की प्रणाली आदि से ही चली आती है. वास्तव मे देखा जाय, तो धर्म का महोत्सव दीक्षा से वढ़कर और कोई नहीं है. इसलिये इसको जितने आनन्दसे मनाया जाये, उतना ही थोड़ा है, उस समय श्रीमतीजी महाराज की आयुका चौदहवां वर्ष आरम्भ ही हुआ था आपने उस समय तीन अन्य श्रीमतियों सहित जैन दीक्षाको धारण किया अर्थात् सम्पूर्ण सांसारिक व्यवहारों का परित्याग करके जैन नियमों के अनुसार आजीवन संयमव्रती में रहना स्वीकार किया अर्थात् दया,सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों को धारण किया.

पाठक! वह समय भी कैसा शुभ होगा,जब आपको दीक्षा का पाठ चारो तीर्थों के मध्य में पढ़ाया गया होगा. अपितु वहुत ही शुभ होगा पस इस प्रकार महोत्सव के अनन्तर श्रीमती हीरां देवीजी महाराज ने आपको साथ लेकर वहां से विहार कर दिया.

प्रारम्भिक पांच चातुर्मास्य में जैन सूत्रों की शिक्षा.

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज का पहिला चातुर्मास्य जिला मुज़फ्फरनगर के गंगेरु नामक गाओ मे अपनी गुरुयाणीजी की सेवा में व्यतीत हुआ उस में आपने कुछ ग्रन्थ पढे. चौमासा के पश्चात् आप गुरुयाणाजी के साथ विचरती हुई आगरे मे विराजमान् हुई वहां पर आपने श्रीस्वामी कॅवरसेनजी महाराज से श्रीआचाराङ्गव सुयगड़ाङ्ग (शूचीकृताङ्ग) आदि कई सूत्रो को पढ़ा ओर सूत्र ज्ञान को प्राप्त करने के लिये आपने सं० १९२५ से सं०१९२८ तक के चार चौमासे निरन्तर आगरे में ही किये.

एक दिन श्रीस्वामी कॅवरसेनजी महाराज का

एक भक्त जो ८०)रु० मासिक का सरकारी नौकर था, दर्शनों को आया और श्रीमती महासतीजी महाराज की तीक्ष्ण बुद्धि को देखकर बोला कि "आर्य्या जी ! आपने सांसारिक सुखों से तो मुख मोड़ ही लिया है, परन्तु मेरा विचार है कि यदि आप अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करलें और डाक्टरी परीक्षा पास करके युरोपियन सिस्टरों व मिस्सों की न्याई काम करें तो आपको चार पांचसौ रुपया की मासिक आय (आमद) भी होजाये और उपकार भी बड़ा हो "श्रीमहासतीजी महाराज ने उत्तर दिया कि" भाई ! मैं तो परमात्मा की सेवा करके काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि रोगोंकी चिकित्सा सीखना और सिखाना आवश्यक समझती हूं जिससे आत्मा को सदा के लिये आनन्द(वास्तविक)सुखकी प्राप्ति होसके और जो यह वाह्य रोग हैं सो तो शरीर के साथ ही उत्पन्न होते हैं और साथ ही नष्ट होजाते हैं परन्तु काम क्रोधादि उपरोक्त व्याधियां तो परलोक में भी दुःख देती हैं. तथापि किसी विद्या का प्राप्त करना तो अच्छा ही है आप मुझे अंग्रेज़ी पढ़ादेवे. सुतरां उसने कँवरसेनजी महाराज की आज्ञा लेकर श्रीमतीजी महाराज को पढ़ाना आरम्भकर दिया परन्तु थोड़ी सी अंग्रेज़ी पढ़ने

पर ही आपकी गुरुयाणीजी महाराज ने आपको कहा कि जितना समय तुम अंग्रेज़ी की पढ़ाई पर लगाओगी उतनीही सूत्रो की पढ़ाई मे क्षति (हानि) होगी. क्या तुमने अंग्रेज़ी पढ़कर नौकरी करना है बस मत पढ़ो.

श्रीमहासतीजी महाराज बड़ी शुशील और साधु स्वभाव थी. इसलिये गुरुयाणीजी महाराज के आदेश से अंग्रेज़ी पढ़ना तत्काल छोड़ दिया.

यह बात वर्णनीय है कि आपकी शिष्या की शिष्या श्रीद्रौपदीजी महाराज आपके जीवन चरित्र में शोक प्रगट करती हुई लिखती हैं-और मेरा भी यही विचार है कि आपने उस समय अंग्रेज़ी की पढ़ाईको क्यों छोड दिया यदि आप थोड़ा थोड़ा समय भी अंग्रेजी पढ़ने पर लगाती, तो जो वर्तमान समय में अंग्रेजी भाषा एक विश्वव्यापी होरही है, आप अपनी प्रभावशाली लोक प्रिय वाणी से अंग्रेज़ी भाषा द्वारा, अंग्रेज़ी विद्वानों के हृदयो मे भी दया सत्य आदि धर्म्म का वीज विशेषत्र वो सकती. अस्तु अब भी सब कुछ हो सकता है हम श्रावको को चाहिये कि इन के रचे हुए ग्रन्थो को अंग्रेज़ी भाषा मे अनुवाद करा करके उन को अंग्रेज़ी के विद्वानो तक

पहुंचावे और समस्त साधु जी महराज व साध्वी जी महाराज अपने शिष्य व शिष्यायों का ध्यान इस ओर लगावे, ताकि भविष्यत में किसी ऐसे शोक का अवसर न मिल सके. अस्तु—

आप उन चातुर्मास्यों में जड़ चेतन लोक परलोक और बंध मोक्षादि पदार्थों के स्वरूपके विचार में अपनी बुद्धि से विवेचना करती हुई, जैन शास्त्रों के अभ्यास का यथाशक्ति लाभ उठाती रही.

वैराग्य वृद्धि के साधन.

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने थोड़े समयके लिये यह प्रतिज्ञा (अभिग्रह) धारण किया कि सूर्य्यास्त होने के समय अर्थात् आवश्यक (प्रतिक्रमणा) करनेके पश्चात् एक आसनपर पलङ्कासन बैठकर अनुमान दो घण्टा तक नमोत्थुणं सूत्रकी माला पढ़ना। इस प्रकार आपका समय जप तप नियम आदि में व्यतीत होता रहा.

एकदिन रात्रि के अन्त में आपने यह स्वप्न देखा— कि एक विस्तृत मैदान है, उस में बड़ा ही सुन्दर गोल कल्प वृक्ष की जाति का एक दरख्त है. जिस के नीचे में अर्थात् पार्वतीजी महाराज पलङ्कासन

अर्थात् चौकड़ी लगाकर बैठी हुई है. उस वृक्ष के नीचे जितना स्थान है उस पर केसर, जावित्री, लौंग, वादाम आदि वृक्ष से वर्स रहे हैं; जिससे चित्त को वड़ा आनन्द होरहा है. श्रीमहासतीजी महाराजने जागने पर भी अपने चित्तको आनन्द मय पाया और अपने स्वप्नको स्मरण करके विचारा कि इसका फल मुझे अधिकतर धर्म्म की शरण के सम्वन्ध मे होगा. तव आपने अपनी गुरुयाणीजी महाराजके चरणों मे यह प्रार्थना की, कि आप देश विदेश विचर कर मुझे ज्ञान और क्रिया अर्थात् संयमवृत्ति के विशेप जानने और पालने का लाभ दिलाने की कृपा करें. इस पर आपकी गुरुयाणीजी ने यह कहा कि मुझ से तो विहार नही होसकता, इसलिये मेरा जाना दुष्कर है इन शव्दो को सुनकर श्रीमती पार्वतीजी महाराज सोचने लगी, कि मैंने घरके सम्वन्धी भी छोडे और संयम का पूर्ण आनन्द भी प्राप्त न होसका तो क्या मेरा समग्र जीवन यूं व्यर्थ ही व्यतीत होगा इस विचारने आपको गहरी चिन्तामे डाल दिया. और आप कोई ऐसा उपाय सोचने लगी कि जिसमे सूत्रानुसार सयम वृत्ति सहित देश विदेश विचर कर अपने जीवन को परो-

और आपका सरल स्वभाव ही बतला रहा है कि आप संयमवृत्ति का भली भांति निर्वाह कर सकती हैं.

इस पर श्रीमती महासतीजी महाराजने कहा कि जैन सूत्रानुसार जिन आज्ञा के पालन करने वाली आर्य्या के लिये तो यही योग्य है कि वह किसी प्रवंतनी श्रेष्ठ आचार वाली गुरुयाणीजी का शिर पर हाथ रखाकर उनके अंकुशमें होकर विचरें.

श्रावक आपका यह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, और बोले कि निस्सन्देह आपका कथन सत्य है. आप जैसे भाग्यवान् पुरुषों के लिये तो सूत्रों के अनुसार ही संयमवृत्ति पर चलना योग्य है और हम लोग भी ऐसे ही उत्तम पुरुषो के सेवक हैं जो जैन सूत्रों के अनुसार भगवान् की आज्ञा के आराधक हो. पुनः उन श्रावकों ने श्रीमहासती जी महाराज के चरणोंमे यह प्रार्थना की, कि देहली मे जो यहां से बीस कोस के अन्तर पर है. श्री श्री श्री महासती खूबांजी महाराज व श्री श्री श्रीमहासती मेलोजी महाराज व श्रीश्रीश्रीसती चम्पाजी महाराज जो देहली वाले भाई रूपचन्द बाना वाला जौहरी की पुत्री है, और गुलाबचंद जौहरी की पुत्र वधु है जिसने अभी छे मास हुए दीक्षा धारण की

है. इन तीन आर्य्याओं का चातुर्मास्य है और वह श्री श्री श्री १००८ महाभागवान् पञ्जाबी पूज श्रीअमरसिंहजी महाराज के सम्प्रदाय की आर्य्या है; यदि आज्ञा हो तो हम इस विषय मे श्रीमहासती खूबांजी महाराजके चरणो में प्रार्थना करे. श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने उत्तर दिया "यह ठीक है" बस आपकी अभिलाषा को जानकर वहां के श्रावक श्रीमहासती खूबांजी महाराजके चरणों मे इस विषय की प्रार्थना करने को उद्यत हुए.

महासतीजीका श्रीपूज अमरसिंहजी महाराजके सम्प्रदायमें सम्मिलित होना.

लोहारा गांवके चार श्रावको ने देहली जा कर श्रीमहासती खूबांजी महाराजके चरणो मे प्रार्थना की. कि श्रीस्वामी रत्नचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय की एक आर्य्याजी आगरे से श्रीसती सुख देवीजी के पास पधारी हुई है उनका नाम श्रीमती पार्वतीजी महाराज है उनका चातुर्मास्य हमारे गाओ लुहारा मे है और आप बड़ी ही गुणवती है, उनके गुणो का पूर्णरूप से वर्णन करना हमारी शक्ति से परे है यदि आप आज्ञादे तो उन्हें आपके सम्प्रदाय

में सम्मिलित करा दिया जाये वहआप के टोलेको और आपके नाम को सूर्य्यवत् दशों दिशाओं में प्रकाशित करने के योग्य हैं.

श्रीमहासती खूबांजी महाराज इन शब्दों को सुनकर अतीव प्रसन्न हुईं और कहा कि हम उन की प्रतीक्षा में इसी स्थान पर ठहरेंगी; आप उन को चातुर्मास्य की समाप्ति पर इधर को विहार करादें. अस्तु चारों श्रावकोंने वापिस आकर यह समाचार आपको सुना दिया. और चातुर्मास्य समाप्त हो जाने पर श्रीमती पार्वतीजी महाराज श्रीमती महा सती खूबांजी महाराज के चरणों में उपस्थित हो गई, उन्होंने आपको एक बड़ी गुणवती आर्य्या समझ कर मार्गशीर्ष (मग्गर) वदी १३ सं० १९२९ वि० को श्री महासती तपस्विनी मेलोजी महाराज के नाम पाठ पढ़ा दिया. उस समय से आप सत्य धर्म्म का उपदेश करती हुईं देश देशान्तर पर्य्यटन करके लोगों के हृदयों से असत्यान्धकार का इस प्रकार नाश करने लगी, जिस प्रकार सूर्य्यदेव रात्रि के अन्धकार का नाश करता है.

अर्थात् पूज अमरसिंह जी महाराज के सम्प्रदाय ग्रहण करने के पश्चात् आपने श्री

श्री १००८ श्री सतीखूवां जी महाराजके साथ देहली से पञ्जाव को विहार कर दिया; और रोहतक, हांसी हिसार, सरसा, रियासत फरीदकोट, ज़ीरा, पट्टी, अमृतसर, पसरूर और सियालकोट आदि स्थानो में विचरती हुई रियासत जम्मू मे पधारी और संवत् १९३० का चतुर्मास्य रियासत जम्मू में ही किया इस चातुर्मास्य में आपकी गुरुयाणी जी श्रीमहासती मेलो जी महाराजने २२ दिन का एक व्रत किया अर्थात् २२ दिन निरन्तर जल के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का न खाना न पीना और श्रीपार्वतीजी महाराजने भी आठ दिन का एक व्रत उपरोक्त विधि के अनुसार किया इसके अतिरिक्त आपने तीन तीन चार चार दिनके व्रत भी किये. श्रावक व श्राविका जम्मू वालों ने भी दया दान तपस्या आदि का यथाशक्ति बड़ा उद्यम किया और बडे उत्साह से चौमासा समाप्त हुआ.

जम्मू से विहार करके आप स्यालकोट, पसरूर अमृतसर, जण्डियाला और जालन्धर के आस पास घूमकर धर्म्मोपदेश करती हुई टांडा ज़िला हुश्यारपुर मे पधारी वहां पर श्रीमहासती खूवांजी महाराज को श्वास रोग ने आ दवाया. इस

लिये आपका सं० १९३१ का चातुर्मास्य उनकी सेवा में टांडा ही हुआ.

आपका सं० १९३१ वि० का चातुर्मास्य टांडा ज़िला हुश्यारपुरमें हुआ. जिसमें आपने वेले वेले उपारना की तपस्या की (दो दिन कुछ न खाना तीसरे दिन भोजन करके फिर दो दिन का व्रत कर देना) इत्यर्थः—



आपका आत्माराम साधु से भक्ष्याभक्ष्य विषय पर लिखित शास्त्रार्थ.

वह आत्मारामजी जो पहले श्रीस्वामी जीवनरामजी महाराजके चेले थे, और पश्चात् संवेगी हुए थे. इन दिनों हुश्यारपुरमें ठहरे हुए थे. उस समय उनके मुख पर जैन मुनियों का सनातन चिन्ह (मुख वस्त्रिका) भी यथा रीति विद्यमान् था परन्तु श्रद्धा उनकी मूर्त्तिपूजन की होचुकी थी, यद्यपि पीताम्बरी वेष को अभी धारण नही किया था, इन दिनों आपका लिखित शास्त्रार्थ जो पत्रो द्वारा आत्माराम जी से हुआ वह अधोलिखित प्रकार से है—

प्रश्नः स्वामी आत्मारामजी संम्वेगी—

हे साध्वि तुम इस बाल्यावस्था में संयमका भार निभारही हो और बेले बेले उपारना कर रही हो परन्तु तुम को भक्ष्याभक्ष्यका तो ज्ञान है ही नहीं जिस के खाने से महां कर्म्म बन्ध होता है यथासूत्र आवश्यकमें २२ अभक्ष्य लिखे हैं उनको तुमलोग ग्रहण करतेहो यदि तुमको परलोक सुधारना है तो पहले अभक्ष्योंको त्याग दो।

उत्तरः महासतीपार्वतीजी—आवश्यक सूत्रमें तो मैंने कही २२ अभक्ष्यलिखे नही देखे

प्रश्न स्वामीआत्मरामजी—आवश्यक सूत्रमें तो नंही है आवश्यककी निर्युक्तिमें है

उत्तरः महासती पार्वतीजी-आपनेतो आवश्यक सूत्र लिखा था, इसका क्या कारण था पहले निर्युक्ति का हीं नाम क्यों न लिखा यदि इस बातको आप भली भान्ति जानते थे कि आवश्यककी निर्युक्तिको यह लोक नही मानते हैं तो फिर निर्युक्तिके स्थान मे जानबूझ कर सूत्र आवश्यक लिखदेना इसका कारण क्या था"

परन्तु आप लोक तो निर्युक्तिको मानते ही हैं इसलिये आप पर शोक है कि आप निर्युक्तिको

मानते हुए भी उपरोक्त २२ अभक्ष्योंमें से कई अभक्ष्योंको खाजाते हो यथा, वहां २२ अभक्ष्योंमें सब प्रकारकी मिट्टीको अभक्ष्य लिखा है तो क्या तुमलोग खानका निकाला हुआ सैन्धवादि लवण नहीं खाते अथवा वहां आलू, हल्दी, अदरख आदि सब प्रकारके कन्द मूल अनन्तकायको भी अभक्ष्य लिखा है तो क्या आप शुण्ठि और हल्दी नहीं खाते हो और क्या हल्दी, लवण, शुण्ठिको दाल आदिमें से किसी विशेष विधिसे निकाल दिया करते हो यदि आप उन अभक्ष्योंके निकाले बिना ही खाते हो तो आप स्वयमेव अभक्ष्यके भक्षण करने वाले ठहरे और वहां नवनीत (मारवन) को भी अभक्ष्य लिखा है तो क्या आप लोग माखन अथवा माखनकी वनी हुई वस्तु अर्थात् घृत नहीं खाते आशा है सर्वसाधारण लोग भी आपके इस विचार पर अवश्य हंसेगे कि देखो माखन जैसी उत्तम वस्तुको भी अभक्ष्य लिखते हैं जान पड़ता है कि आपने भक्ष्याभक्ष्य के विषय पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार ही नहीं किया यही कारण है, कि आप केवल निर्युक्तिके लिखे पर ही रीझ बैठे हैं आपको उचित था कि किसी प्रमाणिक सूत्रका प्रमाण देते"

प्रश्नः स्वामी आत्मारामजी–ठानाङ्ग सूत्रके चतुर्थ ठानामे माखनको अभक्ष्य लिखा है।

उत्तरः महासती पार्वतीजी–ठानाङ्ग सूत्रमें माखनको अभक्ष्य शब्दसे कही भी नही लिखा है

प्रश्नः स्वामी आत्मारामजी–क्या आप नहीं जानती हो कि इस सूत्रके चतुर्थ ठानाके दूसरे उदेशे मे चार महां विघे लिखे है मांस, मदिरा, शहद, माखन अब देखिये. इस स्थान पर मांसके साथ माखन लिखा हुआ है इसलिये माखन भी अभक्ष्य हुआ।

उत्तरः महासती पार्वतीजी–ओ हो, यह बात तो आपने बड़ी भूलकी लिखी है कि कोई अच्छी वस्तु किसी बुरी वस्तुके साथ लिखनेसे ही बुरी समझी जावे. पब्लिक भी आपकी ऐसी कच्ची युक्ति को जो असत्य और सूत्रोंके विरुद्ध हो, कैसे मान सकेगी; कि माखन जैसी उत्तम वस्तु केवल इस कारणसे अभक्ष्य हो गई, कि उसका वर्णन मांसके साथ आया है हा ! आपको तनक विचार तो करना चाहियेथा कि इसी स्थान पर और कौन कौनसे पदार्थ किस २ पदार्थके साथ लिखे हुए है। अर्थात् वहां चार गोरस विघे भीतो लिखे है–(१)दूध(२)दही(३) माखन (४) घी. और वहां चार स्निग्ध विघे भी लिखे हुए हैं।

(१) तेल (२) घी (३) चर्बी (४) माखन।

अब आप पक्षपातको त्यागकर तनक न्याय से कामलेवें कि जो माखन है जिसको आप निर्युक्ति के अनुसार अभक्ष्य मान रहे हो और यह भी मान रहे हो, कि जो पदार्थ अशुद्ध पदार्थोंके साथ वर्णन किये गए हों वे अशुद्ध मानने चाहिये तो माखनके साथ दूध दही घी भी अभक्ष्य हो जायेंगे और तेल घी का वर्णन माखन और चर्बी के साथ आनेसे वह दोनों वस्तुएं भी अभक्ष्य ही हो जायेंगी; नहीं नहीं कदापि नहीं अस्तु अब जो इन चौभङ्गियों का तात्पर्य्य सूत्रानुसार है, वह मैं आप को बतलाती हूं।

स्थानङ्ग सूत्रके चतुर्थ स्थान के द्वितीय उद्देशकमें

श्रीमद् भगवान महावीर स्वामीजी महाराजने पूर्वोक्त जो चार गोरस विघे कहे हैं, जिनमें गो भैंस आदिसे उत्पन्न होनेके कारण गोरसका गुण लिया गया है और चार ही स्निग्ध विघे कहे हैं जिनमें चिक-नाई का गुण लिया गया है इसी प्रकार चार महा विघे कहेहैं जिनमें बलका गुण लिया गया है इसलिये गो से उत्पन्न होनेके कारण तो माखनको गोरस विघोंमें रखा गया है, और चिकनाईके कारण माखनको स्निग्ध

विघोंमे सम्मिलित किया गया है तथा बल विशेष के कारण माखनको महा विघोंमें रखा गया है इत्यर्थः अब कहिये माखनको अभक्ष्य किस प्रकार से माना जासकता है अस्तु यह सिद्ध हुआ कि माखन कदापि अभ्यक्ष्य नहीं है यदि आप माखन को केवल इस विचारसे ही अभक्ष्य मान बैठेहो कि यह मांसके साथ लिखा हुआ है तो चर्बीके साथ घी और तेल भी तो लिखा हुआ है फिर आपको घी और तेल भी अभक्ष्य ही मानना पड़ेगा।

इसका उत्तर आत्मारामजीने कुछ न दिया। सुतरां चातुर्मास्यमें धर्म्मका उद्यम टांडेके भाईयोंने यथा शक्ति अच्छा किया पश्चात् चातुर्मास्यके आपने हुश्यार पुरको विहार कर दिया और हुश्यार पुरके प्रियधर्मी श्रावक और श्राविकाओंने महासतीजीके पधारे ने का वड़ा हर्ष प्रकट किया और व्याख्यानमे श्रोताओंको उस स्थानमें स्थलभी दुष्कर मिलताथा फेर अनेक नगरोंमें दया धर्म्मका प्रकाश करती हुई आप रोपड़ जिला अंवालामें पधारीं और सं० १९३२ वि० का चातुर्मास्य रोपड़का ही स्वीकृत हुआ।

---:o:---

श्री महासती पार्वतीजी महाराजने सं० १९३० वि० का चातुर्मास्य रोपड़ ज़िला अम्बालामें किया वहांके श्रावक और श्राविकाओंको धर्म्मकी बड़ी रुचि थी आपके उपदेश वहां प्रतिदिन होते रहे.

पाठकवर्य्य! यह बात विशेष वर्णनीय है कि इन दिनोंमें आत्माराम सम्वेगी जो सूत्रोंके विरुद्ध मूर्तिपूजनको एक धार्म्मिक प्रथा कहकर उसका जैन में प्रचार करनेके लिये यथा साध्य प्रयत्न करनेमें लगे ही थे कि एक अन्य मनुष्य अपने आपको ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, वेदोंके अनुसार चलने और चलाने वाला सिद्ध करता हुआ देश विदेशमें मूर्त्ति पूजाकी प्रथाको हानिकारक सिद्ध करता था. उस का नाम स्वामी दयानन्दजी था उसने अपने उपदेशों से यह भली भांति सिद्ध करदिया कि मूर्त्तिपूजन वेद विरुद्ध है.

जनता अपनी ऐतिहासिक स्थिति पर विचार करके, भली भान्ति समझ गई और लोग स्वयमेव भी कहते थे, कि हम लोग पंद्रह सौ वर्षसे दुःख और विपत्ति उठारहेहैं यथा—भारतवर्षके इतिहासमें महमूद ग़ज़नवीका १७ वार आकर भारतको लूटना, और

यहांकी जनताका संहारकरना स्त्री,पुरुष औरबालकों तकको पकड़कर ग़ज़नीमें ले जाना दो दो रुपये पर उनको नीलाम करदेना, यह सब मूर्त्तिपूजाके ही फल थे, तो परलोकमें उसके फल कैसे होंगे।

इस लिये लोग भली भान्ति जान गए, कि मूर्त्तिपूजा न तो जैन सूत्रोंमे है, और नाही वेदोंमें है, इस लिये बहुतसे शिक्षित मनुष्य स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी की शरणमें चलेगये। और जो दूरदर्शी जैनी थे, वे जैन मुनियो और श्रीमहासती पार्वती जी महाराजके उपदेशसे आत्मारामजी के जालसे बचे रहे, और कई एक फंस भी गये।

यह बात भी छुपी न रहे, कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने जैनको भी मूर्त्तिपूजाके रोगसे ग्रस्त पाया तो उनका विचार जैनके सम्बन्धमे भी अच्छा न रहा, परन्तु हमे आश्चर्य्य है कि उन्होंने मूर्त्तिपूजक जैनको बुरा कहते हुए, जैनमे जो मूर्त्तिपूजासे रहित शुद्ध थे न जाने उनपर क्यों अनुचित आक्षेप किये है देखो सत्यार्थ प्र० स० १२वां इसलिये स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका यह विचार सत्य और निष्पक्ष नही था इस कारण स्वामीजी और उनके समाजका थोड़ा सा चरित्र भी पाठकोको भेट किया जाता है। आशा

है कि पवलिक पक्षपात छोड़कर इसे ध्यानपूर्वकपढ़ेंगे।

मुझे एक वार स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रवर्तक आर्य्य समाजके जीवनचरित्रके पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ जिसको जगन्नाथदास मुरादाबाद निवासीने बनाया है और खेमराज श्री कृष्णदासने बम्बईमें अपने श्री वेङ्कटेश्वर प्रेसमें सं० १९५५ वि०में छपाकर प्रकाशित किया है इसमें लिखा है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने अपना जीवनचरित्रआप लिखकर रसाला थियोसोफ़िस्टमें मुद्रित करायाथा, जिसको सं०१९४५ वि०में दलपत्तराय जगराओं निवासीने अंग्रेज़ीसे उर्दू में उल्था करके लाहौरमें छपवाया उसमें लिखा है, कि स्वामीजी लिखते हैं, कि मैं जो आजकल स्वामी दयानन्दके नामसे प्रसिद्ध हूं, सं० १८८१ वि० को काठियावाड़ गुज़रात्त प्रदेशमें मौरवी रियासतमें उच्च जातिकी ब्राह्मणीके उत्पन्न हुआ।

समीक्षक—ब्राह्मणके उत्पन्न हुआ, क्षत्रियके अथवा वैश्यके उत्पन्न हुआ, ऐसा बोलनेका प्रचार है। स्वामीजीने ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ, ऐसा लिखा इसका कारण क्या है। और जो अपना गाओं और पिताका नाम प्रसिद्ध नहीं किया, न जाने इसका कारण क्या है।

पुनः स्वामीजी लिखते हैं, कि पांच वर्षकी आयुमे मैंने नागरी पढ़नी आरम्भ की, और मेरे माता पिताने अपने घरकी रीतिके अनुसार मुझे गानविद्या सिखाई। आठवर्षकी आयुमे यज्ञोपवीत करादिया, और यजुर्वेद संहिता पढानी आरम्भ करदी।

"पुनः शिवपूजा और गाने वजानेसे घृणा करके सं० १९०३में २२ वर्षकी आयुमे सन्यासी होने को माता पितासे चोरी निकल भागे, फिर वीस पृष्ट पर स्वामीजी लिखते हैं, कि मैंने यह विचार किया, कि मैं सदाके लिये मुक्त होनेका उपाय करूं। अर्थात् किस स्थान पर मुझे सदाके लिये मुक्ति प्राप्त हो सकती है, और कहांसे किसके द्वारा प्राप्त कर सकता हूं, कि जिससे सदाके लिये इस वन्धनसे मुक्त हो जाऊं, मेरे मनमे दृढ सङ्कल्प होगया, कि सदाकी मुक्ति को ढूढूंगा।

समीक्षा—इससे सिद्ध होता है, कि दयानन्द सरस्वती वहुत समयतक मुक्तिको सदाकेलिये मानते रहे, और अपने ग्रन्थोमे लिखते भी रहे "क्योंकि दयानन्द तिमिर भास्कर ज्वालाप्रसाद कृत, जो श्री वैङ्कटेश्वर स्टीम प्रेसमें सं० १९६२ वि० शके १८८७

में छपा है, इसके पृष्ठ ३२४ पर मुक्ति प्रकरणमें लिखा है, कि स्वामीजीने भाष्य भूमिकामें १११, ११२ पृष्ठ पर आर्य्याभिविनय के पृष्ठ १६, ४२, ४५ पर वेदान्ती ध्वान्ति निवारण के पृष्ठ १०, ११, पर। वेद विरुद्ध मत खंडनके पृष्ठ १४ पर, सत्य धर्म विचारके पृष्ठ २५ पर लिखा है, कि मुक्ति कहते हैं, छूट जाने को। सच्चिदानन्द परमेश्वरको प्राप्त करके सदा आनन्द में रहना और फिर जन्म मरण और दुःख सागर में नहीं गिरना इसका नाम मुक्ति है"। फिर न जाने कौन से कारणसे मुक्तिसे लौट आना मान लिया है। मेरी सम्मति में तो यह आता है, कि मुक्ति विषय पर उन्होने किसी से शास्त्रार्थ में पराजय पाई, और इसी कारण मुक्तिको एक कारागार समझ कर वहांसे वापस आना मान बैठे हैं, इस विषय में जगन्नाथदास मुरादाबाद निवासी स्वरचित मुक्ति प्रकाश पुस्तक जो मुरादाबादमें लक्ष्मी नारायण यंत्रालयमें छपी दूसरी वार की मार्च १८९९ ई० जिसके पृष्ट ५की अन्तिम पंक्ति से आरंभ करके छटे पृष्ट पर लिखते हैं जिसका यह अनुकरण है।

"पञ्जाव देशके जलन्धर नाम नगर में किसी मुसल्मान से उनका शास्त्रार्थ हुआ। मुसल्मान ने

यह कहा कि जो मुक्ति सदाको होती है और मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं है तो यदि एक २ कल्पमें एक २ जीव भी मुक्त होता रहेगा, तो किसी काल में सम्पूर्ण जीव मुक्त हो जायेगे, और संसार नष्ट हो जायेगा. तव तुम्हारा ईश्वर भी वेकार रहेगा। उस समय स्वामी जी को इस वातका कुछ उत्तर न आया और उन्होने अमृतसरमें वावा नारायणसिंह वकील से यह वात कही कि अब हम मुक्ति से लौटना मानेंगे अन्यथा मुसल्मानोके आक्षेपका कुछ उत्तर न होगा यह बात वावा नारायणसिंहजीने श्रीमान मुन्शी इन्द्रजीसे अमृतसरमें, जव कि उक्त मुन्शीजी जम्मू को जाते थे कही, कि स्वामीजीसे एक मुसल्मानने मुक्ति विषय मे यह आक्षेप किया, उस समय उनको कुछ उत्तर न आया इस कारण स्वामीजी कहतेथे कि अब हम मुक्ति से लौटना मानेगे। मुन्शी जीने इस वातको सुनते ही वावा नारायणसिंहजी से कहा, कि यदि ऐसा करेगे, तो वहुत बुरा करेंगे समस्त सृष्टियोने मुक्ति सदैवके लिये मानी है मुक्ति से लौटना किसीने भी नही माना, और मुक्तिसे लौटना माननेमें वहुत दोष आते हैं, और मुसल्मान के आक्षेपका उत्तर तो सुगम है, कि जीव अनन्त



हैं और जो अनन्त है उसका कभी अन्त नहीं हो सकता निदान स्वामीजीने ऋग्वेदके भाष्य पुस्तक ३२, ३३, अंक १६, १७ में सत् शास्त्रों और समस्त विद्वानोंके विरुद्ध मुक्ति से लौटना माना" ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती नगर २ घूम कर सभाएं स्थापित करते थे। जिनका नाम आर्य्य समाज रखते थे क्योंकि उसकी शिक्षा स्वच्छन्दता के लिये हुई. इस लिये समयानुकूल थी । अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग जो पहले ही से इसाई आदि सम्प्रदायों की शिक्षासे स्वच्छन्द होना चाहतेथे और खान पानकी बाधाओं तथा जात पातकी प्रचलित रीतियोंकी संकीर्णता से भी दुःखी थे और नदी, पर्वत, तथा मूर्तियोकी पूजा और क्रिया कर्म श्राद्ध आदिको हानिकारक मान कर उनको व्यर्थ २ कह कर पुकार रहे थे तब श्री स्वामीजीने उनके विचारोको वेदों ही के अनुसार कह कर उनको वैसी ही शिक्षा देनी आरम्भ की तो उन्हों नें तत्काल इन समाजों में अपने नाम लिखवाने आरम्भ कर दिये ।

सरस्वतीजी के उपदेशों से,शिक्षित पुरुषों का एक बड़ा दल थोड़े ही समय के अन्दर आर्य्यसमाज के नियमों का परिपालक होगया । कदाचित् कोई

ही ऐसा औफ़िस व डिपार्टमैण्ट होगा, जिसमें सरस्वती जी का कोई भक्त न हो। जब विद्यार्थी स्कूलो व कालिजों से निकलकर जाते, और उनको उनके बड़े बूढे मूर्त्तिपूजन, श्राद्ध अथवा नदियों व पर्वतों की पूजा तीर्थ यात्रा अथवा क्रिया कर्म को कहते तो वे हंस कर उत्तर देते "हम इन मिथ्या विचारों को कभी नहीं मानेंगे। आप भी इनको छोड़दे, इन में धरा ही क्या है। अतः जब वेदों के मानने वाले क्षत्रिय ब्राह्मणो ने बहुत से मनुष्यो को आर्य्यसमाज की ओर ही झुकते देखा, तो उन्होने भी सभाएं स्थापन करनी आरम्भ करदी, जिनका नाम प्रायः सनातन धर्मसभा रखा जाता था, और यह सभाएं सरस्वती जी के सिद्धान्तो का प्रचण्ड खण्डन करने लग गई। क्योकि यह ब्राह्मण वैष्णव भी वेदो को ही मानते हैं और पुराणो को भी वेदों के समान ही मानते है, उन पुराणों के मानने वालो को आर्य्यसमाजी मिथ्या वादी कहते थे यहां तक कि पुराणो के बनाने वाले गर्भ मे ही क्यो न मर गये, इत्यादि—देखो सत्यार्थ प्रकाश सं० १९५४ के छपे हुए ग्यारवें समुल्लास मे पृष्ट ३५६ पंक्ति ५वीं से, और वेदो मे जो अश्वमेधादि यज्ञो में हिंस्यादिकों के कथन आते हैं; उन शब्दो

के मन कल्पित अर्थ बदलकर दयानन्द सरस्वतीजी ने नयामत निकाला ही था इसलिये वे दयानन्दीये अपने शङ्काओं को निवृत्त करने के लिये प्रायः प्रत्येक (हरेक) मत वालो से कुछ न कुछ पूछते ही रहते थे ॥

—o—

आपका रोपड़में उपदेश ।

श्री महासती पार्वतीजी महाराज जिस समय रोपड़में विराजमान थीं, उस समय आर्य्य-समाजके मेम्बर वकील मास्टर आदि भी आपकी सेवामें व्याख्यान सुननेके लिये उपस्थित हुए । क्योंकि आपके विचार बड़ेही उच्च और श्रेष्ठ थे जिनका सुनना दुर्लभ था, आप सूत्र श्री भद्गगतीके अनुसार षट द्रव्य अर्थात् जीव, अजीव, आकाश, काल, स्वभाव, परमाणु आदि पर ग्यारह द्वारोंसे अर्थात् इनके अर्थ समझनेके लिये ११ भेद (११ बातों) पर समझा कर व्याख्यान करती थी उसको वे लोक कई दिन तक सुनते रहे तब उनके और अन्य श्रोताओंके हृदयोंमें जो संशय थे वे सब दूर होगए और कहने लगे कि निस्सन्देह जिनेन्द्र देव सर्वज्ञ हुए हैं, जिन्होने आकाशादि सूक्ष्म षट् द्रव्यों

को कैसे दिव्य ज्ञान नेत्रोंसे देखा है, और ग्यारह द्वार (भेदों) से वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध होगया, कि साईन्स विद्याके आदि मूल जैन सूत्र ही हैं।

इस प्रकार रोपड़में धर्म ध्यानका बड़ा ही उद्यम होता रहा। चातुर्मास्य समाप्त होने पर आपने रोपड़से सियालकोटकी ओर विहार कर दिया। और मार्गमें गाओं गाओं, नगर नगर दया धर्मके अंकुर लगाती हुई पसरूरमे पधारी। पसरूरमे लाला गण्डा शाह, मूला शाह, पञ्जु शाह आदि ओसवाल (भावड़े) धर्मके अत्यन्त प्रेमी थे। गंडा शाहकी भगिनी जो कस्बा संभड़ियाल ज़िला सियालकोटमे मथुरादासको व्याही हुई थी, जिन के दो पुत्र लाला शिवदयाल व सोहन लालजी थे। सोहन लालजी अपने मामूं गंडा शाह म्यूनिसिपल कमिश्नरके यहां पसरूरमे रहते थे, और वहां ही सराफ़ी की दुकान करते थे। और स्रावकके बारह व्रतोंको भली भांति पालन करते थे। दोनों समय सामायिक प्रतिक्रमण भी किया करते थे, श्री महा-सती पार्वतीजी महाराजका व्याख्यान सुननेको प्रतिदिन आते थे। एक दिन सागर चक्रवर्तीका

वर्णन चलरहा था जिसमें यह कथन था, कि अत्यन्त प्राचीन समयमें सागर नामी राजा समस्त भारत वर्ष का चक्रवर्त्ती (सम्राट था) उसकी राजधानी अयोध्या थी। उसकी बत्तीस सहस्र राजकुमारी रानियां थीं, और साठ सहस्र पुत्र थे। वे लड़के दैवयोगसे गंगा नदीकी नहर खुदवाते हुए पर्वतके नीचे दबकर सब मृत्युको प्राप्त होगये। जब चक्रवर्त्ती महाराजको यह सूचना मिली, कि उसके साठ सहस्र पुत्र पर्वतके नीचे दबकर नश्वर संसारसे सदा के लिये आपसे जुदे होगये हैं, अर्थात् मृत्यु हो गये हैं, तो उनके शिर पर मानो वज्रपात हुआ और मूर्छित हो कर कटे हुए कदली स्तम्भकी न्याई भूमि पर गिर पड़े। सुधि आने के पश्चात् विचारने लगे कि शास्त्रकारोंने सत्य कहा है कि इस संसारका स्वभाव अनित्य है। सन्ध्या समयके बादलोंकी परछाईके समान क्षणभंगुर है और इस (रोग मन्दिर) शरीरकाभी कोई भरोसा नहीं क्योंकि जरा और मृत्यु-जिसके पीछे वाण ताने हुए लग रहे हैं इसलिये यह देह एक दिन अवश्य विनाशको प्राप्त हो जायेगी। और लक्ष्मीका भी कोई विश्वास नहीं, क्योंकि समुद्र तरंगकी न्याई इसकी प्रकृति चञ्चल है। जिसके

घटानेके लिये धनके लालसी बन्धु जन उद्यत रहते हैं और चोर लूटलेते हैं, राजा कर लगा देता है इत्यादि और स्वप्नकी न्याईं इस परिवारका भी कोई भरोसा नही है। यथा दृष्टांत कोई नगर निवासी स्रिष्ट अपने पुत्रका विवाह करके पुत्र और वधुको लेकर बड़ी धूमधामसे घर आया और उसके रहनेको रंग-महल दिया। वह स्रिष्ट कुमार अपने रंग महलमे अपनी पत्निके साथ नाना प्रकारके भोग विलास मे निमग्न हुआ, और प्रातःकालके समय उदरमें मेदशूल वा विशूचिका रोगसेमृत्यु होगया। तब उसके संबन्धी इस प्रकार विलाप करने लगे, कि कल हम किस धूम धामसे घोड़ी और डोली लेकर इस गृहमे प्रविष्ट हुए, और आज उसकी अर्थी लेकर उसी गृहसे निकलते हैं हा! शोक अतिशोक!! इत्यादि। उसका सम्पूर्ण मृत्यु सस्कार करके अपने २ ठिकाने बैठ गए और उसकी नवोढ़ा पत्नी घरमें बैठी हुई रात्रिके समय ऐसे विलाप करने लगी कि कलकी रात मेरा प्राण प्यारा पति इस रंगमहलमे इस कुसम शय्या पर ताकिया लगाए लेटा हुआ था, और आज वही एक जंगलके विषय श्मशानमें अग्नि चिता पर लेटा हुआ है जिसका गुलाबके फूलकी समान कोमल शरीर अग्निमे जल

रहा है । जिसके पास इस समय कोई मनुष्य नहीं है । जहां जम्बुक और भेड़िये आदि हिंसक जन्तु विचरते है । हाय हाय !! मैं अभागी इस रंगमहल में जीती ही बैठी हूं । हा दैव ! कल्ह क्या था, और आज क्या हो गया, क्या मुझको स्वप्न आया था इत्यादि, सच है स्वप्नकी न्याई इस परिवारको मानने मे क्या संशय रहा, और ओसके बिन्दुकी तरह न जीवनका ही भरोसा है । देखो मेरी सन्तान मेरे सामने चली गई तो मेरे जानेमें क्या सन्देह है । इनके अतिरिक्त मेरे देखते २ अनेक चले गए, और मै भी अनेकोंके देखते २ चला जाऊंगा । जिन पदार्थोंका हम लोक मोह करते हैं, उनमें से एक पदार्थ भी हमारे साथ जाने वाला नहीं है । साथ जाने वाला केवल मात्र पुण्य और पाप ही है । इसमें इतना ही भेद है कि पुण्यके फल सुखदाई होते है और पापके फल दुःखदाई होते हैं, तो अब ऐसी दुःखकी मूर्ति सन्मुख देखता हुआ भी मै मिथ्या सुखोंमें मन लगाऊं, यथा किसी पंडित ने श्लोक में कहा भी है ।

श्लोकः—व्याघ्रीवतिष्ठतिजरा परितर्जयन्ति,
रोगाश्चशत्रव इव परिहरतुदेहम् ।

आयु परिश्रवति भिन्नघटाद्यवाम्बु,
तथापि लोकोहितमाचरतिती चित्रम् ॥१॥

अर्थ—मनुष्य के शरीर को जरा विघाड़ी की न्याईं ताड़ती है और नाना प्रकार के रोग शत्रुकी न्याईं देहके बलको हरते हैं, फूटे घड़े के जल की न्याईं आयु नित्य प्रति घटती रहती है। ऐसा होने पर भी लोक सुख मानते हैं, बड़ा आश्चर्य्य है, अर्थात् इस मोहरूपी अविद्या के नसे की लहरों में पड़कर प्राणी भूलते हैं, तो क्या इस वर्तमान अवस्था को देखता हुआ मैं भी धर्म से शून्य रह जाऊं। नहीं नहीं, कदापि नहीं, अब मुझे शेष आयु धर्मके अर्पण करनी उचित है, राजा की यह दशा और विचार देखकर कई राजा और राजकुमार वैराग्यवान हो गए। तब मन्त्रियों ने प्रार्थना की, कि महाराज छोटे छोटे परिवार वाले मनुष्य भी अपने घरों का समुचित प्रबन्ध की चिन्ता करते हैं, तो क्या आप अपने सम्पूर्ण भरतखण्ड के प्रबन्ध की चिन्ता न करोगे ? यह सुनकर चक्रवर्त्ती राजा सागर ने लम्बी सांस लेकर अश्रु परिप्लुत नेत्रों से रोकर कहा कि मेरे सारे पुत्र बिना संतान ही अकाल मृत्यु होकर मिट्टी में समा गए, तो अब राज्य की बाग डोर किसके हाथ सौंपूं।

तव मन्त्री बोले—कि आप सत्य कहते हैं, परन्तु आप अन्तःपुर में निज दासियों द्वारा रानीयों से पूछकर निश्चय करलें, कदाचित् उनमें से कोई गर्भवती हो। तव ऐसा करने पर एक कुमार की रानी से समाचार मिला, कि छे मास का गर्भ है। तब राजा ने उस के गर्भ को ही राज तिलक दे दिया, और आप राज्य को छोड़कर अनेक राजा और राजकुमारों सहित संयम को धारण किया। उधर रानी के गर्भ अवधि पूरी होने पर पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम भागीरथ रखा गया। भागीरथ युवा होने पर सिंहासन पर बैठा, और वह उसी गंगा की नहर को लाया जिसके तट पर उसके पिता पितामह और पितृव्य (चाचे) मर गए थे, यही कारण है कि इस गंगा की नहर को भागीरथी कहते हैं इत्यर्थः। श्रीमहासतीजी महाराजके ऐसे प्रभावशाली वैराग्योत्पादक व्याख्यान को सुनकर बहुत से मनुष्यों को वैराग्य उत्पन्न हुआ, जिनमे सोहनलालजी श्रावक तो वैराग्य रूप ही हो गए।

एक दिन श्रीमती महासती पार्वतीजी महाराज से सोहनलालजी श्रावक ने प्रार्थना की कि महाराज मेरा मन संयम लेने को चाहता है, परन्तु संयम की

साधना अति कठिन है, इससे मन डरता है, कि कैसे साधना की जाएगी। सतीजी महाराजने उत्तर दिया कि भाई देख, हम कन्याएं (स्त्रिये) संयम को निभा रही है। तुम तो पुरुष हो, कठिन वृत्तिसे क्यों डरते हो, तुम को संयम पालना हमारी अपेक्षा सुगम है, तब सोहनलालजी बोले, अस्तु इस बात का भी विचार न किया जाय, परन्तु मेरी सगाई हुई हुई है, इसलिये मेरे सम्बन्धियों को अत्यन्त दुःख और क्लेश होगा। सतीजी महाराजने कहा, अरे भाई! स्त्री आदिक के बन्धन तो व्यर्थ हैं, जैसे कि तुलसीदास कह गए हैं:—

फूला फूला फिरत है, आज हमारा व्याह।
तुलसी गाय बजायके, दिया काठ में पायँ॥

क्योंकि पुरुषको स्त्री का बन्धन होता है, और स्त्री को बालको का, इसलिये भाई! तुम इस बन्धन मे मत पड़ो, क्योंकि विषय भोग आदि सुखों से ही मनुष्य जन्म की बड़ाई नहीं है, इनको तो पशु भी जानतेहैं, परन्तु धर्म्मको पशु नहीं जान सकते, इसलिये मनुष्य का सबमे बड़ा कर्त्तव्य धर्म ही का करना है, अर्थात् मनुष्य जन्मकी भलाई और बुराई धर्मके करने व न करने पर ही निर्भर है। तुम लोगों ने अनेक

तब मन्त्री बोले—कि आप सत्य कहते हैं, परन्तु आप अन्तःपुर मे निज दासियों द्वारा रानीयों से पूछकर निश्चय करलें, कदाचित् उनमें से कोई गर्भवती हो। तब ऐसा करने पर एक कुमार की रानी से समाचार मिला, कि छे मास का गर्भ है। तब राजा ने उस के गर्भ को ही राज तिलक दे दिया, और आप राज्य को छोड़कर अनेक राजा और राजकुमारों सहित संयम को धारण किया। उधर रानी के गर्भ अवधि पूरी होने पर पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम भागीरथ रखा गया। भागीरथ युवा होने पर सिंहासन पर बैठा, और वह उसी गंगा की नहर को लाया। जिसके तट पर उसके पिता पितामह और पितृव्य (चाचे) मर गए थे, यही कारण है कि इस गंगा की नहर को भागीरथी कहते हैं इत्यर्थः। श्रीमहासतीजी महाराजके ऐसे प्रभावशाली वैराग्योत्पादक व्याख्यान को सुनकर बहुत से मनुष्यों को वैराग्य उत्पन्न हुआ, जिनमे सोहनलालजी श्रावक तो वैराग्य रूप ही हो गए।

एक दिन श्रीमती महासती पार्वतीजी महाराज से सोहनलालजी श्रावक ने प्रार्थना की कि महाराज मेरा मन संयम लेने को चाहता है, परन्तु संयम की

साधना अति कठिन है, इससे मन डरता है, कि कैसे साधना की जाएगी। सतीजी महाराजने उत्तर दिया कि भाई देख, हम कन्याएं (स्त्रियें) संयम को निभा रही हैं। तुम तो पुरुष हो, कठिन वृत्तिसे क्यों डरते हो, तुम को संयम पालना हमारी अपेक्षा सुगम है, तब सोहनलालजी बोले, अस्तु इस बात का भी विचार न किया जाय, परन्तु मेरी सगाई हुई हुई है, इसलिये मेरे सम्बान्धियो को अत्यन्त दुःख और क्लेश होगा। सतीजी महाराजने कहा, अरे भाई! स्त्री आदिक के बन्धन तो व्यर्थ हैं, जैसे कि तुलसीदास कह गए हैं:—

फूला फूला फिरत है, आज हमारा व्याह ।
तुलसी गाय बजायके, दिया काठ मे पायँ ॥

क्योंकि पुरुषको स्त्री का बन्धन होता है, और स्त्री को बालकों का, इसलिये भाई! तुम इस बन्धन में मत पड़ो, क्योंकि विषय भोग आदि सुखों से ही मनुष्य जन्म की बड़ाई नहीं है, इनको तो पशु भी जानतेहैं, परन्तु धर्मको पशु नहीं जान सकते, इसलिये मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य धर्म ही का करना है, अर्थात् मनुष्य जन्मकी भलाई और बुराई धर्मके करने व न करने पर ही निर्भर है। तुम लोगोने अनेक

जन्म भोगों के निमित्त लगा दिए हैं। एक जन्म धर्म्म के निमित्त ही लगा देना चाहिये। इन वचनों से सोहनलालजी के मन की निर्बलता दूर होगई, और संयम लेनेका निश्चयकर लिया, और कहा कि माता पितासे छुटकारा किस प्रकार होगा, तो सतीजी महाराजने कहा, कि उनसे विधि पूर्वक आज्ञा मांगो, इस शिक्षाको सुनकर सोहनलालजी हाथ जोड़ वन्दना कर अपने घरको चले गये और यथा अवसर माता पिता से प्रार्थनाकी, कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं संयम धारण करूं। इस बात को सुनते ही माता पिता व्याकुल होगए, और कहा, कि पुत्र! तू हमे प्राणों से अधिक प्यारा है, भला तुमको हम साधु कैसे होने देगे। हम तो तेरा विवाह करके कुल की वृद्धि देखना चाहते हैं। तुझसे बड़ी बड़ी आशाएं रखते हैं, तुझको हमने पाल पोष कर बड़ा किया। लिखाया पढाया, उसका प्रतिकार (बदला) यहहै कि तू हमको छोड़कर चला जाए, यह सुनकर सोहनलाल जी ने प्रार्थना की, कि पिताजी! किसी का पुत्र जूआ आदि व्यसनो में पड़कर कुलमें कलङ्क लगाता है, किसी का धन नाश करता है, कोई धर्म्म गवाता है, कोई मृत्यु का ग्रास होजाता है, तब उसके माता

पिता क्या कर लेते है। मै तो आपकी शिक्षाओं को सफल करना चाहता हू, इत्यादि प्रश्नोत्तर बहुत समय तक होते रहे और सतीजी महाराज पसरूर से विहार करके स्यालकोट पधारीं, और सॅव्वत् १९३३ विक्रमी का चातुर्मास्य स्यालकोट का ही स्वीकार किया ॥

——:०:——

सं० १९३३ का चातुर्मास्य स्यालकोट मे ।

आपका चातुर्मास्य स० १९३३ का स्यालकोट मे हुआ इन दिनोमें वहां लाला सौदागरमलजी व लाला तावामलजी भक्त आदिक जैन शास्त्रो के श्रोता, और बहुत से "श्रावक" धर्म के प्यारे लाला रूपाशाह,लाला जट्टुशाह,लाला पालाशाह आदिक विद्यमान थे, उन दिनो मे आत्मारामजी ने जैन मुनिओ का सनातन वेप अर्थात् मुख वस्त्रिका को उतारा ही था और उसके स्थान पर रूमालके तौर पर एक छोटेसे कपड़ेके टुकड़ेको हाथ मे रखा ही था और श्वेताम्बरी कहलाते हुए भी जैन धर्मके सूत्रोसे विरुद्ध पीताम्बरी मूर्ति पूजक नया मत पकड़कर पीला वेप पहना ही था इसलिये नगर नगर और स्थान स्थान पर इसी नए मतका चर्चा

होने के कारण स्यालकोट के श्रावक भी श्री महा-सतीजी महाराजके चरणोंमें मुख वस्त्रिका और ढेइए शब्द के सम्बन्धमें ही प्रश्नोत्तर करते रहते थे, श्री महासतीजी महाराज सूत्रानुसार और युक्ति-योसे उनका पूरा पूरा समाधान करती थीं। सुतरां वे लोग आपके युक्तियुक्त उत्तरोंको सुनकर अपने धर्मसे भली भान्ति परिचित हो गए और संशयरूपी रोगसे निवृत्ति पाकर प्रसन्नता पूर्वक आपकी शतमुख प्रशंसा करने लगे, और आश्विन मासमें पसरूर वाले दूलोरायजी और सोहनलालजी भी आपके दर्शन करनेको आए और सोहनलालजी ने प्रार्थना की कि महाराज आपकी कृपासे मेरा मनोर्थ सिद्ध हो गयाहै अर्थात् मैंने अपने माता पितासे बहुत विनती करके संयम लेनेकी आज्ञा लेली है और चतुर्मासेके पश्चात् श्री श्री श्री पूज अमरसिंहजी महाराजके चरणोंमें दीक्षा धारण करूंगा । सतीजी महाराजने कहा कि बहुत अच्छा अपने जीवनको धर्ममे अर्पण करो फिर उन्होंने चतु-मासके पश्चात् मृगशर (मग्घर) शुदि ५ सं० १९३३ मे अमृतसरमें तीन और वैरागिओंके सहित बड़े महोत्सवसे परमपूज्य श्री१००८अमरसिंहजी महाराज

के शिष्यानुशिष्य श्रीमान् मुनि धर्मचन्दजी महाराज के नाम दीक्षा धारणकी और श्रीपूज अमरसिंहजी महाराजके चरणोंमे ज्ञान और क्रियाकी विधिको सीखना आरम्भ किया, इनका विस्तृत वर्णन सं० १९५१के वर्णनमें आएगा। और आपनेभी चातुमासा की समाप्तिके पश्चात् स्यालकोटसे विहारकर दिया और कई एक गांव नगरोमें धर्मोपदेश करती हुई खरड़ ज़िला अंवाला मे पधारी।

सं० १९३४ का चातुर्मास्य खरड़ में।

आपका चतुर्मासा सं० १९३४ वि० खरड़ ज़िला अम्बाला में स्वीकार हुआ इस चतुर्मासेमें धर्मका वड़ाही उद्यम रहा आपने ९ दिनका एक व्रत और दो साध्वीओने एक एक मास क्षमणका व्रत किया और वहांके श्रावकोंने भी यथाशक्ति दया दानमे तन मन धन लगाया, अर्थात् कई श्रावको ने फल फूल हरी सब्ज़ी आदि रसोका त्यागकर दिया और कई सेवकोंने ब्रह्मचर्य्यको जीवन भरके लिए धारण किया और कई पुरुषोंने परनारीका त्याग आदि धर्म धारण किया, इसके अतिरिक्त कई मनुष्योने मांस मद और हुक्का पीने तकका त्याग किया और कई स्त्रीओने खटमल, पिस्सू, भृड, विच्छू, जूं, लीख आदिक

छोटे छोटे जीवों तकके मारनेका त्याग किया। इस स्थान पर श्री श्री १००८ जैनाचार्य्य ज्ञानके भण्डार क्षमाके सागर पूज श्री मोतीरामजी महाराजका भी चतुर्मासा था उनकी कृपासे वहां दया धर्मका वड़ा ही चर्चा रहा और श्री पूजजी महाराजके पास आपने इस चतुर्मासेमें निम्नलिखित दो सूत्रो की धारणा की--

(१) सूत्र जीवाभीगम (२) सूत्र जम्बु दीप पन्नत्ती (प्रज्ञप्ती)

पाठक ! खरड़के लोग कैसे भाग्यवानथे कि यहां पर श्री श्री श्री पूज मोतीरामजी महाराज व श्री श्री श्री महासती पार्वतीजी महाराजका चतुर्मासा हुआ। चतुर्मासाके समाप्त होने पर आप विहार करके माछीवाड़ा लुधियाना फगवाड़ामें धर्मोपदेश करती हुई जालन्धर पधारीं और श्रावकोंकी विनती पर आपने सं० १९३५ का चातुर्मास्य जालन्धर नगरका स्वीकार कर किया।

सं० १९३५ का चातुर्मास्य जालन्धर में।

आपका सं० १९३५ का चतुर्मासा जालन्धर नगर में हुआ। यहांके श्रावक श्राविकाओंने धर्म ध्यानमें यथाशक्ति अच्छा उद्यम किया परन्तु इस

चतुर्मासेमें आपको उपदेश देनेका पर्य्याप्त समय नहीं मिला, क्योंकि श्रीमती सती परमेश्वरीदेवीजी को ज्वर हो गयाथा इसलिये आपका अधिकांश समय उनकी सेवा सुश्रूषामें लगताथा परन्तु शोक! उस साध्वीका देहान्त चतुर्मासामे ही हो गया। चतुर्मासा समाप्त होनेके पश्चात् आप जालन्धरसे विहार करके लुधियाना मालेर कोटला आदि क्षेत्रों में दया धर्मका उपदेश करती हुई फिर हुश्यारपुर पधारीं। हुश्यारपुरके भाईयों व बाईयोको आपके वहां पधारनेसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई सबने आपके चरणोंमें चतुर्मासा करनेकी विनतीकी और आपने उनकी विनती पर सं० १९३६ का चातुर्मास्य हुश्यार पुर का स्वीकार किया।

सं० १९३६ वि०का चातुर्मास्य हुश्यारपुर में

आपका संवत १९३६ वि० का चतुर्मासा हुश्यार पुर में हुआ। और आत्मारामजी संवेगी के शिष्य विशनचदजी का चातुर्मास्य भी वहीं था। और इन दिनो प्रायः मूर्ति पूजन व मुख वस्त्रिका और तीर्थयात्रा आदि विषयों पर जैनी भाईयोका परस्पर विवाद था इसलिये इधरसे लाला पिण्डीमलजी व

लाला हेमराजजी जो धर्मके बड़े प्रेमी थे और उधर से लाला नत्थुमल चौधरी व नत्थुमल सराफ आदि जो आत्मारामजी के सेवक थे आपसमें ऊपर लिखे विषयों पर प्रायः प्रश्नोत्तर किया करते थे परन्तु विशनचन्द संवेगीने किसी भी प्रामाणिक सूत्र द्वारा जड़ मूर्ति पूजा व जड़ तीर्थयात्रा और मुख वस्त्रिका को हाथमें रखना सिद्ध नहीं किया और श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने सूत्र प्रश्न व्याकरण और ग्रन्थ सन्देह दोलावलिके अनुसार मूर्ति पूजाका खंडन कर दिखाया, और सूत्र निरावलिका भगवती और सूत्र ज्ञाता धर्म कथाके अनुसार जड़ तीर्थयात्राका खंडन और संयम यात्राका मंडन कर दिखाया और सूत्र महानशीथ से मुख वस्त्रिका का मुख पर बांधना सिद्ध कर दिखाया, इस पर भाईयों व बाईयोंको बहुत प्रसन्नता हुई, और दया दान शील सन्तोष तप भावनारूप धर्मका बड़ा प्रचार होता रहा बाईयोंने पचरंगी तपस्या की अर्थात् १ दिनके व्रतसे ५ दिन के व्रत तक बहुत व्रत किए और स्वयं श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने भी १० दिनका एक व्रत किया वहां आपके प्रभावशाली व्याख्यानोंने श्रोताजनों के हृदयों पर इतना असर डाला कि लाला मिलखी

राम ओसवाल और उसकी माता बाई आसादेवीजी और अमृतसर वाली बाई सिहालदेवीजी जिनका नाम अब श्री नंदकौरजी था जो लाला हेमराज साहूकार हुश्यारपुर निवासीके पुत्रकी धर्मपत्नी विधवा थी और बाई जीवीजी ला० कन्हैयालाल जि० करनालथानेसर निवासीके भतीजेकी धर्मपत्नी विधवा जो हुश्यारपुर मे आपके दर्शनोको आई हुई थीं चारों हीको वैराग्य होगया। चतुर्मासेके समाप्त होनेके पश्चात् आप वहांसे विहार करके छावनी जालन्धर में पधारी ।

छावनी जालन्धर में दीक्षा उत्सव ।

इस समय जैनाचार्य्य श्री श्री १००८ पूज अमर सिंह जी महाराज भी छावनी जालन्धर मे विराजमान थे, आपने उनके दर्शन किये और वहां पर लाला मिलखीमल जी अपनी माता व बाई निहाल देवी जी और बाई जीवीजी सहित चारों ही दीक्षा लेने के लिए उपस्थित हो गए ।

छावनीके श्रावक व श्राविकाओ ने विनती की कि दीक्षाका महोत्सव यहीं रचाया जावे, सुतरां उनकी प्रार्थना स्वीकारकी गई और वहांकी बिरादरी

की ओर से मग्घर शुदि २ की तारीख दीक्षाकी नियत की गई । श्रीमती निहालदेवी जीने कई सहस्र रुपये के भूषण अपने निज संबंधीओं में स्वयं वांटके दे दिएथे और अपनी कई सहस्र रुपएकी संपत्ति लाला रलेशाहजी गोटा वाला अमृतसर निवासीको जो उनकी ननद के पुत्र थे देदी थी और एक सहस्र रुपया रोक स्थानक अमृतसरके लिये दियाथा और लग भग २ सहस्र रुपया दान पुण्य व अपने दीक्षा महोत्सव पर लगाया । नियत तिथि पर बहुत से नगरों के श्रावक व श्राविका बड़े हर्ष से इस महोत्सवमें सम्मिलित हुए, दीक्षा महोत्सवकी सवारी वैराग्यवान मिलखी राम और श्रीमतीओं सहित बड़े ओत्सवसे भजन मंडलीओं के पवित्र नगरकीर्तन के साथ बाजारों में जय जय कारकी घोषणा करती हुई बड़ी धूम धामसे प्रवृत्त हुई (गुज़री) और मिलखीराम व श्रीमतिओं पर से रुपया निछावर करके चारों ओर बखेरते हुए सर्कारी सराय में जो रेलवे स्टेशनके साम्हने है पहुंचे। इस पवित्र स्थान मे उन चारोंको दीक्षाका पाठ पढ़ाया गया। इसके पश्चात् आप वहांसे विहार करके। लुधियाना जगराओं आदि नगरोंमे अपने उपदेशों से

दया धर्मकी वर्षा करती हुई अमृतसर पधारीं, उस समय वहां श्रीपूज अमरसिंहजी महाराज विराजमान थे, आपने उनके दर्शन किये और उन्होंने आपको यह आज्ञा दी कि आप इस वर्ष लाहौर में चतुर्मासा करें क्योंकि वहां किसी साधु का लगभग ४० वर्ष से कोई चतुर्मासा नहीं हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि लाहौर के श्रावक व श्रविका धर्म ध्यानमे शिथिल हो रहे हैं। आपने उनकी आज्ञानुसार सं० १९३७ का चातुर्मास्य लाहौर का स्वीकार किया।

सं० १९३७ का चातुर्मास्य लाहौर में।

आपसं० १९३७ का चतुर्मासा लाहौर में हुआ वहां प्रतिदिन आपके उपदेश होने लगे जैन सूत्रोंकी अमृत रूपी वाणी की इतनी वर्षा हुई कि जो ज्ञान मय पौदे जैन श्रावकों के हृदयों मे उपदेशाभाव से सूखे हुए थे वे फिर हरे होकर लहराने लगे अर्थात् जैन धर्म के नियमोको जान कर धर्ममें दृढ़ होगए जिसका परिणाम यह हुआ कि सब एक मन होकर धर्मध्यानमे प्रयत्न करने लगे जिससे जैन धर्म का बड़ा ही उद्योत हुआ।

चतुर्मासाकी समाप्ति पर आप वहां से विहार करके नगर नगरमें धर्मका प्रचार करती हुई रियासत जम्बुमें पधारीं और वहांके भाईयोंकी धर्म रुचि देख कर उनकी विनती पर सं० १९३८ का चतुर्मासा भी स्वीकार किया ।

सं० १९३८ का चातुर्मास्य जम्बु में दूसरीबार

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं० १९३८ का चतुर्मासा दूसरीबार जम्बू रियासत में हुआ वहां के श्रावक श्राविकाओं ने धर्म ध्यान में बड़ा ही उत्साह प्रकट किया । इस चतुर्मासेमें श्रावक श्राविकाओंने दया और पोसा बहुत किए (प्रश्नः) दया पोसा किस वृत्तिको कहते हैं (उत्तरः) दया और पोसा कहतेहैं कि धार्मिक लोक एकएकान्त मकानमें एकत्र होकर एक दिन रातके लिए अपने घरका कामकाज अर्थात् सर्वारम्भको छोड़कर ब्रह्मचर्य्य वृत्तिमें रहकर पठन पाठन करें व आत्माके सुधारके लिये धर्मचर्चाकरें अर्थात् धर्मपरनिश्चय बधानेके लिये प्रश्नोत्तरकरें व भजनस्तोतर गानकरें, और भोजन भी उसी मकानमे अपने व अपने भाइयों के गृहोंसे अथवा बाजारसे मंगवाकर करे ऐसी वृत्तिमें रहनेको दया कहते हैं और जब इस प्रकार

की उपरोक्त वृत्तिमें रहकर भोजन और जल आदि चारों आहार का भी त्यागकर दिया जावे, ऐसी वृत्तिको पोसा व्रत कहते हैं, दया और पोसा की वृत्ति अधिकांश मे समान ही है, केवल भोजन जल के करने और न करने का ही अन्तर है। एक श्राविकाने एक व्रत ३१ दिन का और एकने एक व्रत ३० दिनका और एक ने एक व्रत २२ दिनका और कई बाईओ ने दस,दस दिन, आठ,आठ दिन के व्रत किये और कई भाई बाईयों ने पांच पांच चार चार तीन तीन दो दो और एक एक दिनके व्रत किए और अपने लागियो और अनाथो को दान भी जी खोलकर दिया, और कई एक श्रावक श्राविकाओ ने फल फूल आदिक हरी सबजी का खाना आयु पर्य्यन्त छोड़ दिया, कई एकने तो मुरब्बा आचार तक का खाना भी छोड़ दिया (रसो का त्याग) कर दिया। कई स्त्री और पुरुषों ने आयु भरके लिये ब्रह्मचर्य्य की वृत्तिको धारण किया, और जैनमें जो आठ दिन प्रय्यूषण......पर्व के होते हैं उनमे साधु साध्वी और श्रावक श्राविका सबजो अपनी भूल से कोई नियम व्रत मे दोष लगा समझे तो उस भूल का और उन दोषों का प्रायश्चित करते हैं, अर्थात् दान

और तप की वृद्धि करके शुद्ध होते हैं। श्रावकों ने इन आठों ही दिनों में नगर के समस्त भठभुञ्जों की दुकानें उनकों क्षति के रुपये देकर बन्द करवादीं, और नगर के समग्र कसावों और माछीओं की दुकाने भी उनको खर्च देकर बन्द करवाने को थे। जब कि लाला नन्द शाह व लाला निहाल शाह आदि साहूकारों ने जिनकी सरकार में चलती थी सरकार के यहां से सदा के लिये आज्ञा दिलवादी, कि पर्य्यूषण पर्व के आठों ही दिनों में अपनी २ दुकानो को बन्द रक्खे और किसी पशु को न मारें। इस महान् उपकार का नगर में बड़ा ही यश फैला कि यह जैनियों का पर्व कैसा उत्तम है कि जिसमे इतने जीव घात का पाप दूर हुआ है,अस्तु इस प्रकार के उपकार आपके ही आगमन का फल था।

आपकी धर्म चर्चा जम्मूके चातुर्मास्य में।

जब श्रीमती पार्वतीजी महाराजके दयामय व्याख्यानों से नाना प्रकारके उपकार हुए और आपकी प्रशंसा प्रत्येक व्यक्ति के मुख से होने लगी तो अन्य मतोंके भी बहुत से लोग आपकी सेवामें उपस्थित होने लगे और अनेक प्रकार की चर्चा

करते रहे जिनमे से एक चर्चा नीचे लिखी जाती है। एक दिन हिज़हाइनैस श्रीमहाराजा साहब बहादुर जम्मू व काश्मीर नरेश के मन्दिरके पुजारी पण्डितजी मिसरी के कूज़ों का थाल और एक मलमल का थान और कुछ रोक रुपये अपने साथ लाकर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजके दर्शनार्थ आए और वे सब वस्तुएं आपकी भेटा कीं। इस पर आप ने कहा कि हम जैन के साधु साध्वी इन पदार्थों की भेट नही लेते हैं, हमारी भेट तो यह है—

(१) मन से सत्य धर्म पर निश्चय लाना।

(२) वचन से सत्य धर्म की स्तुति करना।

(३) काया से धन और कामिणी के त्यागी साधुओ को नमस्कार करना।

(४) हिसा, झूठ, चोरी अर्थात् राज-द्रोह और धर्म विरुद्ध कार्य्यों का त्याग करना अथवा तृष्णा घटाने के व दया के लिये किसी फल आदिक का त्याग कर देना। इत्यादि—

यह सुनकर पण्डितजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि इन अर्पित पदार्थों को अब हम क्या करें। इस पर आप तो मौन ही रहीं, परन्तु उस समय जो लोग विद्यमान् थे, उन्हों ने यह कहा कि आप

इन्हें मन्दिरमें ही चढ़ा देवें, तब उन्हों ने वे सब वस्तुएं मन्दिर में ही भिजवादीं, और उन्होंने आप से कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति मांगी, आपने कहा पूछ सकते हैं।

प्रश्न पण्डितजी—आपके मतमें मूर्त्तिपूजन से मोक्ष है किंवा नहीं ?

उत्तर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज—जैन सिद्धान्त में मोक्ष मूर्त्ति-पूजासे नहीं आत्मज्ञानसे है।

पण्डितजी—सत्य है हमारे मत में भी कहा है कि यावत्काल ज्ञान नहीं। तावत्काल मूर्त्तिपूजन है, परन्तु जब तक ज्ञान न हो तब तक तो मूर्त्तिपूजन चाहिए। गुड़ियों के खेल की न्याई, जैसे छोटी बालिकाएं गुड़ियों के खेल में मन लगाती हैं, परन्तु तरुण होने पर जब विवाह होकर ससुराल में जाती हैं, तब गुड़ियों के खेल स्वयमेव ही छोड़ देती हैं। इत्यर्थः—

श्रीमहासतीजी—हां हां अज्ञान अवस्था की क्रिया तो ज्ञान अवस्था में स्वयमेव ही छूट जाती है, परन्तु क्या आप मूर्त्ति-पूजकों में मूर्त्ति पूजते २ जब ज्ञान होजाता है तब मूर्त्ति-पूजा छोड़ देते हैं।

जैसे बालिका युवती होकर गुड़ियों का खेल छोड़ देती हैं।

पण्डितजी–तनक चुप रहकर बोले कि छोड़ना तो चाहिए।

महासतीजी–मैंने तो बूढे बूढे मूर्त्तिपूजक देखे है, परन्तु किसी को अन्त समय तक भी मूर्त्तिपूजन छोड़ते नहीं देखा जिससे स्पष्टतया सिद्ध होता है कि उनको मूर्त्ति-पूजा से ज्ञान ही नहीं होता, यदि ज्ञान होजाता तो मूर्त्ति-पूजा छोड़ देते, क्योंकि आप लोकों ने इस बात को पहले स्वयं स्वीकार किया है कि यावत्काल ज्ञान नही तावत्काल मूर्त्ति-पूजा है। इत्यर्थः—

पण्डितजी–प्रसन्नता पूर्वक मौन रहे।

पाठकगण! इस विषय की विस्तार पूर्वक चर्चा ज्ञान दीपिका और सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन पुस्तक में लिखी है, जिनको पश्चात् श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने स० १९४६ वि० मे ज्ञान-दीपिका और स० १९६१ मे सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन रचा है, उसमें मे देख सकते है॥



पण्डितजी के अन्तःकरण और आस्तिक नास्तिक पर प्रश्न ।

फिर उन्हीं पण्डितजी ने श्रीमहासतीजी महाराजसे प्रश्न किया कि आपके मतमें अन्तःकरण को ही जीव माना है अथवा जीव कोई अन्य है, उत्तर महासती पार्वतीजी—अंतःकरण तो जड़ है और जीवात्मा चेतन है दोनों एक कैसे होसकते हैं, ऐसा प्रश्न तो नास्तिक किया करते हैं ।

पण्डितजी—नास्तिक तो वेदों के निन्दक होते हैं जैसे हमारी मनुस्मृतिमें लिखा है:—

"नास्तिको वेद निन्दकः" ।

श्रीमहासतीजी—ऐसे तो और भी कह देंगे कि "नास्तिको जैन निन्दकः" "नास्तिको ग्रन्थ निन्दकः"। "नास्तिको पुराण निन्दकः" तो यह आस्तिक नास्तिकपन क्या हुआ यह तो एक झगड़ा हुआ। इसलिए आस्तिक और नास्तिक दोनों शब्दों के शब्दार्थ का ही विचार करना उचित है । यथा पण्डितजन कहते हैं:—

परलोकादि आस्तिमतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः ।
नास्तिमतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः ॥

अर्थात्—जड़, चेतन, आत्मा, परमात्मा, लोक

परलोक, बन्ध, मोक्ष इनका जो अस्तित्व मानें वे आस्तिक है, और जो इन पदार्थों के अस्तित्व को न मानें वे नास्तिक है।

इस प्रकारके प्रश्नोत्तरों से श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने सिद्धकर दिया कि अन्तःकरण तो जड़ है और जीवात्मा चेतन है। इसका विस्तृत वर्णन आपने अपने रचे हुए सम्यक्त्व सूर्य्योदय जैन ग्रन्थ में लिखा है जो पश्चात् सं० १९६१ वि० में छपा है। वहां से देख सकते हैं।

अपितु आपके उपरोक्त सन्तोषजनक उत्तरोको सुनकर पण्डितजी अन्य पण्डितो व श्रोताओं सहित बहुत ही प्रसन्न हुए और धन्यवाद देते हुए प्रमाण करके चले गए।

और आपने इसी प्रकार ज्ञान ध्यान का प्रकाश करते हुए चतुर्मासके समाप्त होने पर विहार कर दिया।

आपका जम्मू से विहार करना।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने जम्मू से स्यालकोट की ओर विहार कर दिया, और जम्मूके श्रावक व श्राविका दो सौ के लगभग नवां शहर तक जो जम्मू के ९ कोस दूर है, आपके पहुंचाने के लिए सेवामे साथ गए। इस पर स्यालकोट के

पण्डितजी के अन्तःकरण और आस्तिक नास्तिक पर प्रश्न ।

फिर उन्हीं पण्डितजी ने श्रीमहासतीजी महाराजसे प्रश्न किया कि आपके मतमें अन्तःकरण को ही जीव माना है अथवा जीव कोई अन्य है, उत्तर महासती पार्वतीजी—अंतःकरण तो जड़ है और जीवात्मा चेतन है दोंनों एक कैसे होसकते हैं, ऐसा प्रश्न तो नास्तिक किया करते हैं ।

पण्डितजी—नास्तिक तो वेदों के निन्दक होते हैं जैसे हमारी मनुस्मृतिमे लिखा है:—

"नास्तिको वेद निन्दकः" ।

श्रीमहासतीजी—ऐसे तो और भी कह देंगे कि "नास्तिको जैन निन्दकः" "नास्तिको ग्रन्थ निन्दकः"। "नास्तिको पुराण निन्दकः" तो यह आस्तिक नास्तिकपन क्या हुआ यह तो एक झगड़ा हुआ। इसलिए आस्तिक और नास्तिक दोनों शब्दों के शब्दार्थ का ही विचार करना उचित है । यथा पण्डितजन कहते हैं:—

परलोकादि अस्तिमतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः ।
नास्तिमतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः ॥

अर्थात्—जड़, चेतन, आत्मा, परमात्मा, लोक

परलोक, बन्ध, मोक्ष इनका जो अस्तित्व मानें वे आस्तिक हैं, और जो इन पदार्थों के अस्तित्व को न मानें वे नास्तिक हैं।

इस प्रकारके प्रश्नोत्तरो से श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने सिद्धकर दिया कि अन्तःकरण तो जड़ है और जीवात्मा चेतन है। इसका विस्तृत वर्णन आपने अपने रचे हुए सम्यक्त्व सूर्य्योदय जैन ग्रन्थ में लिखा है जो पश्चात् सं० १९६१ वि० में छपा है। वहां से देख सकते हैं।

अपितु आपके उपरोक्त सन्तोपजनक उत्तरोंको सुनकर पण्डितजी अन्य पण्डितो व श्रोताओ सहित बहुत ही प्रसन्न हुए और धन्यवाद देते हुए प्रमाण करके चले गए।

और आपने इसी प्रकार ज्ञान ध्यान का प्रकाश करते हुए चतुर्मासके समाप्त होने पर विहार कर दिया।

आपका जम्मू से विहार करना।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने जम्मू से स्यालकोट की ओर विहार कर दिया, और जम्मूके श्रावक व श्राविका दो सौ के लगभग नवां शहर तक जो जम्मू के ९ कोस दूर है, आपके पहुंचाने के लिए सेवामें साथ गए। इस पर स्यालकोट के

श्रावक व श्राविका भी आपकी अभ्यर्थना (अगवानी) के लिए अनुमान अढ़ाई सौ की संख्यामें नवांशहर में आ उपस्थित हुए। इस स्थान पर आप ने अहिंसा परमोधर्म्मः अर्थात् जीव दया के विषय पर एक अत्यन्त मनोहर व्याख्यान दिया। नवां शहरके लोग भी व्याख्यान सुनने के लिए एकत्र होगए थे, और सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए उनमें से कई मनुष्यों पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हों ने उसी समय जीव घात (निरापराधी पशु पक्षी को जान बूझकर मारनेका त्यागकर दिया) और कईयों ने मांस मदिरा आदि का भी त्यागकर दिया। वहां से चलकर आप स्यालकोट नगरमें विराजीं, और कुछ दिन अपने पवित्र उपदेशों की वर्षा से वहांके निवासियों में धर्म ध्यान का प्रचार करके विहार कर दिया और गुजरांवाले में पधारीं। वहां आपके वैराग्य भरे व्याख्यानों से लाला निहालचन्द ओसवाल पुजेरा की पुत्री विधवा बाई कर्मदेवीजी को वैराग्य हुआ और दीक्षा लेने की इच्छा करके अपने पितासे आज्ञा मांगी, जिन्होंने बहुत विवाद के पश्चात् जब उसको अपने सङ्कल्पमें पक्का पाया तो आज्ञा देदी।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज वहांसे विहार करके जब अमृतसर में विराज चुकी, तब कर्मदेवी जी भी उनके चरणों में आ उपस्थित हुईं । वहां के श्रावक व श्राविकाओंने बड़े हर्षके साथ उनकी दीक्षा की तारीख पोष वदी ८ नियत की और बड़े उत्साह से दीक्षा दिलवादी । अमृतसरसे विहार करके अनेक नगरों मे दया धर्म की ध्वजा फहराती हुईं आप हुश्यारपुर पधारी, और सं० १९३९ का चातुर्मास्य वहीं का स्वीकार हुआ ।



पाठकवर्य्य ! सं० १९३८ वि० मे जैनाचार्य्य महाराज श्री श्री १००८ पूज अमरसिंहजी महाराज का देवलोक पयान हुआ था, इसलिये उनकी संक्षिप्त जीवनी भी लिख दीजाती हे ॥

श्री १००८ पूज अमरसिंहजी महाराजकी संक्षिप्त जीवनी ।

आपके पिताका नाम श्रीमान लाला बुधसिंह जी और माताजीका नाम श्रीमती कर्मदेवीजी था । आपके पिताजी अमृतसरके निवासी ओसवाल (भावड़ा) के एक उच्च और सद्वंशमे से थे उनका व्यापार जवाहरातका क्रय विक्रय का था ।

आपका जन्म सं० १८६२ वि० मे हुआ था आपके माता पिताने आपका पालन पोषण वड़े लाड प्यार से किया और वड़े प्रेमसे विद्या पढ़ाई। आप अपने माता पिताके बालक पनसे ही आज्ञा पालक थे और दुकान व घरके काम करनेमें निपुण थे और दया दान नियम सामायिक सम्वर पूसा आदि धर्म ध्यानभी प्रत्येक उचित व नियत अवसरों पर करते थे। आपका विवाह एक उत्तम ओसवाल वंशमें स्यालकोटमें किया गया था आपके तीन पुत्र और दो कन्याएं थी परन्तु शोक! आपके दो पुत्र तो वहुत ही छोटी आयुमे काल कर गए और तीसरा जो वड़े प्यारसे पला था और कुछ शिक्षा भी पा चुका था वहभी ८ वर्षका होकर इस नश्वर संसार से चला गया जब तीनों ही एक एक करके आप के देखते २ कूंच कर गए तो आपके मन पर जगतकी अस्थिरताका सच्चा चित्र (फोटो) अङ्कित होगया और आपने समझ लिया कि जगत के संपूर्ण पदार्थ अनित्य है, जब मेरे पुत्र मेरे देखते २ ही गुम हो गए है तो मै क्या जीता ही रहूंगा मै भी किसी दिन चला जाऊगा इस जीवनका भरोसा ही क्या है। किसीने सच कहा है:—

दुःख सागर है यह संसरा।
भूला है यह मन मतवारा॥
निरानन्द बहुतर है शोक।
एक दिन जाना है पर लोक॥

क्योंकि यह प्रकृतिका नियम है कि पुण्यवान प्राणीओको स्वयमेव अच्छा सयोग मिल जाता है इस लिए जब आप एक वार जवाहरातके व्यापार को रियासत जयपुरमें पधारे तो वहां आपको पुण्य योगसे श्री १००८ पूज श्री रामलालजी महाराजके दर्शन हुए, जब आपने उनका व्याख्यान सुना तो आपका मन जो पहलेहीसे संसारके अनित्य पदार्थों से उदासीन था उनके परमोत्तम उपदेशसे औरभी अधिक उदास होगाया अर्थात् सांसारिक दुखोंसे बचनेके और मोक्ष साधन के उपाय सुन कर इतने विरक्त हो गये कि आपने दया, सत्य, दत्त (अचौर्य) ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह इन पांचो महां व्रतों (यमो) के तीन करण तीन योगसे पालन करने का दृढ निश्चय कर लिया और श्री श्री १००८ पूज श्री रामलालजी महाराजसे अपने मनका विचार प्रगट किया और प्रार्थना की कि आप देहली पधारने की कृपा करें और मैं भी घरके प्रबंधसे निवट कर

दीक्षा धारण करनेके लिये देहली आजाऊंगा अस्तु उधर स्वामी रामलालजी महाराजने वहांसे देहली विहार कर दिया और इधर श्री अमरसिंहजीने अमृतसर आकर सब आभूषणादिकों को अपनी कन्याओंमें बांट दिया और लाला कृपाराम अमृतसर निवासी जो आपकी कन्याका पुत्र था उसको अपनी सम्पत्तिका अधिकारी बना दिया। इस प्रकार अपने घरका प्रबन्ध करके आप वहांसे देहली आगए और ३६ वर्षकी आयुमें वैशाख वदि २ सं० १८९८ वि० में श्री श्री श्री पूज रामलालजी महाराजके चरणोंमें दीक्षा धारण करली और ४० वर्ष तक नगर नगरमें सिंहनादकी ज्युं दया, क्षमा सत्यादि धर्मका उच्चारण करते हुए विचरते रहे। आपने धर्म पक्षमें बड़े बड़े उपकार किये अर्थात् व्यर्थ हानिकारक रीतियां यथा विवाहके अवसर पर आतिशबाज़ी चलाना रण्डीओं और भण्डोंका नचाना चावलोंकी मांड (पिच्छ) को मोरीओंमें बहाना इत्यादि बंद करादी और आपने तपस्या भी ३३ व्रत तककी की अन्तमे ७६ वर्ष २ मासकी आयु पूरीकर सं० १९३८ वि० आषाढ वदि द्वितिया के दिन अमृतसरमें स्वर्ग वास होगए।

पाठक ! श्री १००८ पूज अमरसिहजी महाराजकी जीवनी हिन्दी भाषामें पृथग् छप चुकी है, इस लिये यहां संक्षेपसे ही वर्णन किया है।

—○∘○—

सं० १९३९ का चातुर्मास्य हुश्यारपुर में दूसरी वार।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं० १९३९ का चतुर्मासा हुश्यारपुरमे दूसरी वार। इस चतुर्मासे मे आपके उपदेशों से कई जनोंने वेश्या गमन जूआ रमन और हुक्का का भांगका पीना छोड़ दिया और कई एक मतोंके लोगोने जीवघात (शिकार) मांसाहार मद्यपान आदि पाप कर्मोंका सचे हृदयसे त्याग कर दिया इसके अतिरिक्त और बड़े उपकार हुए यथा विरादरी के अनैक्यको मिटाकर एकता करा कर शान्ति स्थापन करना इत्यादि। चतुर्मासे की समाप्ति पर आपने देहलीकी ओर विहार कर दिया रास्तेमें नगर नगर गाओ २ मे धर्मोपदेश करती हुई देहली पधारी। अपितु आप बहुत चिरके पश्चात् देहली पधारी थी इस लिऐ वहांके श्रावक श्राविकाओं ने आपके शुभ आगमन पर अति हर्ष प्रकट किया अर्थात् किसीने सम्यक्तकी धारणा

की किसी ने बारह व्रत धारण किये और आप दान धर्म,ब्रह्मचर्य धर्म,तपधर्म,सद्भावना धर्म आदिक का उपदेश करती हुई कुछ समय ठहर कर वहां से विहार करके लोहारा गाओं जिला मेरठमें पधारी। वहांके श्रावकों ने भी आपके आगमन पर बड़ा आनन्द मनाया और विनतीकी, कि आप इस बार हमारे ही क्षेत्र में चतुर्मासा करें, सुतरां आपने उनकी विनती को स्वीकार किया ।

सं० १९४० का चातुर्मास्य लुहारा मैं दूसरी बार ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं० १९४० का चतुर्मासा लुहारा गाओं मे हुआ यह एक छोटासा कस्बा है इसमें श्रावक लोग अग्रवाल बनिएं बहुत वसते हैं आपके चतुर्मासे मे इन लोकों ने धर्मका बड़ा लाभ उठाया अर्थात् कई भाईयोंने पंद्रह,पंद्रह दस, दस, और आठ, आठ, दिन के व्रत किये और कई श्रावक श्राविकाओने प्रतिदिन सामायिक करने का नियम किया और कई लोकोने कमावो से वर्णज करने का त्याग कर दिया इत्यादि वहुत ही उपकार हुए चतुर्मासेकी समाप्ति पर आपने ।रे की ओर विहार कर दिया ।

पहली गुरुणी जी से विनती उऋण होने पर।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज मथुरा वृंदावन आदि नगर ग्राओंमे विचरती हुई आगरामे पधारी वहां आपकी पहली गुरुणीजी श्रीहीरादेवीजी महाराज विराजती थीं आपने उनके दर्शन किये और प्रार्थनाकी कि आपने मुझ पर विद्या दान आदि का बड़ा ही उपकार किया था इस लिये मेरी आपसे उऋण होनेके लिये दो प्रार्थनाएं हैं, पहली यह है कि आप पांच महांव्रतों की अरोपना करले और सूत्रके अनुसार प्रायश्चित अर्थात् कुछ तपस्या ग्रहण करने की कृपाकरे, दूसरी यह है कि आप मेरे साथ विहार की कृपा करें ताकि मैं भी आपकी यथायोग्य सेवा कर सकूं। श्रीसतीहीरांदेवीजी महांराज आपके इस प्रकार के मीठे और सुखदाई वचन सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और कहा कि हे वत्से ! तेरी यह दोनो वाते अमोलक हैं हां आलोचना तो मेरी तूही सुनले परन्तु विहार तो मैं पहले ही से नहीं कर सकती हूं इससे वेवसहूं तथापि जो तैंने मेरे पढाए सिखाए को इतना सुफल किया है कि स्थान स्थान पर धर्मका प्रचार कर रही हो इससे मै वहुतही प्रसन्न हू। अस्तु आप वहां श्री भगवती सूत्र सतक दूसरा

खंधक ऋषिके प्रश्नोत्तरोंका व्याख्यान करती रहीं जिसको सुनकर वृद्ध श्रावक वोले कि जैसी रीति श्रीरत्नचंद जी महाराजके व्याख्यानकी थी वैसी ही रीति श्रीमहासतीजी के व्याख्यान की है धन्य है आप और धन्य है आपका जन्म आपने हमारे आगरा का और हमारी संप्रदायका नाम भी प्रसिद्ध कर दिया है इसके अनन्तर आप वहां से विहार करके विचरती हुई मियॉ दुआव में पधारीं तब छपरोली गाओं जिला मेरठ के श्रावकोंने आपके चरणोंमें चतुर्मासा करने के लिये विनतीकी और आपने उनकी विनती को स्वीकार किया ।

१९४१ का चातुर्मास्य छपरोली गांव में ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं०१९४१ वि० चतुर्मासा छपरोली ज़िला मेरठ मे हुआ इस चतुर्मासे मे मियॉ दुआवे के अतिरिक्त कई देशों के अर्थात् पञ्जाव, गुजरात, काठियावाड़ तक के श्रावक श्राविका श्रीसतीजी के दर्शनों को आए जिनका आदर सत्कार वहां के भाइयों ने वहुत किया अर्थात् यात्रियों के लिये जो आवश्यक सामग्री होनी चाहिए वह सव उन्होंने दी, ताकि किसी सज्जन को कोई कष्ट न हो, और वहां पच-

रंगी तपस्या भी हुई, अतः भाईयों को इतना उत्साह था कि वे व्याख्यान के पश्चात् उपस्थित जनतामें लड्डू बांटा करते थे, और दीन दुःखिया लोगों को भी दान किया करते थे, इस प्रकार दया धर्म का वहुत प्रचार होता रहा। चातुर्मास्य समाप्त होने पर आप देहली रोहतक और बांगर देश में विचरती हुई दुआवा जालन्धर में पधारी और हुश्यारपुर के भाईयो की विनती पर आप ने सं० १९४२ वि० का चातुर्मास्य हुश्यारपुर का स्वीकार किया।



सं० १९४२ का चतुर्मासा हुश्यारपुर में तीसरी वार।

आपका सं० १९४२ वि० का चतुर्मासा हुश्यार पुरमे हुआ यहां पर आपके प्रभाव शाली व्याख्यानो से वड़ा उपकार हुआ अर्थात् सर्वसाधारण पर जैन धर्मके महत्त्वका वहुत ही प्रभाव हुआ इस चतुर्मासे में आप को एक पुस्तक भी दिखलाया गया जो आत्मारामजी संवेगीका वनाया हुआ था जिसका नाम "जैन तत्त्वादर्श" है, आपने इसको पढ़ा तो

के साथ सवारी चढ़कर उस स्थान पर पहुंची जहां पर दीक्षा होनी थी। नियत स्थान पर श्रीमती भगवानदेवी जी पालकी से उतर कर श्रीमहासती पार्वती जी महाराज के चरणों में उपस्थित हुई और प्रणाम कर के सभा सन्मुख कहा कि मैं सांसारिक तृष्णा को छोड़कर शेष आयु को निरारम्भ होकर परमेश्वर की याद में लगाने के लिये जैन-योग (दीक्षा) धारण करती हूं इसलिये यदि मेरे निमित्त कारण से किसी को कभी कोई खेद पहुंची हो तो मैं प्राणीमात्र से क्षमा मांगती हूं सब लोक क्षमा करें।

तब सभासदों के हृदय से प्रिय धर्मी भाव उमंग कर नेत्रों द्वारा जलरूप होकर छागया और क्षमा २ करने लगे, फेर धर्म माता और प्रिय धर्मन श्राविकाओं के साथ एक स्थान में होकर श्रीमती भगवानदेवीजी ने अपने गृहस्थी जरी किनारी वाले वस्त्र और भूपणों को त्यागकर यथाविधि जैन आर्य्याओं का वेष पहनकर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजके चरणों मे उपस्थित हुई और सादर प्रणाम करके हाथ जोड़कर विनती की, कि मुझे दीक्षा देने

की कृपा करें, तब आपने सहर्ष सैकड़ों मनुष्यों के सामने श्रीमती भगवानदेवीजी को दीक्षा का पाठ पढ़ा दिया उन्होंने उसी क्षण से समस्त जीवन धर्म के अर्पण कर दिया, और श्रावक श्राविकाओं के मुखों से धन्यवाद धन्यवाद और जयकारे के शब्द सब ओर से निकलने लगे और दर्शकों के मन में वैराग्य की धारा वहने लगी, इस प्रकार वड़े उत्साह से दीक्षा महोत्सव मनाया गया और जैन धर्मका वड़ा ही प्रकाश हुआ।

आप वहांसे विहार करके खरड़ वनूरके रास्ते होकर अम्बाला शहरमे पधारी और वहां के श्रावकों की धर्ममे अतिशय रुचि देखकर आपने सं० १९४३ का चतुर्मासा अंवाला का स्वीकार किया।



सं० १९४३ का चतुर्मासा अम्बाला नगर में

आपका सं० १९४३ वि० का चतुर्मासा अंवाला नगरमे हुआ। आपकी पवित्र वाणी सुननेके लिये अन्य मतोके लोग भी वहुतायतसे आतेथे, आप आचारांग सूत्र सुनाती थीं जिसमें स्थावर और जंगम जीव योनिओं अर्थात् अंडज जेरज स्वेदज

और उद्भिज उनकी उत्पत्ति और आहार, आयु कर्म आदिक के विचार पर व्याख्यान होते थे। एक दिन व्याख्यान के पश्चात् एक भगवे वस्त्रों वाले साधुने जो अपने आपको वेदान्त मतका सन्यासी बतलाता था श्री महासती पार्वतीजी महाराजसे कुछ प्रश्नोत्तर किये जो नीचे लिखेऽनुसार हैं:—

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न संन्यासी—आपके समदृष्ट है और आप ज्ञानवान भी हैं किम्वा नहीं ?

उत्तर श्री महासतीजी—हां मुझमें यथा भाव समदृष्ट भी है और यथा श्रुति ज्ञानवान भी हूं।

संन्यासी—धन्यहैं आप और कृतार्थ है आप का जन्म परन्तु आपकी भोजन वृत्तिका व्यवहार किस प्रकार है।

श्री महासती पार्वतीजी—श्रेष्ठ आचरण वाले कुलोंसे निर्दोष भिक्षा लाकर उदरपूर्त्ति कर ली जाती है।

संन्यासी—तब तो आपकी पहली कही हुई दोनों वार्ते मिथ्या सिद्ध हुई अर्थात् समदृष्ट और ज्ञानवान होना।

श्री महासतीजी—वह क्यो ?

संन्यासी—जब आपने श्रेष्ठ निकृष्ट अर्थात् ऊंच नीचमें द्वैतभाव रखा तो समदृष्टि कहां रही समदृष्टि तो अद्वैतवादी होतेहैं जो सब पदार्थोंमें एक जैसी दृष्टि रखते हैं आप तो पदार्थोंमें दोष निर्दोष का भेद समझतीहैं और फिर सर्वज्ञता कहां रही सर्वज्ञ तो सब पदार्थोंको ब्रह्म समझते हैं। यथा श्रुतिः—

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।

श्री महासतीजी महाराज—क्यो भाई तुम तो समदृष्टि और सर्वज्ञ हो।

संन्यासी—हां मैं तो समदृष्टि भी हूं सर्वज्ञ भी हूं।

श्री महासतीजी—तो फिर आपके ऊंचनीच व दोष निर्दोष का विचारहै किम्वा नही ?

संन्यासी—नही—मैं तो ब्राह्मण, वैश्य, भंगी और मुसल्मानो के घरका भी खा लेता हूं।

श्री महासताजी महाराज—यदि भंगी के घर सूअर का और मुसल्मानके घर गौका मांसहो तो खाते हो किम्वा नहीं।

संन्यासी—हां सब खा लेता हू हम किसी पदार्थ

में द्वैतभाव नहीं रखते, यथा सूत्र "सम लोष्ट सम कञ्चनं" अर्थात् मिट्टी सोना बराबर है।

श्री महासतीजी महाराज—कभी विष्टा भी खाया है, सच कहना।

सन्यासी—सोचमें पड़ गया, कुछ चिर पश्चात बोला, नहीं।

श्री महासतीजी महाराज—यहां द्वैत क्यों रखा, बस अब इससे स्पष्टतया प्रकट हो गया कि तुम नास्तिक लोगों ने मांस भक्षण आदिक विषयों के स्वादोंमें ही समदृष्टि और सर्वज्ञता मानी है परन्तु समदृष्टि और सर्वज्ञताके अर्थ नहीं जाने। भला सोने और पीतलमें समभाव रखने वाला समदृष्टि सोनेको यदि पच्चीस रुपए तोले पर खरीद करले तो क्या पीतलको भी सोनेके भाव पर खरीद कर लेगा।

सन्यासी—नहीं।

श्री महासतीजी महाराज—यदि खरीद लेवे।

सन्यासी—तो मूर्ख कहलावे और हानि उठावे।

श्री महासतीजी महाराज—बस अब समझना चाहिए कि समदृष्टि और सर्वज्ञताके वास्तविक अर्थ

क्याहैं सो मुझसे सुनिए, सोनेको सोना समझे और पीतलको पीतल, रत्न को रत्न, और कांच को कांच उच्चको उच्च और नीचको नीच भलेको भला और बुरेको बुरा यथायोग्य समझे, परन्तु परमत्त (पागल) न बन बैठे कि मेरे लिये तो सब समान हैं, नहीं नहीं जिस अवस्थामे जैसी वस्तु हो उसको वैसी ही समझे इसका नाम यथार्थ ज्ञान है और इसी को तुम लोगोंमे सर्वज्ञता कही है, और सम दर्शिता यह है कि सोने पर राग अर्थात् लोभ न करे और पीतल पर द्वेष अर्थात् घृणा न करे। इसी प्रकार रत्नको रत्न, कांचको कांच, उच्चको उच्च, नीचको नीच, भले को भला और बुरेको बुरा, समझे तो यथार्थ अर्थात् जो जैसाहै उसको वैसा ही समझे परन्तु अपने भाव उन पर सम रखे, उन पर राग व द्वेष करके आप सुखी व दुखी न होवे प्रत्युत सम भावमें रहकर आनन्दकी प्राप्ति करे इसका नाम समदृष्ट है, न कि तेरी तरह कि हलवेके स्थानमे गोवर खा जाय और गोवरके स्थानमें हलवेसे घरको लीप लेवे। यह भाव रख कर कि मैं समदृष्टि हूं मेरे लिए सब समान हैं परन्तु इस प्रकार कार्य्यकी सिद्धि कदापि

न होगी, तो फिर आत्मधर्मकी सिद्धि कैसे होगी। इस लिए जैसे तैंने पूर्वोक्त समदृष्टि और सर्वज्ञता मानी है, यह समदृष्टि और सर्वज्ञता नही है यह तो अज्ञानता है। जब श्रीमहासतीजी महाराजने स्पष्ट रूप मे उस सन्यासीके प्रश्नोंका उत्तर दे दिया तो सम्पूर्ण सभा अतिप्रसन्न हुई और सन्यासी लज्जित सा हो गया और कुछ अपनी भूलकी बीमारी को समझ भी गया, अस्तु नमस्कार करके चला गया।

इसी प्रकार आपसे चौमासामें कई मतान्तरीयों से नाना प्रकारके प्रश्नोत्तर होते रहे और लोकोंके हृदयों में धर्मका बड़ा उत्साह होता रहा, चतुर्मासा समाप्त होने पर आपने जमनापार की ओर विहार कर दिया और थनेसर करनालकी ओर विचरती हुई कांधला ज़िला मुज़फरनगरमें पधारी. वहां आपके उपदेशसे बड़ा उपकार हुआ और लाला जवाहर मल अग्रवालकी पुत्री श्रीमती मथुरांजी ने संयम लेनेका संकल्पकर लिया। आप वहांसे विहार करके लोहारा सराय जिला मेरठ में पधारी और सं० १९४४ का चतुर्मासा वही का स्वीकार किया।

—०—

सं० १९४४ वि० का चातुर्मास्य लुहारामें तीसरी बार।

आपका सं० १९४४ वि० का चतुर्मासा लुहारा मे हुआ, इस चतुर्मासे मे श्रीमती मथुरोजी वैरागिन भी आपके चरणों मे उपस्थित हुई और दीक्षा लेने की प्रार्थना की। श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने उस को श्रीसती भगवानदेवीजी के नाम का पाठ भाद्रपद वदि ९ को पढाकर दीक्षा देदी, और इस स्थान पर धर्म ध्यान यथाशक्ति अच्छा होता रहा। चतुर्मासा समाप्त होने पर आप विहार करके देहली पधारी और फिर रियासत जींद, मौनक, समाना रियासत पटियाला विचरती हुई रियासत नाभा में पधारी और वहां आपके पवित्र उपदेशो की अमृत वर्षा होने लगी।

आपका उपदेश "पुण्य के फल मीठे और पाप के फल कड़वे" इस विषय पर हुआ उसका थोड़ा सा स्वरूप नीचे लिखा जाता है॥

पुण्यपाप के विषय पर उपदेश।

--आपने कहा कि, इस संसार रूपी वनमे दो प्रकारके वृक्ष है एक मीठे फलोंके प्रदाता और एक

कड़वे फलों के देने वाले अर्थात् पुण्य और पाप, जैन सूत्रोंमें ९ प्रकार का पुण्य कहा है जो निम्न लिखित क्रमसे है :—

(१) अन्न पुण्य अर्थात् अन्न का देना।

(२) पान पुण्य अर्थात् जल का देना।

(३) लयन पुण्य अर्थात् मकान का देना।

(४) शयन पुण्य अर्थात् शय्यासन का देना।

(५) वत्थ पुण्य अर्थात् वस्त्र का देना।

(६) मन पुण्य अर्थात् मन से सब का भला चाहना।

(७) वचन पुण्य अर्थात् सब को हितकारी और प्रिय वचन बोलना।

(८) काया पुण्य अर्थात् अपने शारीरिक बलसे यथा कल्प सबकी रक्षा करना अर्थात् बड़ों की सेवा भक्ति करना और अनाथोंकी रक्षा करना।

(९) नमस्कार पुण्य अर्थात् सद् गुणी धर्मात्मा पुरुषों को नमस्कार करना और उनसे नमकर चलना उनकी आज्ञा का यथा रीति पालन करना।

उपरोक्त पुण्यों का नाम सुकृत कर्म है—सो सुकृतका करना तो प्राणियोंको दुष्कर है परन्तु

सुकृतके फल बहुत मीठे लगते हैं अर्थात् बहुत सुखों की प्राप्ति करते हैं इस लिये यह बड़ी सुगमता से भोगे जाते हैं, जैसे रोगी को पथ्य करना तो कठिन प्रतीत होता है, परन्तु पथ्य का फल मीठा होता है, अर्थात् पथ्य के करने से रोगी शीघ्र ही स्वस्थ (सुखी) हो जाता है, इसी प्रकार थोड़ासा पुण्य करने से भी जीव चिरकाल के लिए सुखी हो जाता है । यथा दृष्टान्त—

पुण्य के फल के विषय में दृष्टान्त.

एक व्यापारी जिसका नाम धर्मदत्त था भारत वर्ष के एक सुन्दरपुर नामक नगर मे रहता था । एकबार वह व्यापारी अपने नगर से एक सथवाड़ा (व्यापारियो की मण्डली) लेकर किसी अन्य देश को गया । उसके रास्ते मे एक गांओं ऐसा आया जिसके बीचमेसे रास्ता था, जब वह सथवाड़ा गाओं के बीच में से गुज़रा तो एक पुरुष को एक स्त्री ने विस्मत होकर पूछा कि क्या यह सेना वाला कोई राजा है, उसने उत्तर दिया कि राजा नहीं व्यापारी है वस्तुओं का क्रय विक्रय करता है । फिर उस स्त्री ने कहा यदि व्यापार करता है तो अपने घर बैठ

कर क्यों नहीं कमाता गाओंगाओं के कुत्ते भुकाने और रास्ते की धूलि उड़ाने से क्या लाभ है । उस पुरुषने उत्तर दिया कि घर में बैठ कर तो कभी छे मास व वर्ष में सवाये ड्योढ़े कर सकता है परन्तु यह व्यापारी इस व्यापारसे विदेशोंमें नगर नगर घूम कर छे मासमें दुगुने कर लेता है ।

स्त्री—आहा, तब तो यह धन उपार्जन करने का अच्छा ढङ्ग है. ले मेराभी एक पैसा इस व्यापारी के पास जमा करा दे ।

पुरुष—अच्छा दे दे ।

इस पर उस स्त्री ने एक पैसा उस पुरुष को दे दिया और उसने साहूकार के पास जमा करा दिया वह देश देश नगर नगर गाओं गाओंमें व्यापार करता हुआ बारह वर्षके पश्चात् उसी गाओं में वापस आया और वहां डेरा किया. उस को स्मरण हुआ कि जिस गाओं की स्त्री का मेरे पास एक पैसा जमा है वह गाओं यही है । उसने अपने मुनीमों को आज्ञा दी कि उस स्त्री के एक पैसे के लाभ का हिसाब शीघ्र पेश करो, सुतरां मुनीमोंने आज्ञानुसार हिसाब बनाना आरम्भ किया जो नीचे लिखे अनुसार है:—

पहले छे मासमें एक पैसा मूलधनके दुगने दो पैसे, दूसरे छे मासमें दो पैसेके दुगुने एक आना तीसरे छे मासमे एक आनेके दुगने दो आने, चौथे मे दो आनेके दुगुने चार आने. पांचवेमे चार आने के दुगुने आठ आने, छठेमे आठ आनेके दुगुने एक रुपया, सातवेंमें एक रुपयेके दुगुने दो रुपये, आठवें मे दो रुपयेके दुगुने चार रुपये । नौवेमे चार रुपये के दुगुने ८) रुपये, दसवे मे आठ रुपये के दुगुने १६) रुपये, ग्यारहवेमे १६) रु० के दुगने ३२) रु० बारहवेमे ३२) रु० के दुगने ६४) रु०, तेरहवेमें ६४) रु० के दुगुने १२८) रु०, चोदहवे मे १२८) रु० के दुगुने २५६) रु०, पंद्रहवेंमे २५६) रु० के दुगुनेमे ५१२) रु०, सोलहवें मे ५१२) रु० के दुगुने १०२४) रु० सतारहवे में १०२४) रु० के दुगुने २०४८) रु० अठारहवेमें २०४८) रु० के दुगुने ४०९६) रु०, उन्नीसवें में ४०९६) रु० के दुगुने ८१९२) रु०, बीसवेमे ८१९२) रु० के दुगुने १६३८४) रु०, इकीसवेमें १६३८४) रु० के दुगुने ३२७६८) रु०, बाइसवेमे ३२७६८) रु० के दुगुने ६५५३६) रु०, तेईसवेमें ६५५३६) रु० के दुगुने १३१०७२) रु०, चोवीसवे फेर मे (१२ वर्ष) मे २६२१४४) रु०

जब मुनीमोंने यह हिसाब पेश किया और प्रार्थना की, कि दो लाख बासठ हज़ार एक सौ चवालीस रुपये उस स्त्री के पैसे के बनते हैं तो व्यापारी आश्चर्य्य रह गया, परन्तु कहने लगा कि अच्छा अभी भेज दो। आज्ञा की देर थी कि मुनीमों ने छकड़ों पर थैलियां लाद कर उस स्त्री के घर भेज दीं। स्त्री बोली यह रुपया कैसा है, उन्होंने कहा कि तेरे एक पैसे का मुनाफ़ा १२ वर्ष का है। यह सुनकर वह स्त्री आश्चर्य्य रह गई और उसके आनन्द की कोई सीमा न रही और रुपया घरमें धराकर कहने लगी कि यदि यह एक पैसा मेरे घरमें ही रहता तो मुझे इससे क्या लाभ होता व्यापारी के पास जमा करानेसे प्रति छे मास में दुगने होनेसे वही एक पैसा महान धन बन गया उस स्त्री की बहनें सहेलियां और पड़ोसी सब पछताने लगे कि हमने भी उसको पैसे क्यों न दिये परन्तु अब पछताए क्या हो सकता है। वह स्त्री उस धन से अपना शेष जीवन बड़े सुख से काटने लगी और कई पीढ़ियों तक उसके घरमें सम्पत्ति अर्थात् ऐश्वर्य्य बना रहा।

यह दृष्टान्त देकर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने श्रोताजनो को कहा कि देखिए भ्रातृगण जितना पदार्थ वर्तावमें आता है, वह सब का सब घर के खर्चो मे ही गिना जाता है, परन्तु जितना तनु तपस्या मे, मन ज्ञान मे और धन दान में लगाया जाता है, उतना ही सफल होता है अर्थात् तन से यदि एक व्रत किया जावे, और मन से कुछ ज्ञान का विचार किया जावे, और धन से कुछ दान दिया जावे अर्थात् एक रोटी भी किसी त्यागी महात्मा के पात्र मे दीजावे तो जैसे उस स्त्री को वड़ा भारी लाभ हुआ था इसी प्रकार सुपात्र दान आदिक का लाभ भी वहुत वड़ा होता है, और कई जन्मो तक सुख ही सुख प्राप्त होता है। सालभद्रवत्—

—*—

पापों के निषेध के विषय में उपदेश।

फिर महासती श्रीपार्वतीजी महाराजने कथन किया कि जैसे पुण्यके फल मीठे होते हैं, इसी प्रकार १८ प्रकार के पापो के फल कड़वे होते हैं, और उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं अर्थात् एक जन्म मे थोड़े से पाप का अंकुर लगाया जावे

जब मुनीमोंने यह हिसाब पेश किया और प्रार्थना की, कि दो लाख बासठ हज़ार एक सौ चवालीस रुपये उस स्त्री के पैसे के बनते हैं तो व्यापारी आश्चर्य्य रह गया, परन्तु कहने लगा कि अच्छा अभी भेज दो। आज्ञा की देर थी कि मुनीमो ने छकड़ों पर थैलियां लाद कर उस स्त्री के घर भेज दीं। स्त्री बोली यह रुपया कैसा है, उन्होंने कहा कि तेरे एक पैसे का मुनाफ़ा १२ वर्ष का है। यह सुनकर वह स्त्री आश्चर्य्य रह गई और उसके आनन्द की कोई सीमा न रही और रुपया घरमें धराकर कहने लगी कि यदि यह एक पैसा मेरे घरमें ही रहता तो मुझे इससे क्या लाभ होता व्यापारी के पास जमा करानेसे प्रति छे मास में दुगने होनेसे वही एक पैसा महान धन बन गया उस स्त्री की बहनें सहेलियां और पड़ोसी सब पछताने लगे कि हमने भी उसको पैसे क्यो न दिये परन्तु अब पछताए क्या हो सकता है। वह स्त्री उस धन से अपना शेष जीवन बड़े सुख से काटने लगी और कई पीढ़ियों तक उसके घरमें सम्पत्ति अर्थात् ऐश्वर्य्य बना रहा।

यह दृष्टान्त देकर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने श्रोताजनो को कहा कि देखिए भ्रातृगण जितना पदार्थ वर्तांव में आता है, वह सव का सव घर के खर्चों मे ही गिना जाता है, परन्तु जितना तनु तपस्या मे, मन ज्ञान मे और धन दान में लगाया जाता है, उतना ही सफल होता है अर्थात् तन से यदि एक व्रत किया जावे, और मन से कुछ ज्ञान का विचार किया जावे, और धन से कुछ दान दिया जावे अर्थात् एक रोटी भी किसी त्यागी महात्मा के पात्र मे दीजावे तो जैसे उस स्त्री को वड़ा भारी लाभ हुआ था इसी प्रकार सुपात्र दान आदिक का लाभ भी वहुत वड़ा होता है, और कई जन्मों तक सुख ही सुख प्राप्त होता है। सालभद्रवत्—

—*—

पापों के निषेध के विषय में उपदेश ।

फिर महासती श्रीपार्वतीजी महाराजने कथन किया कि जैसे पुण्यके फल मीठे होते है, इसी प्रकार १८ प्रकार के पापों के फल कड़वे होते है, और उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते है अर्थात् एक जन्म मे थोड़े से पाप का अंकुर लगाया जावे

जब मुनीमोंने यह हिसाब पेश किया और प्रार्थना की, कि दो लाख बासठ हज़ार एक सौ चवालीस रुपये उस स्त्री के पैसे के बनते हैं तो व्यापारी आश्चर्य्य रह गया, परन्तु कहने लगा कि अच्छा अभी भेज दो। आज्ञा की देर थी कि मुनीमों ने छकड़ों पर थैलियां लाद कर उस स्त्री के घर भेज दी। स्त्री बोली यह रुपया कैसा है, उन्होंने कहा कि तेरे एक पैसे का मुनाफ़ा १२ वर्ष का है। यह सुनकर वह स्त्री आश्चर्य्य रह गई और उसके आनन्द की कोई सीमा न रही और रुपया घरमे धराकर कहने लगी कि यदि यह एक पैसा मेरे घरमें ही रहता तो मुझे इससे क्या लाभ होता व्यापारी के पास जमा करानेसे प्रति छे मास में दुगने होनेसे वही एक पैसा महान धन बन गया उस स्त्री की बहनें सहेलियां और पड़ोसी सब पछताने लगे कि हमने भी उसको पैसे क्यों न दिये परन्तु अब पछताए क्या हो सकता है। वह स्त्री उस धन से अपना शेष जीवन बड़े सुख से काटने लगी और कई पीढ़ियों तक उसके घरमें सम्पत्ति अर्थात् ऐश्वर्य्य बना रहा।

कट्टो को दूध से हटाए रखने के लिए रस्से को वहुत से वल देकर खूंटे के पास वांध देना जिस से वह ग्रीवा तक भी न हिला सके और पक्षियोंको विना ऐसी अवस्था के जो दया के कारण उनके प्राणों की रक्षा के सम्बन्ध मे हो, चावमे (शौकसे) अथवा किसी अन्य विचारसे पिंजरोंमे वन्द रखना।

(२) वहे—अर्थात् उपरोक्त सव प्रकार के प्राणियों को चावक व सोटे आदि से अधिक ताड़न करना अर्थात् क्रोध मे भरकर दांत पीस कर मारते जाना।

(३) छविछेय—अर्थात् घोड़ा, वैल अथवा कुत्ते आदिको की पूंछ और कान आदिक का काटना और विना रोगादि कारण के गर्म लोहे से दाग देकर चिन्ह वनाना और वैल घोड़े आदिक को दोहिया (वधिया) कराना।

(४) अइभारे—अर्थात् इका गाड़ी और कांची आदि पर तथा गधे, घोड़े, ऊंट आदि पशुओं पर उनके वलमे अधिक वोझ लादना तथा अधिक मंजल कराना।

(५) भत्तपान विच्छेय—अर्थात् पशुओं को नियत समय पर चारा आदिक न देना अथवा भूखे प्यासे रखना इत्यादि।

तो यह बढते बढ़ते वृक्षवत् कई जन्मो तक बड़े २ दुःख देते हैं।

यह कहकर आपने १८ पापों का क्रमशः वर्णन किया जो नीचे लिखे अनुसार है—

पहला पाप प्राणातिपात।

पहले प्राणातिपात पाप का अर्थ श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने यह बतलाया कि किसी प्राणी के प्राणो का अतिपात करना (लूट लेना) है अर्थात् जीवघात का करना है जैसे आखेट (सिकार) का करना, झटका करना, हलाल करना, शिशु हत्या (बाल घात) करना, गर्भक्षय करना, चूहे व घूंस ऊंदरों को पिजरे में बन्द करना और मारना, भूंड ततैये आदिक के छत्ते जलाने, मधु मक्खीओ के छत्ते तोड़ने और उनके नीचे धूआं देना, सांप, विच्छू, कान खजूरा, खटमल, जूं, लीख आदिक का मारना इत्यादि।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित कर्म भी इसी पाप नं० १ मे गिने जाते हैं—

(१) बंधे—अर्थात् गौ, भैंस, बैल, घोड़े आदि जीवों को तङ्ग बंधनों से बांधना अर्थात् जिस बंधने

कट्टों को दूध से हटाए रखने के लिए रस्से को बहुत से वल देकर खूंटे के पास बांध देना जिस से वह ग्रीवा तक भी न हिला सके और पक्षियोंको विना ऐसी अवस्था के जो दया के कारण उनके प्राणों की रक्षा के सम्वन्ध मे हो, चावसे (शौकसे) अथवा किसी अन्य विचारसे पिंजरोंमे वन्द रखना।

(२) वहे—अर्थात् उपरोक्त सव प्रकार के प्राणियों को चावक व सोटे आदि से अधिक ताड़न करना अर्थात् क्रोध मे भरकर दांत पीस कर मारते जाना।

(३) छविछेय—अर्थात् घोड़ा,वैल अथवा कुत्ते आदिको की पूछ और कान आदिक का काटना और विना रोगादि कारण के गर्म लोहे से दाग देकर चिन्ह वनाना और वैल घोड़े आदिक को दोहिया (वधिया) कराना।

(४) अइभारे--अर्थात् इका गाड़ी और क्रांची आदि पर तथा गधे,घोड़े.ऊंट आदि पशुओं पर उनके वलसे अधिक वोझ लादना तथा अधिक मंजल कराना।

(५) भत्तपान विच्छेय—अर्थात् पशुओ को नियत समय पर चारा आदिक न देना अथवा भूखे प्यासे रखना इत्यादि।

यह सब पाप कर्म हैं, इनका सम्बन्ध प्राणातिपात पाप से है, यह सब कर्म छोड़ने के योग्य हैं। इस प्राणातिपात (हिंसारूपी) पापको महात्माजनों ने सब पापों से बड़ा कहा है, इसलिए जहां तक होसके इस पाप से बचना चाहिए अर्थात् किसी भी प्राणी को दुख न देकर इस घोर पाप से अपने आत्मा को अवश्य बचाना चाहिए।



हिंसापाप है इस पर अन्यमतोंकी सम्मतियें।

प्रथम पापके व्याख्यान में श्रीमहासती पार्वती जी महाराज ने प्राणातिपात पाप को सब पापों में मुख्य पाप बतलाया, उसी को सब मतों के विद्वानों ने भी मुख्य पाप माना है। निस्सन्देह इस समय सारा संसार ही पाप की ओर झुक रहा है; परन्तु वे सब मिल कर भी इस घोर पाप को पुण्य का रूप नहीं देसकते अर्थात् प्राणातिपात पाप सर्वदा पाप ही रहेगा, इसलिये इसके फल भी सदा कड़वे ही रहेंगे कोई जाति व मत इसके कड़वे फलों को मीठे नहीं बना सकता, वर इतना भी नही कर सकता कि इस पाप को छोटा ही बना दे। जिस प्रकार सम्पूर्ण

अंकों का मूल एकाई है, इसी प्रकार सम्पूर्ण पापों का मूल हिंसा ही है, इसी कारण सारे जाति व मतों के विद्वानों ने इसको मुख्य पाप माना है पञ्जावी कहावत भी तो है—

"सौ सियाणे इको मत मूर्ख आपो आपणी"।

निस्सन्देह यह सत्य है कि विद्वानों की सम्मति अन्त में मिल ही जाती है।

पाठकवर्य्य! आजकल प्रायः देखा जाता है कि यूरोपियन विद्वान् प्रत्येक मतके मन्तव्यो पर अच्छी तरह विचार करके उनके लिये अपनी सम्मति भी स्वतन्त्रतासे प्रगट करते हैं। इसलिये मैं पहले एक यूरोपियन विद्वान् की सम्मति जो अभी ही मान्चैस्टर के प्रसिद्ध समाचारपत्र वैजिटेरियन मिंजर सितम्बर मास १९१३ ई० में प्रकाशित हुई है। पाठको की भेट करता हूं। आपका नाम मिस्टर ऐलैग्जण्डर गार्डन साहब है, आपकी सम्माति क्योंकि अंग्रेजीमे थी,इसलिये हमकोभी यहां अंग्रेजीमें लिखनी पड़ती अथवा अनुवाद करना पड़ता परन्तु हर्पका विपय है कि रावलपिण्डी के जैनमामिति मित्रमण्डल के मैम्बर लाला खानचन्दजी ओसवाल स्थानकवासी जैनी ने इसको सरल उर्दू भापा में अनुवाद

कर दिया है, जिसको रावलपिण्डी के लाला जवाहर शाह व ख्याला शाह जी ओसवाल स्थानकवासी जैनने छपवाकर विना मूल्य बांट दिया उसकी अनुलिपि व्याख्या सहित नीचे लिखता हूं ॥

---*---

जैन अहिंसक है इसपर यूरोपियनकी सम्मति

वन्दे जिनवरम्

जैन समिति मित्र मंडल ट्रैक्ट नं० ९ वीर भगवान निर्वाण सं० २४४०

जैन धर्मका महत्त्व और उसके सबंधमें एक विद्वान अंग्रेज़ की सम्मति।

मांचैस्टरके प्रसिद्ध समाचार पत्र वैजिटेरियन मिंजरके सितम्बर मासका निकला हुआ आर्टिकल जो कि एक विद्वान अंगरेज़ मिस्टर ऐलैग्ज़ैण्डर गार्डन साहवने भारतकी उत्तम जाति जैनके सम्बंध मे दिया—

कुछ समय हुआ कि मान्चैस्टर गार्डनके अंक मे भारवर्षके जैनीओंके सम्बन्धमे लिखा गया था जिसने इनको भारतवर्षकी एक अत्यन्त सभ्य और तार्किक जातिके अतिरिक्त यह भी कहा कि उनका प्रवर्तक बुद्धके समयमें उत्पन्न हुआ। वैष्णव सिद्धांत के अनुसार उन्ही शब्दोके प्रातिकूल यह तर्क उत्पन्न

होती है जिसकी समस्या के लिये मे निम्न लिखित आर्टिकल वैजिटेरियन मिंजर मे भेजता हूं।

"इस कथनके सम्बन्धमें कि जैनका प्रवर्तक बुद्धके समयमे उत्पन्न हुआ, वहुतसे मिजरके पाठको को यह पढ़कर वहुत प्रसन्नता होगी कि जैन बुद्धके जन्मसे वहुत वर्ष पहले अपने पूरे यौवन में आचुका था। जैनकी शिक्षाके अनुसार जगतके सम्पूर्ण जीव अनित्य है "अर्थात् आयुकी अपेक्षा" थोड़े दिन रहने वाले है इस लिये उनके निकट समस्त प्राणधारी प्रेमकी दृष्टिसे देखे जाते हैं "जीवित रहना और दूसरोको जीवित रहने देना" जैनीओका सवसे उच्च और पवित्र सिद्धान्त है। जैन फ़िलासफ़ीका आदर्श मनुष्यकी शारीरिक मस्तिष्क और आचार सम्बंधी तथा आत्मिक शक्तियोको पराकाष्ठा तक पहुंचाना है क्योंकि प्राणिमात्रका यही आदर्श है इसलिये जैनधर्म के निकट प्राणिमात्र का आदर है और इमीलिये इनके सवसे वड़े लीडरने अहिंसाको ही परमधर्म वतलाया है।

अहिसा, जैनके पांच महाव्रतोमे से पहला महाव्रत है.दया सम्पूर्ण भलाईयोका मूल है, इसलिये जैनीओं के सारे जीवनके काम काज दया पर निर्भर हैं वे

किसी प्रकारके भी हिसक कर्मके घोर विरोधी हैं क्योंकि ऐसा भ्रष्टकर्म आत्मिक उन्नतिका बाधक है।

किसी प्राणीको मार डालना व दुख देना हिंसा करना है जब मनुष्य क्रोध लोभ नामवरी और अभिमान तथा प्रमादके वशमें हो जाता है तो वह अवश्य दूसरे प्राणियोंकी हिंसा करता है जिसको सभी लोग हिसा मानते हैं परन्तु यदि मनुष्य कामनाओंको वशमे रखे अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें रखे तो वह हिसासे बचा रहता है। जैन आगम सिखलाते है जब कोई प्राणी दूसरे प्राणियोंकी हिंसा करे अथवा दुख दे तो उसकी आत्मिक उन्नति सर्वथा असम्भव है इस लिये वे युक्ति के साथ सिद्ध करते हैं कि जो मनुष्य दूसरोंको दुख देता है वह अपने आपको दुखोमें डालता है और यह भी स्पष्ट है कि जो मनुष्य दूसरों की हत्या करे और उसके मांसको खावे वह स्वाभाविकतया पहले ही निर्दयी हो जाता है। जो मनुष्य यह कहते है कि मनुष्य सब प्राणियों मे श्रेष्ठ है केवल अंध विश्वास और एक भारी भूल करके यह प्रगट करते हैं। कि सब प्राणी केवल उन

के खानेके लिये बनाए गए हैं । * क्या वे यह नही जानते कि ऐसे कर्मोंका केवल सोचना ही कि जिस में मानवी दुष्कामनाओंको पूरा करनेके लिए पशुओंका वध हो, वह अतीव बुरे प्रभावको उत्पन्न करते है, अर्थात् वे मारे जाने वालेही की आत्मिक उन्नति को बंद नही करते वरं वे अपनी आत्मिक उन्नति को भी बंद कर देते है। सब मांस खाने वाले केवल जिह्वाके स्वादके लिए शरीर और आत्माको एक मानते है क्योकि मरे हुए प्राणिको खाना किसी प्रकार कुछ भी मनुष्यकी आत्माको लाभ नहीं पहुचाता । एक शरीरका गुण आत्माका गुण नही हो सकता, इसी प्रकार आत्मा का गुण शरीरका गुण नही हो सकता क्योकि स्पर्श रस गन्ध और रंग

---

* नोट—इस बातको तो हमभी मानते है कि मनुष्यका दर्जा सबमे प्रधान (बडा) है इसीलिये मनुष्यको चाहिए कि बडा होनेका सार निकाले याने सब प्राणियोंकी रक्षा करे नाके प्रधान होकर सबका भक्षणकरे जैसे बडे वृक्षके आसरे हरएक पशु पक्षी मुसाफर वगैरा आराम पाते है ऐसेही मनुष्य के आसरे भी सब प्राणियोंको आराम मिलना चाहिये या जैसे सब मनुष्योंमें राजा प्रधान होता है तो राजा सब रयाका भलाही करता है इसी प्रकार मनुष्य भी सब में प्रधान होने के कारण यथाशक्ति यथाकल्प सब प्राणी मात्र का भला करे ।

शरीर के गुण हैं और यह गुण आत्माके नहीं हो सकते, इस लिये जैनी मांस भक्षणके घोर विरोधी हैं और जहां तक हो मके वे क्षुद्रसे क्षुद्र प्राणिकी भी दया पालते है। यह सिद्धान्त पश्चिमी संसारको अपूर्व और विचित्र प्रतीत होगा परन्तु मैं जानता हूं कि अलगराकमके मरहूम (स्वर्गवासी) मिस्टर जेम्स साहवने एक ब्रदरहुड अर्थात् मित्रता फैलाने वाली कलब (सोसाइटी) का संस्थापन किया जिसके मैम्बर जहां तक हो सके इस सिद्धान्त पर चलते थे। जैन यह सिखलाता है कि प्राणियोंको मारना सब मारे जाने वालों और मारने वालोंकी आत्मिक उन्नतिको बंद कर देता है, जैन मतका यही सिद्धान्त है और इनके निकट अहिंसाका नियम समस्त धार्मिक और अध्यात्मिक नियमोंका मूल नियम है। इस लिए यह सच्चाईसे कहा जा सकता है कि जैन धर्म जगत भरके प्राणियोसे Universal Brotherhood प्रेम और मित्रताका भाव रखता है "Thou shalt not kill" "तू किसीको मत मार" यह प्रायः सब मतो मे पाया जाता है और जब इस वाक्य पर विचार करके इसके अर्थ निकाले जावें तो प्राणिमात्रके लिये यह जान पड़ता है 'Do unto

others as you would that they should do to you" अर्थात् तुम दूसरोंके साथ ऐसा बर्ताव करो जैसा कि तुम स्वयं चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें इसमें जैन धर्मका अहिंसाका सिद्धान्त पाया जाता है जो कि संसारकी भलाईका बीज होनेके कारण सब संसारके मतोंकी भलाईयों और अध्यात्मिक सिद्धान्तोंका आधार है। इस लिए जैनके अहिंसा के सिद्धान्तोंको मानते हुए समग्र वैजिटेरियनजनों को इस पवित्र सिद्धान्तका आदर करना चाहिए।

भारतवर्षके मतोंमे जन्म मरणका प्रसिद्ध सिद्धान्त पाया जाता है और जैन फ़िलासफ़ी भी यही सिखलाती है, वह यह है कि यदि एक मनुष्य जीवित रहना चाहता है तो वह अपनी इन्द्रियों को वशमें रखे। जितनी जीवनकी कामनाओंको घटावे उतना ही वह थोड़े कर्म बांधता है, यह जैनके सर्वथा सच्चे वैष्णव होनेके सिद्धान्त हैं जो हमको सिखलाते हैं कि आठ प्रकारके कर्मोंसे आत्मा व्याप्त है। जैन धर्मका उद्देश्य जीवनमें कर्म्मोंका क्षय करना है और अहिंसा धर्मको मानते हुए जैनियोंकी ओरसे रोगी और लंगड़े जन्तुओंके अस्पताल और पिंजरापोल भारतवर्षके अनेक

प्रान्तोंमें खोले गए हैं जहां पशुओंको आजीवन पाला जाता है।

जैनिओंका कार्य्यक्रम रीतिआं और उपासना सबके सब अहिंसाके उच्च सिद्धान्त पर निर्भर हैं कि किसीको दुःख व क्षति न पहुंचाना ही उच्च धर्म है जिससे यह परिणाम निकलता है कि सब से अधिक पाबन्दीका वैजिटेरियन जैन धर्म ही है जो कि आरम्भसे (सुरुसे) ही एक सहानुभूति और करुणासे भरा हुआ अर्थात् दया धर्म कहलाता है।"



मुसल्मान विद्वानोंकी सम्मतियां।

यदि मुसल्मान विद्वानोंके आचारों पर ध्यान दिया जावे तो जान पड़ता है कि वे भी दयाके पवित्र गुणसे पृथक् नहीं हैं। अन्यायी और निष्ठुर जनोंके निर्मूल विचारोंको मुसल्मान विद्वानोंके विचारोंसे कैसे ऊंचा कहा जाए यदि कोई निठुर अपनी जिह्वाके स्वादके लिए यह कह दे कि दया अच्छी नहीं है तो इसका अर्थ यह है कि वह मानों अपने दयावान पूर्वजोंके सत्कर्म्मोंको बुरा सिद्ध कर रहा है। सुना जाता है कि इस्लामके

लोगों में यह रीति है कि वे अपने छोटे बच्चों को ही विस्मिल अल् रहमान उल् रहीमका क़ल्मां सिखाते हैं जिनसे उनका अभिप्राय यह होता है कि वे अल्लाहतालअ के गुणसे अपरिचित न रहें। इस क़ल्मां का अर्थ यह है कि आरम्भ करता हूं अल्ला-हके नाम से जो कि रहमन और रहीम है अर्थात् पापियोंको क्षमा करने वाला और सब पर दया करने वाला है।

परन्तु शोक! लोग इस कल्मांके अर्थ पर विचार नही करते। लाखो गौ, भैंस, बकरे, कुक्कुर आदि प्रति दिन काटे जाते हैं, उस समय कोई इस कल्मेकी ओर ध्यान नही देता उनको चाहिए कि खुदावन्द ताला के गुण पर विचार करे क्यों-कि विना इस गुणके आज तक कोई खुदासे नही मिला देखिए हज़रत अयूब जिनके शरीरमे एक वार कीड़े पड़ गए थे उन्होने परमेश्वरके उस सर्वो-त्कृष्ट गुणको जिसका वर्णन क़ल्मेमें किया गया है ऐसे कष्टके समयमे भी न छोड़ा, यहां तक कि जो कीड़े उनकी देहसे गिर जाते थे वे उन्हे सावधानी मे उठा लेते और फिर उसी घाव पर उन्हे रख लेते इस विचारसे कि कहीं खुराकके न मिलने

अथवा स्थान भ्रष्ट हो जानेके कारण कहीं मर न जावें । जब उन्हे कोई पूछता कि कीड़ोंको उठा कर घाव पर क्यो रख लेते हो तो वे ऐसा जवाब देते कि खुदा तालाने इनका घर मेरा शरीरही बनाया है मैं इन्हें क्यों निर्वासित (जिलावतन) करूं, परिणाम यह हुआ कि कुछ समय पाकर शरीर अपने आप ही कीड़ोंसे रहित होकर स्वस्थ हो गया । (रोज़ता उला सफ़िया)

क्या हमें यह उचित है कि हम हज़रत अयूबके उच्च और पवित्र भावको छोड़कर जिह्वाके स्वादके लिये लाखों प्राणिओं को काट काट कर अपने उदरमे डालें कदापि नहीं । किसी कविने कहा भी है:—

यह है पेट या कवर ऐ होशमन्द ।
किहों दफन जिसमे चरिन्दो परिन्द ॥

इस पर एक दृष्टान्त भी है यथा किसी नगर में एक श्रेष्ठने अपने देवदत्त नामक पुत्रको बुद्धिमता जानकर संस्कृत, प्राकृत, सूरसैनी. माग्धी, अप्रभ्रसा, पैसाचिकादि भाषा बड़े परिश्रम और द्रव्य वय करके पढ़ाया. फिर सोचा कि हमारा काम वणज्य व्यापारमे अनेक देशोंके लोगोसे पड़जाता है तो इस

को अरबी भाषा भी पढ़ादे तब वहीं उसी नगरमें एक महजदमें मौलवी अरबी पढाता था उसके पास पढने को बैठादिया और वह दो घंटे वहां रोज पढने पर लगाता था, एक दिन उस देवदत्त का मित्र सोमदत्त जो कई वर्ष से देशान्तर दुकान के गुमास्तो की परीक्षा लेने और लेनदेन नफा नुकसान का लेखा लेने गया हुआ था वह कार्य्य सिद्धिके पश्चात् अपने घर पर आया और अपने सम्बन्धियोंसे खेम कुशल पूछकर मित्रके मिलनेकी उत्कण्ठा प्रकट की और मित्रकी दुकान पर आकर मित्रके पिताको प्रणाम किया और मित्रको वहां पर न देखते हुए व्याकुलतासे प्रश्नकिया कि देवदत्त कहां है उत्तर मिला कि अमका मसजद मे पढ़ने गये हुए हैं आओ बैठो थोड़ी देरमे आजायेंगे परन्तु मित्रके मिलनेका उत्साह उसको इतना अन्तर सहन करनेकी आज्ञा नही देताथा इसलिये सोमदत्त शीघ्रही उस महजदमें पहुंचा और महजदके चौकमें एक तर्फ चटाई (सफ) के ऊपर बैठा हुआ देवदत्त को पढते देखा और सहर्ष शीघ्रता से निकट जाकर जय जिनेन्द्रदेव कहा देवदत्त विस्मत होकर ओहो सोमदत्त-खड़ा होकर परस्पर गलेमें

देवदत्त—वह ऐसे, कि जो आप लोगोंमे मनुष्य (इन्सान) मरतेहैं उन्हें जमीनमें कबर खोदकर उसमे दफन कर दिये जातेहैं उनकीदेह मिट्टी मे मिलजातीहै और जो हयवान (जानवर) भेड़, बकरी, गांय, बैल, बच्छा, बटेर, मुर्ग, वगेरा मारे जातेहै, उनकी देह आप लोग मांसाहारिओं (गोस्त खोरो) के पेट की कबरमें दफन होतीहैं याने उनकी देह आपके पेटमे हजम होतीहै और जैसे आपने भी मुझको अरबी की किताब पढाते हुए सिखलाया था कि हजरतअलीने फरमाया है—

"लातजालो बतुने कुम कबूरउल हैवानात्"

अर्थः—तुम अपने पेटोंको हवानो की कबरे न बनाओ, तब मौलवीजी चुप, वगेरः और सुना है कि नवा अंजील, दूसरा अयदनाम, बाब १४वां सफा २२३ ईशा खत लिखताहै रूमीयोंको "ना तू गोस्त खा न शराब पीय" ।

पाठक ! देखो ईशा महाशय ने भी दयाको ही मानकर ऐसा लिखाहै। और बोस्तांमे भी यह लिखाहै जो अधो लिखत शेरोंसे प्रकट होताहैः—
"यके सीरत नेकमरदां शनो, अगरनेक मरदी वा पाकीजह रूके शिवली जहानूत गंदम फरोश" वगेरः ।

इन उपरोक्त शेरों का तातपर्य्य यह है कि हे मनुष्य ! यदि तू भला पुरुष और शुद्धात्मा है तो तू एक भले पुरुष के गुणों के विषय मे सुन जैसे शिवली साहब ने एक बार नगर में जाकर एक गेहूं (कनक) बेचने वाले की दुकान से गेहूं खरीदी और गठड़ी बांधकर उसको कंधे पर उठा कर अपने गाओं को वापस आए, जब गठड़ी खोली तो उस गेहूं में एक च्यूंटी (कीड़ी) देखी जो व्याकुल हुई हुई चारों ओर दौड़ रही थी, शिवली साहब ने समझा कि यह बेचारी च्यूंटी अपने घर से निर्वासित (ज़िला वतन) हो गई है । यह देख कर उस भद्र पुरुष को इतनी दया आई कि उसी चिन्ता मे उसको रात भर नींद न आई । सवेरा होते ही उस गेहूं को उस दुकानदार की दुकान पर लाये और कहा कि यह उचित नही है कि मैं इस च्यूंटी को उसके वास्तविक घर से निर्वासित करूं । कहते हैं कि उन्होंने उस अनाज को उसी स्थान पर रख दिया जहां से उठाया था जब च्यूंटी निकल कर चली गई तो अपने घर को वापिस आगए।

देखिये इस्लामधर्म के पूज्य वृद्धों ने कीड़ी

तक को भी दुःख देना पाप समझा है, और देखिये बाबा फ़रीद साहिब जब कई वर्ष वनो मे तपस्या करके घर वापिस आये तो उनकी माता ने पूछा कि बेटा वन में क्या खाते होंगे तब जवाब मिला कि बहुत भूख लगने पर वृक्षो के पत्ते तोड़ खाता था तब माता ने फ़रीद साहिब का एक बाल नोंचा तब बाबा फ़रीद जी के मुंह से हाय का शब्द निकला तो माता झिड़क कर बोली, अये बेटा! जिन वृक्षों के पत्ते तू नोंच नोच कर खाता रहा है क्या वे वृक्ष दुःख पाकर न रोये होंगे इस पर वह लज्जित होकर फेर वनो मे चले गये, और भूख लगने पर सूखे पत्ते (झड़े पड़े) खाते रहे, देखिये! उन्होने भी सबज़ी मे जीव माना है किसी फार्सी वाले ने कहा भी है :—

"हफ्तदो हफ्ताद कालब करदह अम,
बारहा दरसबजा रूहीदहा अम" ॥

अर्थात्, हफ्तदो (१४), हफ्ताद (७०) यह ८४ लाख योनियो मे कालब (देहधारी) (जन्म किये) मैने, कई बार बीच सबजी के मेरी रूह पैदा हुई वगैरः २।

और कविता-साधु ऐसे चाहिएं, जो दुखें दुखावे नां।

पान फूल तोड़े नहीं, रहें बागीचे मां॥

तनक फिरदोसी साहब के अधो लिखित शेरोंपरभी विचार करें कि आप क्या कहते हैं-

चः खुश गुफ़त फ़रदोसी पाक ज़ाद,
कि रहमत वरां तर बुत पाक वाद।
जॉ मयाज़ारूह हरचाः ख्वाही कुन,
कि दरशरीयत मागीरजीन् गुनाहे नेस्त।

अर्थात् प्राण धारी को मत सताओ और काम जो तुम चाहो सो करो क्योंकि हमारे धर्ममें इससे बढ़ कर और कोई पापनहीं है, पाठकजन देखिये इन पूर्वोक्त प्राचीन विद्वान महां पुरुषों ने भी दया को ही श्रेष्ठ धर्म माना है जो कि परमपद परमात्मा को मिलने की पहली सीढ़ी है अस्तु चाहे सारा संसार दया का शत्रु वन जावे परन्तु सत्पुरुष प्रत्येक जाति व प्रत्येक मतमें विद्यमान रहते हैं और वे दयाको कभी नही छोड़ सकते। इससे सिद्ध है कि मुसल्मानों में भी हिंसा करना घोर पाप माना है जैसा कि पूर्वोक्त श्री महासती पार्वती जी ने कहा है।

हिन्दु विद्वानों की सम्मतियें।

"अहिंसा परमो धर्मः" यह मंत्र वेदों और स्मृतिओं का है जिस का अर्थ यह है कि सब से

ऊंचा धर्म प्राणि को कष्ट का न देना है। जैसे मनु जी ने मनुस्मृति में आठ कसाई वताए हैं-

(१) पशु के मारनेकी आज्ञादेने वाला (सम्मति) देने वाला (२) पशुको मारनेके लिए वेचने वाला (३) पशु को काटनेवाला अर्थात् मारनेवाला (४) मांस ख़रीदने वाला (५) मांस वेचनेवाला (६) मांस पकाने वाला (७) मांस परोसने वाला (८) मांस खाने वाला इत्यादि।

कवीर जी की सम्मति।

उन झटका उन बिस्मिल कीता दया दोहां से भागी।
कहत कवीर सुनो भाई साधो आग दोहां घर लागी॥

वावा नानक देव की सम्मति।

जिस रसोई चाढिया मांस दया धर्म दा होया नास।

मैंने एक ग्रन्थ में अधोलिखित आठ प्रकार के फूल लिखे देखे हैं। क्योकि वृक्षो के फूलों में असंख्यात जीव होते हैं, जिसकी हिसा का पाप उसी को लगता है जो उनको तोड़ता है व देवताओं की मूर्तियो पर चढाता है इस लिये उस ग्रन्थ मे उन फूलो का चढ़ाना छोड़ कर इन फूलों का चढ़ाना लिखा है यथा श्लोक—

अहिंसा प्रथमं पुष्पम्, पुष्प मिन्द्रिय निग्रहम्।
सर्व भूतदया पुष्पम्, क्षमा पुष्पं चतुर्थकम्॥

जपः पुष्पम् तपः पुष्पम्, ज्ञान पुष्पम् तु सप्तमम्।
सत्यं चाष्टमम् पुष्पम्, तेन तुष्यन्ति देवता ॥

अर्थ—पहला फूल अहिंसा (२) फूल पंचेन्द्रिय निग्रह (३) सब प्राणियोंपर दयाकरना (४) क्षमा करना (५) परमेश्वरका जपकरना (६) तप करना (७) ज्ञानका विचार (८) सत्य भाषन, इन फूलोंके चढ़ाने से अर्थात् ८ प्रकार का धर्म सेवन करने से देवता प्रसन्न होते हैं। देखिये इन फूलोंमें भी अहिंसाको मुख्य रखाहै। और गीता में लिखा है "अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमो यज्ञः"।

जिसका अर्थ यह है कि हिंसाका न करना ही महान् धर्म है और महान् यज्ञ है।

किसी मतको देखो कदाचित् ही कोई ऐसा निकलेगा कि जिसमें सत्पुरुष विद्यमान न हों और जो हिंसा को सब पापोसे बड़ा पाप न मानते हो।

इस लिये जिस प्रकार श्री महासती पार्वतीजी महाराज दया धर्मका प्रचार कर रही हैं यदि और धर्मोंके भद्र लोगभी इसी प्रकार हिंसाको देशसे निर्मूल करनेका परयत्न करतेरहे तो थोड़ेही समयमें इस देशमें घी दूधकी नदीयां वहने लग जाएं और फिर सारी ॰ शान्तिका साम्राज्य हो जाय। आशा है

कि प्रत्येक धर्म व प्रत्येक जाति के सज्जन मेरे इस कथन पर अवश्य ध्यान देंगे और मद्य पान मांस भक्षण को छुड़ा कर दया धर्मका सर्व साधारणमें प्रचार करेंगे जिससे हम उनके अनुगृहीत होंगे ।

दूसरा पाप मृषावाद ।

श्री महासती पार्वती जी महाराज ने पहले पापके अनन्तर दूसरे मृषावाद पाप का अर्थ झूठ बोलना कहा फिर आपने झूठके पांच भेद कहे जो नीचे लिखे ऽनुसार हैः—

(१) कन्याली, आपने इसका अर्थ यह बतलाया कि जो लोग कन्या के लिए झूठ बोलते है अर्थात् कन्या व बालक के आयु और रूप व आकार व वंश अथवा योग्यता आदि बढ़ा कर प्रगट करतेहै, वे इस कन्याली झूठमे गिने जातेहैं ।

(२) गोआली—इसका अर्थ आपने यह कहा कि जोलोग गौ,भैंस,बकरी आदिक पशुओकी झूठी प्रशंसा करते है अर्थात् जो पशु थोड़ा दूध देते हो ग्राहक से यह कहते है कि इसका दूध और मक्खन बहुत है और बूढी गौ व भैसको जवान सिद्ध ... अथवा चिरकाल की व बहोतवार की सुई हुई ... अभीकी सुई हुई सज्जर कह कर बेचते है वह ... ।अ ...

पापके भागी होते हैं । क्योंकि जब ख़रीदने वाला उतना दूध मक्खन नहीं पाता तो वह उसकी रक्षा न करके कसाई के हाथ दे देता है, और कसाई जब उसकी ग्रीवा पर आरा चलाता है तो गोआली पापके सेवन करने वाला भी इस घोर पापमें भागी बनता है, इस लिये इस पापको भूल कर भी मत करो।

(३) भूआली—भूआली का अर्थ आपने यह कहा कि भूमिके लिये झूठ बोलना अर्थात् जो लोग अपनी भूमि पर सन्तोष न करके दूसरेकी भूमि पर अपना स्वत्व जमा लेते हैं और जब जांच हो तो झूठ बोलकर यह सिद्धकरना पड़ताहै कि मेरी ही है इस लिए भूआली पाप त्यागने के योग्य है ।

(४) थापन मूसा—आपने इसका अर्थ यह कहा कि प्रायः लोग परस्पर विश्वास करके बिना अष्टाम व कोई लिखा पढ़ीके रोकड़ व भूषण व अन्य पदार्थ एक दूसरे के पास रख देते है जिसे धरोहर (इमानत) बोलते हैं, जो किसी की धरोहर रखकर मुकरजाते हैं वे इसी थापन मूसा पापके करने वाले होते हैं क्योंकि वह धनके रखजाने वाला जवाब सुनकर अत्यन्त दुखी होता है इस लिये इस पापको अवश्यमेव त्यागना चाहिए।

(५) कूड़ी साख–फिर आपने कहा कि जो लोग झूठी साक्षि देते है वे इस पापके भागी होते है यह एक वड़ा ही निन्दनीय पाप है क्योंकि थोड़े ही लोभ से व लिहाज से सच्चे को झूठा कहना और झूठेको सच्चा कहना पड़ताहै जिससे महान् अधर्मकी प्राप्ति होती है, इस लिए इस पापको अवश्य छोड़ो। इन पांचो का वर्णन करके फिर महासती पार्वतीजी महाराजने निम्नलिखित पांच कर्मोंका भी कथन किया और कहाकि यह भी झूठ ही के सम्बंधमे है।

यथा (१) सहस्साभ्याख्याने–आपनेकहा कि जो लोग किसी पर वलात् झूठे कलक लगा देते है वे इस सहसा भ्याख्यान दोषके भागी होते है।

(२) रहस्साभ्याख्याने–इसका अर्थ आपने कहा कि जो लोग किसीको क्षति पहुंचाने व लज्जित करनके भावसे उसके गुप्त रहस्यको प्रगट करे वे इस दूसरे कर्मके भागी होते है।

(३) सदारमंतभेय–आपने कहा कि जो लोग मित्र वन कर भेद लेलेते है और फिर हानि पहुंचाते हैं वे इस तीसरे पापके भागी होते है।

(४) मिच्छोवयेसे–फिर श्री महासतीजी ने कहा कि जो लोग ऐसा उपदेश करतेहैं कि जिसमे सच्चाई

की गन्धि तक न हो अर्थात् झूठे उपदेश का करना अथवा यो कहना कि तुमने निश्शंक होकर झूठ कहदेना, परन्तु मैं स्वयं झूठ न बोलूंगा ऐसा कहने वाले पुरुष इस मिथ्या उपदेश पापके सेवन करने वाले होते हैं ।

(५) कूड़लेह करणे इसका अर्थ आपने यह कहा कि जो लोग हुंडवी, पत्री, तमस्सुक, वही आदिमे झूठे नावे लिखते हैं वे इस पञ्चम कुकर्म के भागी होते हैं जिससे इस लोकमें अपयश वे परतीति और राजदण्ड आदि बुरे फल चाखने पड़ते हे और पर लोक मे पशु योनि आदि बुरी गतियो में जन्म लेकर वहुत से कष्ट उठाने पड़ते हैं । इस लिए सब पुरुष व स्त्रीयां इस दूसरे मिथ्यावचनके पाप का अवश्य त्याग करें ।

——:०:——

तीसरा पाप अदित्ता दान ।

श्री महासती पार्वती जी महाराजने अदित्ता दान का अर्थ चोरी कहा अर्थात् स्वामीके विना पूछे कोई वस्तु लेना चोरी है यथा सुरंग लगाना, गांठ कतरना, किसीका ताला क्रिसी [illegible] खोलना, किसीकी जानते [illegible]

चोरकी चुराई वस्तुका लेना, चोरोको आश्रयदेना, राजविरुद्ध (राजाके न्याय) से विरुद्ध काम करना भी चोरी है जैसे महसूल चुगी आदिका ग़वन करना, खोटे सिक्को रुपये नोटो आदिकों का वनाकर वेचना, कम तोलना कम मापना, किसी शुद्ध वस्तुमें मिलावट करके वेचना जैसे खांडमें रेत मिलाना, घीमे चर्वी आदिक दूधमेंजल मिलाकर वेचना इत्यादि यहसव कर्म चोरी मे हें यह तीसरा अदित्ता दान पाप है। इसके आचरणसे इस लोकमें अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़तेहै, अर्थात् लोगोंमें विश्वासका उठजाना, कारावास (कैदखाना) व जुर्मानाकी यातनाका भोगना और किसीके साम्हने मुंह न कर सकना इत्यादि दण्ड मिलते है और परलोक में नर्क और पशु आदिक नीच गतिओ मे जन्म धारण करके अनेक विपत्तिओं का साह्मना करना पड़ताहै, इस लिये प्रत्येक पुरुष व स्त्रीओ को इस पाप से वचना उचित है।

चौथा पाप मैथुन ।

आपने चौथे पापका नाम मैथुन वतलाया जिसका अर्थ विशेष करके व्यभिचार से संवंध रखने वाला कहा अर्थात् परस्त्री वेश्या आदिसे संसर्ग करना और स्त्रीका पर पुरुषसे रमण करना

आदिक इसके अतिरिक्त थोड़ी आयु वाली स्त्रीसे चाहे वह अपनीहीहो जैसाकि कई लोक धनके लोभ से छोटी आयुमें विवाहकर देतेहैं यथा लोकवाणी—आठ वर्षकी बालिका साठवर्षका नाथ अथवा किसी अन्य कारणसे छोटीआयु वालीसे बलात्कार भोग करना क्योंकि जिसको कामकी इच्छाही नहीं, इत्यर्थः अथवा किसी अन्य पुरुषसे अन्य स्त्रीका मिलादेना, अथवा किसी पशुजातिसे मैथुनकरना, अथवा बहोलताई कामभोगमें मनको बसाये रखना अर्थात् संतोष का न करना, अथवाकई पुरुषोंका परस्पर बालक व युवक व बृद्धोंकी असंतुष्टताके कारण लज्जासे रहित पशुओंसेभी बढ़कर अज्ञातपना (अनजान) होकर व्यभिचार कर्मका करना इत्यादि यह सब कर्म चौथे दर्जेके मैथुन पापमें अर्थात् व्यभिचार मे हैं ।

इस व्यभिचार कर्मने भारतसे वीरता शूरता और सच्ची संतानका पैदा होना नाशकर दियाहै, इस व्यभिचार कर्मने धर्म कर्मकी मर्यादा अर्थात् शास्त्रकी और अपने बड़ोंकी मर्यादाको तोड़ दियाहै, इस व्यभिचार कर्मने अपने बड़े माता पितादि भाई बिरादरी पड़ोसी आदिकोसे लज्जाका पड़दा उठा दियाहै, इस व्यभिचार कर्मने उनकी देहको

रोगोंके रहनेका घर बना दियाहै,अर्थात् बहुत लोक मूत्र कृच्छ (सुजाक भगंदर) और उपदंश (आतस) गर्मी जैसे निर्लज्ज दुष्ट रोगोंके वसमे पड़ जातेहैं, और कइ राजदण्ड (कारागार (कैद) तथा देश निर्वासित (देश निकाला) आदिकके कष्ट भोगतेहैं जहां अपने सज्जन संबंधीयोंके मूंह देखनेको भी तर्सतेहैं) और कइ दुर्वचन आदिककी ताड़ना सहतेहैं अर्थात् कामी, व्यभिचारी, लंपट, शोदा आदिक नाम धरातेहैं, और कइ लाखों रुपयेकी सम्पति थोड़े ही कालमे गंवाकर नङ्ग (कंगाल) हो जातेहैं फिर घरसे निरादर होकर जूएबाज सुलफेबाज सुथरे आदिकोमें रल जातेहैं इत्यादि और परलोकमे सूकरी कूकरी आदिककी यूनियोंमे तथा नरक योनिमे नाना प्रकारके वचनअगोचर महाकष्ट सहतेहैं जिनका शास्त्रो द्वारा कथन सुन २ कर शरीर रोमाञ्च हो जाताहै, किंबहुना अयि सज्जन भाइयो यदि अपना और अपने देशका भला चाहतेहो तो इस व्यभिचार कर्मको पांचो मंजलों से नीचे गिरादो ।

अर्थात् प्रथम तो अपने दिलसे द्वितीय महल्ले से तृतीय नगरसे चतुर्थ देशसे पञ्चम् यदि सामर्थ

है तो यतिसाति जनों अपने उपदेशों द्वारा भारत से ही निकाल दो।

नोट-ब्रह्मचर्यके साधन करनेकी रीति देखनी हो तो श्री १००८ प्रवर्तिनी पार्वतीजी कृत (ब्रह्मचर्य विधि नामक पुस्तक) सं० १९७६ वि०में छपी देखलेवें।

पांचवां पाप परिग्रह।

आपने पांचवें परिग्रह पापका अर्थ तृष्णा कहा अर्थात् पदार्थोंका अतिलोभ करना यथा मैं ही सारे जगतका धन लूटलूं (सारे धनका स्वामी) मैं ही हो जाऊं अथवा कोई अपना माल धर कर मर जाए इत्यादि खोटे संकल्प करना और धनकी वृद्धिके लिए कसाईयों खटीकों बूचड़ों आदिक हिंसा करने वालोंके साथ व्यापार करना अर्थात् उनको अधिक सूदके लोभसे रुपया व्याजपर देना और शस्त्र बंदूक तलवार चाकू छुरी आदिके बेचने से लाभ उठाना, अपने व्यय (खर्च) से दुगनी तिगुनी आय (आमदनी) होनेपर भी संतोष न करना इत्यादि सब उपरोक्त कर्म पांचवें परिग्रहपाप मे गिने जातेहैं। इससे इस लोकमे चिन्ता, शोक, कलह, क्लेश, मुकदमा झगड़े आदि अनेककष्ट उठाने पड़तेहैं और परलोकमें नर्क आदि गतिओंके महा

कष्ट भोगने पड़तेहैं । इसलिए इस तृष्णापापसे वचना चाहिए ।

छठा पाप क्रोध ।

श्री महासतीजी महाराज ने छठा पाप क्रोध वतलाया जिसका अर्थ क्रोध के वस मे तपना कहा यथा अपने आप परक्रोध करना अर्थात् आत्म घात करना, सिर व छाती पीटना,विप खा लेना कूंएं व तालाव आदिकमे डूवकर मर जाना इत्यादि और दूसरे प्राणिओं अर्थात् दीन अनाथ निस्सहायजनों और मूक (वेजुवान) जन्तुओ जैसे गौ,भैंस,वैल,घोड़े, गधे, तीतर,वटेर,कवूतर आदिक पर जो विचारे कुछभी अपना दुःख प्रगट नहीकर सकते उनपर क्रोध करके अधिक ताड़ना का करना,इस कर्मका नाम क्रोध है इससे जो दोप प्रकट होतेहै वे अगणित है प्रत्यक्ष देखतेहै कि मनुष्य क्रोधसे आकर अपने परमप्रिय प्राणो तकको भी पूर्वोक्त कुछ नही गिनते इसलिए प्रत्येक मनुष्य को क्रोधसे अवश्य हट जाना चाहिये ।

सातवां पाप मान ।

आपने सातवे पाप मान का अर्थ अहंकार वतलाया जिसको शास्त्र कारोने सर्व दोपो की खान

कहा है अर्थात् माता पिता गुरु व राजा की आज्ञा को न मानना और मूंग मोठोंमें छोटा कौन बड़ा कौन ऐसे वचन अहंकार से बोलकर भाई बन्धुओं में बड़ोंका निरादर करना और सच्चे गुरु व सच्चे पंचोंका कहा न मानना अथवा कोई नवीन झूठा मत निकाल धरना अर्थात् ऐसा कहना "चाहे कुछही हो मैं अपनी कही बातको ही चलाऊंगा" अर्थात् अपना मान न छोड़ना, मुकद्दमांबाज़ी जो कि धनको नष्ट करने वाली दिया सलाई है अहंकार मे आकर करते ही जाना इत्यादि इस सातवें पाप अहंकारसे जो हानियां होती है वे अनेक हैं। आपने कभी यह कहावत भी सुनी होगी—

मान करन्ते सो गए जिन्हां न रहिआ बंश।
तिन्ने टिब्बे देखलो यादों कौरव कंस ॥

सत्य है, मान ऐसा ही बुरा है, इस लिए प्रत्येक स्त्री व पुरुषको मान का त्यागना ही उचित है।

आठवां पाप माया।

माया का अर्थ आपने छल कहा यथा कपट विश्वास घात, मित्रद्रोह अर्थात् मधुर वचनोंसे पहले मित्र बन कर भेद लेना और फिर उसको हानि पहंचाना, अथवा बगुला भक्त बनजाना (भेषधारी

मायाचारी अर्थात् साधुके वेषमें असाधु कर्म्मोंका करना यमों और नियमोंसे भ्रष्ट होकर धर्मात्मा कहलाना कुसती होकर सती कहलाना इत्यादि और इस आठवे माया पापसे जो दोष इस लोकमें उत्पन्न होते हैं उनका लिखना लेखनी की शक्तिसे बाहर है। अर्थात् कपटी का नाम ही सुनने से मन में एक प्रकार की व्याकुलता होने लग जाती है कपटी मनुष्यकोमहात्माओंने बिड़ाली (बिल्लि) जैसे नीचजन्तु के साथ उपमादी है, कपटी का विश्वास नहीं किया जाता है कपट से प्रेम और मित्रता का नाश हो जाता है जो सरल, सत्य क्षमादि गुण इस लोक में परम हितकारी और सुखकारी गिने जाते हैं वे इस पाप से नष्ट हो जाते है और परलोक में तिर्यक् योनि में जन्म लेकर महान् कष्ट उठाने पड़ते हैं अर्थात् नाक छिदानी पीठलदानी भूख प्यास का सहना सदापरवसी मे रहना इत्यादि, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको मायाका त्याग करके अपने हृदय को शुद्ध और सरल रखना चाहिए क्योंकि सचाई से ही सब धर्म कार्य निभ सकते हैं और धर्म रूपी जहाज से ही भवसागर से तर सकते है इस लिये

सच्चाई का पल्ला न छोड़ो यथा लोक वाणी "सच्च का बेड़ा पार है" इत्यर्थः—

नवमां पाप लोभ ।

लोभका अर्थ आपने असन्तुष्टता (वेसवरी) अर्थात् लालच करना कहा यथा अपने खान पान वस्त्र भूपण धन सम्पत्ति आदि पदार्थों पर संतोष न रखना और औरों के पदार्थोंको देख २ झुरना व उनकी वांछा करना तथा इन्द्रियों के भोग शब्द रूप, गंध, रस, स्पर्श के लालचमें आकर जो अकार्य न करने योग्य हैं सो कर वैठने क्योंकि यह बात तो जगत् में प्रसिद्ध है कि लोभ सव पापोंका बाप है इस लिये इस लोभ पापका परित्याग करके संतोप का शरण ग्रहें यथा कवि वचन—

गो धन गज धन रत्न धन कञ्चन खान सुखान
जब आवे संतोप धन सव धन धूलि समान ॥

दसवां पाप राग ।

आपने रागका अर्थ पक्षपात कहा जिसके प्रयोग से झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा वनाना बुरे को भला और भले को वुरा सिद्ध करना इत्यादि इस दसवें पाप रागने वड़ा अंधेर मचा रखा है जो

मनुष्यको प्रकाश में आने ही नही देता पक्ष की लहर जिसके हृदय में लहरा रही हो उसको धर्म अधर्म की पहिचानही नही होसकती इस लिये सज्जन पुरुषो आप इस राग पापका परित्याग अवश्य मेव करे और निर्पक्ष होकर सचाईका रस चाट कर हृदय में आनंद भरें ।

ग्यारहवां पाप द्वेष ।

द्वेषका अर्थ आपने वैर भाव कहा जिस वैरके प्रभाव से मनुष्य मन से जानता हुआ भी उपरोक्त सचे को झूठा कहना और भलेको बुरा कहना किसीके बने बनाए कामको बिगाड़नेकी चेष्टा करना अर्थात् किसीका धन आता रोकदेना (असामियोंको बहका देना) सगाई आती को रोकदेना (भांजी लगा देना) इत्यादि दुष्ट कर्म इसलोकमे मनुष्यको अपयश आदि कड़वे फल चखवाता है और परलोकमें बड़े बड़े दुःखों मे डालता है । इस लिए इसद्वेष पाप को त्यागना ही उचित है ।

बारहवां पाप कलह ।

कलह का अर्थ आपने क्लेश कहा, यथा भली शिक्षाको बुरी समझकर लड़ाई झगड़ा करना सीधी

सोलहवां पाप रत्या रति ।

आपने रतिका अर्थ हर्ष (प्रसन्नता) और अरतिका अर्थ शोक (दलगीरी) कहा यथा (प्रश्नः) कौनसी प्रसन्नता पाप है (उत्तरः) जो दूसरे लोगों को कष्ट में देखकर प्रसन्न होना अर्थात् किसी का पुत्र मर जावे किसीके पुत्रका नाता छूट जावे मुकदमां हार जावे इत्यादि दुःखों में फंसे हुए को देख कर प्रसन्न होना यह पाप है (प्रश्नः) कौनसी दलगीरी पाप है (उत्तरः) जो किसी मनुष्य को सुखी देखकर दुःखी होना यथा किसी के घर पुत्र हुआ किसीका मुकदमा सिद्ध हुआ अथवा राजा की ओरसे उपाधि अर्थात् पदवी (औहदह) मिला इत्यादिको देखकर दलगीर होना (मनमें जलना) यह महापाप है यह उपरोक्त शब्दही बतला रहेहैं कि यह पाप कहां तक बुरा है और इसके फल कैसे बुरे होंगे इसलिये इसका त्यागनाही धर्म है ॥

सतारहवां पाप माया मूस ।

श्री महासती श्रीपार्वतीजी महाराजने सतारहवां माया मूस पाप का अर्थ धोखा अर्थात् छल से झूठ बोलना बतलाया । इसका पूरा स्वरूप

समझाने के लिये आपने एक दृष्टान्त भी दिया जो निम्नलिखित है—

किसी नगरमें एक साहुकार रहता था जिस के कई कर्मचारी हुंडी पर्ची आदि के काम पर नियुक्त थे एक वार उस साहुकार के नेत्रोंमें कुछ रोग होगया जिससे उनका एक नेत्र जाता रहा। उसके अनन्तर घटना वशसे एक दिन वह घोड़े परसे गिर गये जिसमे उनका एक हाथ टूट गया वहुत यत्न करने पर भी कुछ लाभ न हुआ विवश होकर हाथ कटवा दिया गया फिर कुछ समय पीछे कर्म वशसे उनकी स्त्री मृत्यु होगई। लोग सहानुभूतिके लिये आए तव उनके मित्रो और कर्मचारियोने साहुकारसे कहा कि आपकी आंख और वांह वनानेकी तो हममे समर्थ नहीं है परन्तु आप विवाह अवश्य करा लें। साहुकार तो चुप रहा परन्तु उनका एक मित्र वोला आपकी आयु तो साठ वर्षकी हो चुकी है सगाई कौन देगा। दूसरा वोला इसकी कोई वात नहीं रुपएसे सव काम हो सकते है इस घरमे धन तो वहोत है चार पांच हज़ार रुपया देकर विवाह करा देंगे। तीसरा

बोला, वाह महाराज अच्छी कही रुपया देकर ब्याहनेमें कोई प्रतिष्ठा है। तब सबने उसको कहा, जो तू ऐसा ही चतुर है तो बिना रुपया ख़र्चे विवाह करा दे। उसने कहा करवा तो दूं पर मुझे झूठ बोलना पड़ेगा जिससे सदाके लिए कलंक लग जायगा। उन्होंने कहा तुम तो बड़े चतुर हो ऐसे ढंग से काम करो कि झूठ बोलने का कलंक तुम पर न लग सके उसने कहा बहुत अच्छा। इस प्रकार उनको विश्वास दिला कर वह किसी नगरमें एक सेठको मिला उसके घर एक नवयुवती और योग्य कन्या थी वह सेठ इस कर्मचारी को जानता भी था उसको निश्चय था कि यह कभी झूठ नहीं बोलता अर्थात् सत्यवादी है। कर्मचारी ने कहा कि हमारे सेठकी धर्म पत्नी स्वर्गवास हो गई है आप अपनी कन्याकी सगाई दे देवें तो अच्छा है। कन्याके पिताने कहा कि आप अपने सेठके विषयमें मुझे कुछ परिचय दीजिए? वह बोला बड़े धनाढ्य और कुलीन हैं उनकी आयु उन्नीस बीस इक्कीस वर्षकी है दाता ऐसे है कि एक हाथ से दान देते हैं और न्याय शील ऐसे हैं कि सब

को एक आंखसे देखते हैं वरके इतने गुण सुन कर सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ कि कन्याके बड़े उत्तम भाग्य है जो विना खोज किये ही ऐसा वर मिल गया अस्तु तव उस साहुकारने प्रसन्न होकर सगाई के साथ ही विवाहका लग्न पत्र भी उस कर्मचारी के हाथ दे दिया और कहा कि आपकी सचाईके भरोसे पर मैंने यह कार्य किया है तव वह कर्मचारी प्रसन्न होकर वहां से विदा हुआ और गृह पर आकर अपने सेठको वधाई दी और कहा कि मैंने जो कुछ किया है केवल सत्यके आश्रय पर किया है कन्या सचमुच वड़े ऊंचे वशकी है और विना रुपया ख़र्चे ही नाता लेआया हूं। साहुकार और उसके मित्र आश्चर्य्य रह गए और धन्यवाद देकर अङ्ग फूले न समाये फिर विवाह की तैयारियां करनेके लगे और कन्याके पिताको विवाह की स्वीकृति भेजदी। नियत तिथि पर वरात चढ़कर कन्या वालेके घर पर पहुंची। जव सेठ जी सेहरा बांधकर सुसरकी ड्योढ़ीमे फेरोके लिये पहुंचे तो उसके मुंहमें तो एक भी दांत दिखाई न दिया और गाल पिचके(वैठे)हुए देखे। साहुकार

विस्मित होकर देखता है कि मूछोंके बालोंकी जड़ें भी सफ़ेद हैं जिससे जान पड़ता है कि इनको वस्मा लगा कर काला किया है होटोंसे लार टपक रही है आंखोंसे जल बहता है इनकी आयु भी साठ वर्षके लगभग प्रतीत होती है अच्छी तरह देखा तो बोला है यह क्या इसकी एक आंख ही नहीं है ओहो यह तो काणां है फिर क्या देखता है कि इसकी एक बांह भी कटी हुई है यह देख कर वह साहुकार शोकके समुद्रमें डूब गया और मनमें सोचने लगा कि यह क्या अन्धेर हुआ हाय हाय उस सत्यवादीने तो सत्यानाशही कर दिया मेरे जिगरके टुकड़े कन्याको असत्य बोलकर डुबो दिया अतः बड़े क्रोधमें आकर चिल्लाया कि उस पुरुषको अभी मेरे पास लाओ। वहां देर ही क्या थी वह तो वहीं पर स्थित था शीघ्रही सन्मुख आ खड़ा हुआ। साहुकार बोला अरे कपटी तूने इतनी झूठी प्रशंसा करके मेरी कन्याको डुबो दिया और अपयशका टीका मेरे मस्तक पर लगवा दिया तूने मेरे साथ किस जन्मका वैर लिया। उसने उत्तर दिया कि मैंने रञ्चक मात्र भी झूठ नहीं बोला जो

कुछ मैंने कहा था वह सच है हाथ कंगनको आरसी क्या सेठ साहब सन्मुख खड़े हैं देखलो मेरा कहा यथार्थ है।

साहुकार—अरे दुष्ट मिथ्या वादी तूने कहा था कि लड़केकी आयु उन्नीस वीस इक्कीस वर्षकी है यह तो साठ वर्षका बूढ़ा है।

कर्मचारी (मुनीम)—तो उन्नीस वीस इकीस कितने होते हैं यह भी साठ ही होते हैं इसमें मैंने मिथ्या क्या कह दिया।

साहुकार—अरे सच्चके पुतले साठके बच्चे इसके तो एक आंखभी नहीं काणां है और एक बांह भी नही टूंडा है।

मुनीम—मैंने यहभी तो कहा था कि एक हाथ दान करते है अर्थात् उनका एक ही हाथ है दूसरा नहीं है और यह भी कहा था कि सबको एक आंखसे देखते है अर्थात् काणे है फिर झूठ कैसा यदि आप न समझे तो दोष आपका है न तु मेरा इस पर साहुकार अपनी उतावली (जलदी) और मूर्खता पर बड़े ही लज्जित हुए और उसके कपट से चकित होकर पछताने लगे और अन्त मे प्रारब्ध पर विश्वास करके कन्या दे दी।

यह दृष्टान्त सुना कर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने श्रोता जनोंकी ओर लक्ष्य करके कहा कि क्या उस कर्मचारीने सत्य कहा था नहीं नहीं यह सत्य नहीं था, इसका नाम माया मूस अर्थात् फरेब है अर्थात् पेंच डाल कर झूठ वोलना है यह झूठसे भी वधकर पापहै,जैसे फांदी जाल विछाकर पक्षिओंको जालमें फंसालेते हैं ऐसे एच पेंच लगा कर झूठी वातोंका जाल विछाछर सच्चेको झूठा बनाकर निरुत्तर करके पराभव करलेना है इत्यर्थः इस पापके फल बहुत काल तक नरक तिर्यचादि गतियोंमें निरूपम कष्ट सहकर भोगने पड़ते हैं इस लिये धर्म्मात्माओंका धर्म है कि वे इस पापसे अवश्यही परे रहें ॥

अठारहवां पाप मिथ्या दर्शन सल्ल ।

श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहाकि सवसे अन्तिम पाप मिथ्या दर्शन सल्ल है जिसके अर्थ सम्यक्त्वभावमें मिथ्यात्व रूपी सल्ल अर्थात् भ्रमका होना हे यथा धर्म, अधर्म, चेतन, जड़, पुण्य, पाप, लोक, परलोक, वंध, मोक्ष आदिकके माननेमें ऐसा भ्रम उत्पन्न हो जाना कि न जाने वास्तवमें इन पदार्थो

की अस्तित्वहै किंवा नहीं अर्थात् नास्तिक होजाना है यह अठारहवां पाप धर्म जैसी सत्य वस्तुमें भी भ्रम उत्पन्न करने वाला है और अज्ञान अंधकारमें डालने वाला है क्योंकि सव महात्माओंका मत है कि धर्म के सिवा इस लोक व परलोकमें कोई भी वस्तु सच्चा आश्रय देने वाली नही है। एक मात्र धर्मही प्रत्येक स्थान और प्रत्येक समयमे प्राणीमात्र का सहायक है परन्तु यह मिथ्या दर्शन सल्ल पाप (नास्तिकत्व) इसमें भी भ्रम उत्पन्न कर देता है इस लिए यह नास्तिकत्त्व पाप सवसे वढ़ करहै और सव से पहले सवको वर्जनीय है।

उपरोक्त अठारह पापों का वर्णन करके श्री महासती पार्वती जी महाराज ने कहाकि मनुष्यों के हृदय पाप कर्मोंकी ओर तो सहज ही मे झुक जाते है और उनको सहर्ष स्वीकार कर लेते है परन्तु जव उनके कड़वे फल भोगने पड़ते है तव उनका भोगना अति दुष्कर हो जाता है जैसे रोगीके लिये कुपथ्य करना तो सुगम है परन्तु जव उसका फल लगता है अर्थात् रोग वढ़ जाता है तो फिर सम्भलना कठिन हो जाता है इत्यर्थः इन उपदेशो को सुन कर

लोगोंके हृदय कांप उठे अर्थात् बहुत लोगों को पूर्वोक्त पापोंसे घृणा उत्पन्न हुई अतः कई दुकानदार लोगोंने चूहे चिड़ीयां ऊंदर आदि पकड़नेके पिञ्जरों का तथा शस्त्र आदिकका क्रय विक्रय तक बंद कर दिया, कई मनुष्योंने झूठ बोलना झूठी साक्षी देना त्याग दिया महसूल चुंगीका गबन करना छोड़ दिया, वेश्या और भांडोंका नचाना हानिकारक रसम समझ कर बंद कर दिया, बहुत लोगों ने बटन छतरीके मुट्ठे आदिक हड्डी की बनी हुई वस्तुएं और चमड़े वाली टोपियां चमड़ेके बेग, बटुवे और बूट, पेटी आदिकका व्यवहारमें लाना अथवा पहनना परित्याग कर दिया बहुत लोगोंने कसाईयोंको रुपया सूद पर देना त्याग दिया और कई अजैन लोकोंने आखेट (शिकार) खेलना मांस खाना मदका पीना त्याग दिया इत्यादि किं बहुना आपके नाभे पधारनेसे दया धर्मका बड़ा ही प्रचार हुआ ॥

हिज़ हाईनैस श्री महाराजा नाभा नरेश की ओर से दो प्रश्न।

आपके उपदेशोंसे जब इस प्रकार धर्मका प्रचार हो रहा था तो श्री महाराजा हीरासिंह साहब बहादुर

नाभा नरेश ने भी आपकी प्रशंसा सुनी और दो प्रश्न अपने पण्डितोंकी इच्छाऽनुसार लिखवा कर आपकी सेवामें भेज दिए जो नीचे लिखे अनुसार हैंः—

१ प्रश्न—स्त्रीको उपासना अर्थात् दीक्षा लेना योग्य नही है क्योंकि स्त्री दीक्षा लेकर अपने उपासकों को उपदेश अर्थात् शिक्षा देवेगी तो वे उपासक उसके उपदेश को सुन कर वर्णसंकर हो जाएंगे और वे वर्ण संकर नर्कके अधिकारी होते है और उनके पितर भी पिण्डके न लगने से स्वर्गसे निकल कर नर्क में पड़ जाते हैं। यथा श्लोक गीता अध्याय पहलाः—

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण संकरः ।४१।
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया ॥४२॥

अर्थ—कुलकी स्त्रीयां जब दुष्ट हो जावेंगी तो उन दुष्ट स्त्रियो मे से वर्णसंकर उत्पन्न होंगे। वे वर्ण संकर जिन पुरुषोने कुलका नाश किया है उनको और उसके कुलको नर्कमे पहुंचाते हैं क्योंकि पिण्ड दान और तर्पणके लोप हो जाने पर पितर नरक में पड़ते हैं।

२ प्रश्न—स्त्री और शूद्रको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है यथा श्रुतिः—

स्त्री शूद्रो ना धीयताम् ।

अर्थात् स्त्री और शूद्र वेद न पढ़ें केवल सुननेका ही अधिकार है क्योंकि रूप प्रसन्न एक शूद्र था उसने वेदों का उपदेश किया था उसका बलभद्र जीने सिर काट दिया था और स्त्री के ३ धर्म मनु जी लिखते हैंः—

(१) पति के साथ सती होना ।

(२) पतिकी मृत्युके पश्चात् ऊसकी शय्याका सेवन करना ।

(३) पतिको ही ईश्वरके तुल्य समझना ।

पहले प्रश्न का उत्तर ।

जब श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने दोनों प्रश्नों को पढ़ा तो कहा कि इन दोनो प्रश्नोंके करने वाले पर मतिमान पण्डितोंके लिये कितने खेदकी बात है । देखो प्रश्नका भाव तो क्या है और जो साक्षी में श्लोक लिखे हैं उनका भाव क्या है अर्थात् प्रश्न तो यह है कि स्त्रीको प्रवर्जा अर्थात् दीक्षा लेना

योग्य नही क्योंकि उसके उपदेश को सुनकर लोग वर्णसंकर होजाते हैं और वर्णसंकरों का पिण्डोदक पितरों को नही लगता है इस लिए पितर स्वर्गसे निकलकर नरक में पड़ जातेहैं। इस बातके सिद्ध करने को किसी भी शास्त्र का प्रमाण न पाया तो गीता के प्रथम अध्याय का इकतालीसवां आधा श्लोक और बियालीसवां पूरा श्लोक डेढ श्लोक लिख दिया जिनका अर्थ उपरोक्त प्रकरण से कोई सम्बन्ध नही रखता है। प्रश्नकर्त्ता ने इकतालीसवें श्लोक के पहले दो पद नही लिखे इस लिये अब पूरा श्लोक लिखा जाता है। पाठकजन इस श्लोक और इसके अर्थ की ओर अवश्य ध्यान करे—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियाः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण संकरः ॥४१॥

अर्थात् जिस समय श्री कृष्णजी की आज्ञानुसार अर्जुन कौरवो के अमित सैन्य दलके साथ युद्ध के लिये प्रस्तुत हुए तब अर्जुन कौरवों की सेना मे अपने आचार्य्य और पितापितामह मामा मामु के पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियों को देखा तो अर्जुनजी के हृदय मे करुणा का आविर्भाव हुआ और जी कांप उठा और शस्त्र हाथ से गिर गए...

और बोले कि हे कृष्ण जिन सम्बन्धियों के लिए भूमि चाहिए है उन्हीं को मार कर भूमि का लेना मुझे उचित नही है और कुल के पुरुप मारे जाने से कुलघ्न दोप होता है और उन कुलके पुरुपों की स्त्रियां विधवा होजाती हैं और उनमें से कई व्यभिचारिणी होजाती है अर्थात् और पुरुप का सङ्ग कर लेती हैं फिर उन व्यभिचारिणिओं से जो सन्तान होती है उस को वर्णसङ्कर कहते हैं और कुल का नष्ट होने से हे कृष्ण कुल धर्म भी नष्ट होजाता है और अधर्म फैल जाता है ॥४१॥

अब विचार पूर्वक देखिए कि इस श्लोक का अर्थ क्या है और प्रश्नकर्त्ता पंडित जी प्रश्नमें क्या लिखते हैं कि जो स्त्री साध्वी व सन्यासिन होकर उपदेश करे उसके उपदेश सुनने वाले वर्णसङ्कर हो जाते हैं और श्लोक का अर्थ ऊपर देखो वहां क्या प्रकट किया गया है कि जो कुल के पुरुप मारने से कुल की स्त्रियां व्यभिचारिणी होकर सन्तान उत्पन्न करें तो वह संतति वर्णसंकर होती है इत्यर्थः।

श्लोक ४२वें का भावार्थ।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया॥४२॥

भावार्थ—वह वर्णसङ्कर नरक में पहुंचाता है किसको अर्थात् कुलघ्नों को और कुल को क्योंकि उस वर्णसङ्कर के हाथ का पिण्डपानी पितरों को नहीं पहुंचता इस लिए पितर भी स्वर्ग से निकल कर नरक मे पड़ जाते है इत्यादि ॥

अव पाठक ध्यान पूर्वक देखें कि उपरोक्त लिखे दोनों श्लोकोंसे क्या सिद्ध हुआ कि वर्णसङ्कर व्यभिचारिणी का पुत्र होता है जिसका पिण्डपानी पितरो को नही पहुंचता इस लिए पितर नरक में पड़ जाते हैं, न कि साध्वी के उपदेश सुनने वाले वर्णसङ्कर होजाते है और नरक मे पड़ते हैं, पाठक! विचार करे कि जव पण्डित लोक जो प्रत्येक जाति के नेता समझे जाते है वे सत्य पर कुठार चलाने वाले है। तो उसको दृढ़ करने वाले कौन होंगे देखिए पण्डितो की पण्डिताई और उनका अन्याय तथा पक्षपात कि कैसा अनर्थ करके लोगों को अन्धेरे मे डाल रहे हैं और किस प्रकार लोगो को सत्य से हटाकर असत्य की ओर लेजारहे हैं अव इससे अधिक प्रमाण की आवश्यकता नही समझी जाती, बुद्धिमान् जो सत्य की परीक्षा करने वाले हें वे इस पर विचार कर के वास्तविक अभिप्राय

को जान लेवेंगे। यह लोक लोभ के कारण अर्थ के अनर्थ करके अपने सेवकोंको और अन्य लोगों को सत्पथ से भ्रष्ट करने में कितना प्रयत्न कर रहे हैं देखिए पहले तो पण्डितजी ने डेढ़ श्लोक लिखा है पूरे दो नहीं लिखे क्योंकि लोक इन श्लोकों का भाव न समझ लेवें और फिर जान बूझ कर आधे श्लोक का अर्थ भी ठीक नहीं किया, विचारने की बात है कि जो अर्थ पण्डित जी ने किया है कि स्त्री को दीक्षा का लेना और उपदेश का करना उचित नहीं है सो इन श्लोकोंमें उसकी गन्धि तक भी नहीं है क्योंकि स्त्री को दीक्षा का लेना और उपदेश का देना योग्य है जैसा कि पिता अपने पुत्र पुत्री को लड्डु खिलावे व दूध पिलावे तो उन का मुंह मीठा होता है और बल बढ़ता है अब प्रश्न यह उठता है कि यदि माता मिठाई खिलादे और दूध पिलादे तो क्या उनका मुंह कड़वा होजावेगा और वे दुर्बल होजाएंगे नही नही ऐसा कदापि नही होगा तब भी उनका मुंह मीठा ही होगा और बल भी बढ़ेगा इसी प्रकार यदि कोई धर्मात्मा पुरुष धर्म शिक्षा देगा तो भी श्रोताओं को धर्म का लाभ होगा और यदि कोई धर्मिन (साध्वी) स्त्री धर्म

शिक्षा देगी तो भी श्रोताओं को धर्म का लाभ ही होगा ॥



दूसरे प्रश्न का उत्तर।

दो प्रश्न जो ऊपर कहे गए हैं उनमे से अब दूसरे प्रश्न का उत्तर सुने। परन्तु पहले आप पूर्व लिखित दूसरे प्रश्न को फिर पढ़ जाएं फिर उसका यह उत्तर जो श्री महासती पार्वती जी महाराजने दिया है उस पर विचार करें जो लिखा जाता है:—

हे भाई श्रुतिके अर्थात् मूल सूत्रके आदि अन्त प्रकरणके देखने से अर्थ सिद्ध किया जाता है क्योंकि धर्म शब्दके अनेक अर्थ होते हैं, दुर्गतिमें पड़ते हुए प्राणियोंको धारण करलेने अर्थात् बचा लेनेका नाम धर्म है जो धृञ् धातुसे बनता है जिसकी व्युत्पत्ति धरतीति धर्मः, यह है और धर्म नाम सुकृत आचरण अर्थात् श्रेष्ठ आचारोंका भी है और धर्मनाम स्वभावका भी है जैसाकि अग्निका धर्म जलानेका और जलका धर्म क्लेदन (गलाने) का है इत्यादि, और एक कुलधर्म होता है और एक आत्म धर्म होता है अतः मनुजीने जो स्त्रीके तीन धर्म अर्थात् (१) पतिके सग सती होना (२) पतिकी शय्याका सेवन करना

(३) प्रतिको ही ईश्वर समझना यह कुल धर्म कहे होंगे क्योंकि यदि स्त्रीके उपरोक्त तीन ही धर्म होते तो फिर कुमारी कन्यायें तो अधार्मिन ही रहीं क्योंकि उनके पति तो कोई नियत हुये ही नहीं तो फिर वह ईश्वर किसको समझेंगी अर्थात् जाप किसका करेंगी और सती किसके संग होंगी और शय्या किसकी सेवन करेंगी इत्यर्थः, यदि कुमारी व्रतकरें व दान दें व सत्यवादिनी हों व देव गुरु धर्मकी भक्ताहों और पण्डिता ज्ञानवंतीहों अथवा संतोषवाली हों उनमें से यदि कोई कुमारी ही मर जाय तो क्या उनके उपरोक्त ३ धर्मोंके विना सब धर्म निष्फल माने जाएंगे क्या उसको अधार्मिन ही मर गई समझेंगे, नहीं नहीं कदापि नहीं वह बाल ब्रह्मचारिणी धर्मात्मा मानी जायेंगी और अवश्य स्वर्गमें जायेंगी। इस से सिद्ध हुआ कि स्त्रीको दानका देना तपका करना और शास्त्र पढ़कर आत्म परमात्मका पहचानना और दीक्षा लेना उपदेश करना भी धर्म है और जो आपने इस प्रश्न मे श्रुति लिखी है कि (स्त्रीशूद्रौनाधीयताम्) सो उसका तो इतनाही अर्थ है कि स्त्री और शूद्र न पढ़े परन्तु शास्त्र द्वारा देखने से तो यह अर्थ भी ठीक नहीं है क्योंकि वेदों और

अति शोक !! ऐसे पक्षपाती जनोंकी बुद्धि पर ।

देवहूति को योग का उपदेश ।

सुनाहै कि कार्तिक माहात्म्य में गायत्री जी को ब्रह्माजी की स्त्री और वेदों की माता कहा है और उन्होंने गद्दी पर बैठकर सभामें शिक्षा की है और भागवत के छठे अध्याय में कपिल मुनि ने अपनी माता देवाहूति को योगका उपदेश किया है अब विचारो कि यदि स्त्री को योगका अधिकार न था तो कपिल मुनिने अपनी माता को योग का उपदेश क्यों दिया इत्यादि ।

जैन मत का प्रमाण ।

इसके पश्चात् श्री महासती जी महाराज ने कहा कि जैनसूत्र षष्ठांग ज्ञाता धर्म कथाके अध्याय ८वे में चोखा नामकी परिव्राजिका चार वेद षष्ठांग की ज्ञाता हुईहै जिसने पुरुषोंकी सभामें दानधर्म शौचधर्म का उपदेश किया, ऐसा लिखा है ।

पाठक ! चोखा जैनकी साध्वी न थी परन्तु उसका वर्णन जैनसूत्रों मे इसलिए आयाहै कि उस ने जैन राजकुमारी परम पण्डिता श्रीमती श्री मिल्लीकुमारी जी से चर्चा की थी, इससे स्पष्टतया

सिद्ध हुआ कि अन्य मतोंमें भी स्त्रियां विद्या पढ़ती थीं और दीक्षा भी लेती थीं और पण्डिता होकर स्त्री व पुरुषोंको उपदेश भी देती थीं जव ग्रन्थ कह रहे हैं तो न जाने पण्डित महाराज ने किस प्रकार विना सोचे-समझे अपने ही ग्रन्थों के विरुद्ध ऐसा प्रश्न कर भेजा है। निस्सन्देह हिन्दू जाति के नेता स्वार्थी हो गए है अर्थात् सत्यधर्म के उपदेशको से द्वेष रखना ही इन्हों ने अपना धर्म वना लिया है अर्थात् स्त्री जाति के घोर शत्रु वन गएहैं उन्न के सम्पूर्ण स्वत्व छीन लिए हैं, वेद विद्या का पढ़ना उनके लिए सर्वथा वंद कर दिया है, सम्भवहै इस से उनका यह प्रयोजन हो कि वे पण्डिता और विदुषिआं न वन सके मूर्खा ही रहें और उन की संतान भी मूर्ख रहे ताकि हमारा कोई सेवक बच्चे से बूढे तक सदासत् की परीक्षा करने के योग्य न हो सकें। हमारी ही हां मे हां मिलाते रहें क्योकि माताकी शिक्षा का वालक पर जितना प्रभाव पड़ सकता है उतना किसी दूसरी शिक्षा से नहीं हो सकता इसलिये प्रार्थना है कि यदि अव भी आप अपने आपको देशके हितैषी वनाना चाहतेहो तो स्त्री शिक्षा की त्रुटिको दूर करो क्योकि जव तक

स्त्रिआं योग्य बनकर मातृशिक्षा का प्रभाव अपनी संतान पर न डालेंगी तव तक बालक योग्य न बन सकेंगे और वालक जब तक योग्य न बनेंगे तव तक देशसे मूर्खता दूर न होगी और मूर्खता के दूर हुए विना अपने आत्मिक और व्यावहारिक धर्म का ज्ञान न होगा और धर्म के ज्ञान बिना इस लोक और परलोकके सुखकी प्राप्ति न होगी इत्यर्थः ।

इसलिए आप प्रयत्न करके स्त्रिओं के छीने हुए स्वत्व (अखत्यारात्) उन्हें वापिस दिलवा कर अपने देशको फिर उसी अवस्था पर देखें जो अब से दो सहस्र वर्ष पहले थी ताकि ज्ञान की खड्ग से आप की सब आपत्तियां दूर हों ।

स्त्री का तीर्थंकर होकर उपदेश करना ।

विदेह देश मिथिला नगरी कुंभ राजा इक्ष्वाकु वंशी प्रभावती रानीकी कन्या श्री मिल्ली कुमारी जो महाराज उन्नीसवां तीर्थङ्कर हुई हैं जिन्हों ने छे देशोके छे राजाओंको प्रतिवोध करके योग धारण कियाहै और जिन्होंने सर्वज्ञ होकर राजाओंकी सभा मे दया सत्यादि धर्मका स्वरूप प्रकट कियाहै जिनको

पैंसठ लाख वर्षके लग भग वीत चुके हैं इसका सविस्तर कथन ज्ञाता सूत्रके आठवें अध्ययन मे देख सकते हैं।

श्रीमती राजीमतीजी का सर्वज्ञ होना।

(२) मथुरा नगरी यादव वंश राजा उग्रसेन की कन्या श्रीमती श्री राजीमती जी महाराज ने योग धारण करके श्री रहनेमि जी महाराज जैन मुनिको उपदेश करके उनको धर्ममे दृढ किया और फिर सर्वज्ञा होकर मोक्ष हुई जिनको अनुमान ८६००० वर्ष व्यतीत होचुके हैं, जिसका नीचे संक्षेप से वर्णन किया जाता है—

चिरकाल हुआ कि भारत खंड मे कौशलदेश वनिता (अयोध्या) नगरीमे नाभि राजा मरुदेवी रानीका पुत्र ऋषभदेव भगवान इक्ष्वाकु वंश काश्यप गोत्री जैन धर्मावतार हुए जिनके संसारी अवस्थामें १०० पुत्र थे उनमे से दो पुत्र मुख्य थे एक भरत और दूसरा बाहुबली भरतका पुत्र सूर्य्य जिससे सूर्य्य वंशी राजा होते आए हैं और दूसरेका पुत्र चंद्र जिससे चन्द्रवंश चला है जिसको सोम वंश व हरि वंश भी कहते हैं। बहुत समय के पश्चात् हरिवंशमें एक यदु राजा हुवा है जिससे यादव वंशी कहलाने लगे

इन यादव वंशियोंमें लगभग छियासी सहस्र वर्ष व्यतीत हुए हैं तब द्वारिका नगरी में श्रीकृष्णचन्द्र वासुदेव हुए हैं जिनके पिताके बड़े भाई समुद्र विजय के पुत्र नेमी नाथ बाईसवें जैन धर्मके अवतार हुए हैं जिन्होंके गृहस्थाश्रम में सगाई के लिए मथुरापुरी के राजा उग्रसेनकी कन्या श्रीमती राजीमती मांगी तब राजा उग्रसेनजी ने सहर्ष श्रीमद्भगवान नेमी नाथको सगाई और साथ ही विवाह की लग्न पत्रिका भेज दी । श्रीकृष्ण वासुदेवजी ने श्रीमान् नेमीनाथ जी की बरात सजाई । समुद्र विजय से लेकर वसुदेव तक दशों भाई पांच पाण्डव कृष्ण बलभद्र आदि बहुत से यादव वंशी बरातमें सम्मिलित हुए और बड़ी धूमधामसे जूना गढ़में राजा उग्रसेनके द्वार पर आए, राजा उग्रसेन ने इस विचारसे कि इस बरात में बहुत यादववंशी जिनेन्द्रदेव के मतको मानने वाले हैं और बहुत कर्मकाण्डी अर्थात् क्रिया-वादी हैं और कई अज्ञानवादी नास्तिक हैं और कई निवृत्ति वाले अर्थात् मद मांस के न खाने वाले और कई प्रवृत्ति वाले मांसाहारी भी हैं परन्तु हमने तो सबका सत्कार करना है,इस लिए मृग आदिक पशुओं के बाड़े भी भरवा दिए गये,जिस समय श्रीनेमिनाथ

जी महाराज मोतियों का सेहरा बांधे हुए रथमें सवार होकर परिवार सहित तोरण छूने को आए तो राज महल्लों की स्त्रियां राजीमती की माता भूआ और राजमती की सखि सहेलियां बड़े उत्साह से झरोखों में से देख रही थी और परस्पर ऐसा कहती थीं कि राजमती के कैसे उत्तम भाग्य हैं जो ऐसा शुभ लक्षण गुणी पुरुष पति पाया है और राजमती भी स्नेह भरे हृदय से नेत्रों द्वारा प्रेम प्रकट कर रही थी तथा छिपी आंख से देखती हुई निज पति के रूप और गुणों की मनमें प्रशंसा करने लगीं और नेमिनाथजी के रूप ने राजमतीजी के मन को इस प्रकार अपनी ओर खेंच लिया जैसे सूचि(सूई)को चुम्बक पत्थर । श्रीमती राजीमतीजी उस समय विचारने लगी कि इस सुयोग्य पुरुष को देख कर मुझे ऐसा प्रेम उत्पन्न होता है मानो इस पुरुष से मेरी पहले ही की प्रीति है । बस ऐसे गंभीर विचार से (१) ईहा (२) अपोहा (३) मग्गणा (४) गवेषणा में प्रवेश करती हुई जाति स्मरण ज्ञान को प्राप्त हुई अर्थात् जैसे कोई आवश्यकता पड़ने पर वर्षों की भूली हुई बात स्मरण करनी चाहे तो बड़े विचार से स्मरण कर सकता है क्योंकि वहां

तक मस्तिष्क और मन की शक्ति निर्मलता की सहायता से पहुंच जाए तो स्मरण होजाए अन्यथा नही। इसी प्रकार माति और श्रुति की पहुंच लगजाय तो पिछली जाति अर्थात् पूर्व जन्मकी वातें स्मरण हो जाती हैं इसका नाम जाति स्मरण ज्ञान है इस के अर्थ यह हैं—(१) ईहा—यह पुरुप कही पहले भी देखा है (२) अपोहा—देखा तो है परं कहां और कव देखा (३) मग्गणा—यह किसी पूर्व जन्म में मेरा पति था (४) गवेपणा—हां हां ओहो यह तो मेरा नौ, जन्म से प्रीतम प्यारा है जव यह राजा थे मैं रानी थी जवयहदेवथे मैंदेवीथी कहीं मित्र मित्र थे, इस प्रकार राजीमती जी पूर्व जन्म के ज्ञान होने से नेमि नाथ की अत्यन्त अनुरागिणी हो गई क्यों न हों यथा किसी रस्ते चलने वालेसे थोड़े काल के लिए मित्र भाव हो जाताहै और जव वह कहीं मिल जाताहै तो उसे प्रेम की दृष्टिसे देखाजाता है, यह तो पूर्व ९ जन्मों की प्रीति थी। इसी अन्तर में श्री नेमिनाथ जी को पशुओं के रोने का शब्द कर्ण गोचर हुआ और ग्रीवा ऊंचे को उठाए हुए उन्हें जीवन से निराश हुएहुए देखा तो घवराकर सारथी को पूछा कि हे सारथि! यह जिवन के

अभिलापी पशु पक्षि क्यो रोके गए हे। तव सारथी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, कि आपके विवाह में मांसाहारी राजाओं के भोजन के लिए काम आएंगे तव श्री नेमिनाथ जी महाराज के दयामय हृदय से दया का भाव उभर कर नेत्रो द्वारा टपकने लगा और सारथी से कहा (हा हा अकज्ज) हाय हाय अकार्य्य ! मेरे विवाह के कारण पशुओं का वध होवे ऐसा विवाह कराना मुझ को उचित नहीं यह ले मुकुट और कंगन कड़े और शीघ्र इन पशुओं के वंधन तोड़ और रथ को पीछे मोड़, सारथी ने ऐसा ही किया, तव श्रीकृष्ण चंद्र आदि राजाओ ने रथ को आगे से रोक कर कहा हे कुलचन्द्र ! यह क्या विचारा, अर्धविवाहिता (तेल चढ़ी) को छोड़ कर जाना पुरुप का धर्म नहीं है।- तव श्रीनेमिनाथजी ने कहा कि यह जीव अनादि काल से मोह के फंदे मे फंसा हुआ चौरासी लाख योनिओ मे घूमता चला आया है अव इस फंदे को तोड़ने का अवसर मिला है इसे कदापि न गवांऊंगा। इस वचन को सुनकर एक सहस्र राजकुमार और भी वैराग्य को प्राप्त हुए तव लोकान्तक देवो ने आकाशवाणी से जयकार करके कहा कि आप

धर्मावतार हैं आप गृहस्थाश्रम को त्याग कर योग धारण कर धर्मरूप होकर धर्म का प्रचार करें जिस से बहुत लोक सच्चे मार्ग पर चलकर अपना जीवन सुधार कर भवसागर से तरें तब नेमिनाथ महाराज को अतिशय वैराग हुआ और द्वारिका का राह लिया उससमय नगर निवासी लोग आश्चर्य्यसे कहने लगे कि यह क्या कारण जो यादवों की बरात पीछे लौट गई। तब राजीमतीजी जो प्रमुदित हृदय से नाना प्रकार के अपने प्रिय पति के संबंध में बांधनु बांध रही थीं वह रथ को मुड़ा और कोलाहल को देखकर चकित होकर सखिओं से बोलीं, हे सखि ! यह यादव राय बरात सहित पीछे क्यों लौट गए। तब कञ्चुका दासी ने प्रार्थना की हे स्वामिनी पशुओं की पुकार सुनकर दयालु अपनी दयालुता निभाने के लिये पीछे लौट गए हैं। तब राजीमती जी इस हृदय वेधक वचन को सुनकर असह्य दुःख से मूर्छा खाकर धरणी पर गिर पड़ीं, रंग पीला होगया आंखें पथरा गईं सिरकी चोटी खुल गई चुनरी अलग होगई रत्न जटित चूड़ियां फूट गईं, सखिआं यह अवस्था देखकर व्याकुल होगईं किसी ने राज कन्या का सिर अपनी गोदमें

लेलिया किसी ने नाड़ी हाथ में रखली किसी ने नासाग्र उंगली धरी किसी ने गुलाव छिड़का किसी ने पंखा किया इत्यादि उपायो से सुधि में आई तो कहा हे सखिओ तुम ने मेरे साथ वहुत बुरा वर्ताव किया जो इस मूर्छा से वचा लिया अन्यथा इस मूर्छा में ही इस नश्वर जगत से और पति वियोग के दुःख से सदा के लिये विमुक्त (अलग) होकर सुखी हो जाती, तुम ने यह न विचारा कि यह राजदुलारी कोमलाङ्गी प्रियतम पति के वियोग रूप दुःख के पर्वत को अपने सिर पर आ जीवन कैसे निभाएगी, और देख इस कंचुका दासी ने मेरे जले हुए हृदय पर कैसा लोन मला है, कहती है कि वह दयालु दयालुता के निभाने के लिए चले गए हें । अरी मूढ़ा ! जिसने मेरे हृदय रूपी कुमुदनी को जो सदैव आनन्द के जल में रहने वाली है विरह की दावानल (अग्नि) से जलाकर भस्म कर दिया, क्या इसी का नाम दयालुता है । जिसने मेरे नौ जन्मों के पर्वत समान स्नेह को राई के समान भी न समझा क्या इसी का नाम दयालुता है । जिसने मेरी वज्र समान प्रीति की ज़ंजीर को कच्चे सूतँ की न्याई क्षण मात्र मे तोड़ दिया क्या

इसी का नाम दयालुता है। जिस ने मुझ को पशुओं के समान भी न समझा क्योंकि पशुओं की तो दया की परन्तु मेरी दया न की, क्या इसी का नाम दयालुता है। हा! हा!! श्री नेमिनाथ यादव पति न्यायाम्वोनिधे! मेरे साथ यह अन्याय जो विना अपराध इतना दुःख रूप दण्ड दिया। हाय हाय मैं कुछ भी न जानती थी कि मेरे कर्म मुझे क्या क्या चरित्र दिखलावेंगे। जाओ सखि तुम शीघ्र जाकर नेमिनाथ का रथ रोको और मेरी सब दशा कह सुनाओ और बड़ी नम्रतासे प्रार्थना करो कि आप तो ज्ञानवान हो जानते होंगे कि यह नौ जन्मों की मेरी दासी है फिर विना अपराध मुझ से छल किया इसका क्या कारण है क्या कोई मेरी बुराई सुनी क्या किसी अन्य स्त्री से आपकी प्रीति है वह स्मरण होगई कि मैं तो उसे ही अंगीकार करूंगा अथवा किसी अन्य राजकुमारी ने आप के पास कोई दूती भेजी कि मैं आपके साथ विवाह कराना चाहती हूं इससे विवाह न करना, कुछ तो वताओ जिससे मेरे मन को शान्ति हो। कविओं का कथन है कि दासी नेमिनाथ जी को मिली और सब वृत्तान्त सुनाया तो नेमिनाथ जी

ने तुरन्त उत्तर दिया कि हे भद्रे न तो मैंने श्री राजीमती जी की निन्दा सुनी नाही किसी से मेरी प्रीति है और नांही किसी मांस, हाड, चाम, नस, मेद आदि मल की पुतली (स्त्री) से विवाह कराना चाहता हूं केवल अजर अमर मुक्ति से ही प्रीति है और उसी से विवाह करके उसके परमानन्द के अनुभव करने को संयम के लिये कटिबद्ध हुआ हूं और वर्ष भर दान देकर अवश्य संयम धारण करूंगा। तब दासी कुछ भी कहने को समर्थ न हुई लौटकर राजीमतीजी के पास आई और सब वृत्तान्त सुना दिया। तब श्रीमती राजीमती जी को सखि के मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर संतोष आगया और सखियों के प्रति बोली कि हे सखियो अब मैं किस आशा पर जीवन निभाउंगी, बस उचित यही है कि मैं भी अपना जीवन मुक्ति के साधन में ही लगाऊं। तब राजीमती जी के माता पिता इस बात को सुनकर बोले, हे पुत्रि ! तुमने यह क्या विचार विचारा है क्या हुआ जो नेमिनाथ जी चले गए तेरा विवाह तो उनसे नहीं होगया है, और किसी सुयोग्य राजकुमार से विवाह करदेंगे। तब राजमती जी ने दोनों हाथ अपने दोनों कानों

श्री राजमती जी महाराज साध्वी रहनेमि ऋषिको उपदेश देनेलगींहे रहनेमि राजकुमार? तुमने राज लक्ष्मीको और पचास महल व पचास रानियोंको क्या समझकर त्यागा और आज क्या समझ कर मेरे साथ भोग करना चाहतेहो रहनेमि चुपरहा राजमतीजी फिर कोपमें भर करबोलीं धिक्कारहै तेरी ऐसी बुद्धि पर। यथा सूत्र उत्तराध्ययन अध्ययन २२ वां गाथा ४२,४३।

धिगत्थु तेज्जसो कामी, जोतं जीवीयकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयंते मरणं भवे ॥४२॥
अहंचभोग रायस्स, तंचसि अंधग वण्हिणो।
माकुले गंधरणा होमो, संयमं निहुउंचर ॥४३॥

अर्थ—धिक्कारहै तुझको हे अपयशके कामी जो तुम असंयम जीवतव्यके कारण तथा थोड़े जीवनके कारण वमनकिया हुआ भोग रूपी विष तिसको पुनःपीना चाहताहै इससे तो श्रेष्ठहै तुझको मरणहो अर्थात् त्यक्तवस्तुको फिर अंगीकार करना अर्थात् अपने प्रणको तोड़नेके पापको सिर पर धरना इससेतो मर जाना अच्छाहै ॥ ४२ ॥ अर्थ श्लोक ४३–मैं तो भोजकविष्णु राजाकी पोती और उग्रसेनराजाकी पुत्री हूं और तूं अंधकविष्णु राजा

का पोता और समुद्र विजय राजाका पुत्रहै, ऐसे उत्तम कुलमें जन्म लेकर तुझ और मुझ सरीखे पुरुष व स्त्रियां धर्मसे पतितहोजाएंतो महान् पाप और महा निन्दाका स्थानहै इसलिये न कुल खोटी जातिके सर्पकी न्याई जो अपने छोड़े हुए विषको पीलेताहै ऐसा मतहो और जो अगंधन कुलका सर्प होताहै वह अपने छोड़े हुए विषको नहीं पीता प्रत्युत मरना स्वीकार करताहै। ऐसें आपभी अपने कुल और देव गुरुधर्म शास्त्रकी ओर दृष्टि करके संयममें दृढ़ होकर विचरो। इसका तात्पर्य्य यह है कि उत्तम कुल अर्थात् श्रेष्ठाचार वाले कुलमें जन्मे हुए पुरुष व स्त्रियोंको धर्म करना सुगम होताहै क्योंकि उस घरमें जन्मसेही धर्मकी सब सामग्रियें विद्यमान रहती हैं। यथाश्लोक—

देवजाप गरूपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने ॥१॥

अर्थ—प्रथम परमेश्वरका जाप द्वितीय गुरु की सेवा तृतीय सामायिक और पाठका करना चतुर्थ जीवदया यहां तक कि विना छाने जल भी न पीना यथाशक्तिइन्द्रियोंको विषयोंसे बचाए रखना और अभक्ष्य-आदिका त्याग अर्थात् मांस

मद आदिका सेवन न करना पंचम पर नारी का परित्याग, ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत उपवास रूप तप करना, छठा सुपात्रमें दान देना यह छे धर्म रूप कार्य्य श्रेष्ठ (जैन) (आर्य्य) पुरुषोंको नित्य करने योग्य हैं यदि ऐसे कुलके धर्म न करे अथवा धर्म के स्थानमें कुसंगति करके हिंसा मिथ्या आदि पाप करने लग जाएं अथवा मद मांस आदि भक्षण करने लग जाएं तो उनको किरोड़ धिक्कार भी थोड़ी हैं, और नीच कुल अर्थात् अनार्य्य म्लेच्छ चमार चण्डालादि जिनके जन्मसे पहले ही पाप करनेकी सामग्री विद्यमान रहती हैं अर्थात् मच्छलिआं पकड़नेका जाल बटेरेपकड़नेके पिंजरे मुरग़ी मारनेके चाकु अण्डे मारनेका शूल शराब पीनेकी-बोतलें आदि और झूठ चोरी पिशुनता गाली गलौज यह उनका कर्तव्य है, निर्दयता तो उनकी जन्म घुट्टी है ऐसे पुरुषोंको दया सत्य दान शील आदि धर्म कहां। यदि ऐसे पुरुष सत्संगके प्रतापसे पूर्वोक्त पापोंको छोड़ कर दया आदि धर्म को ग्रहण करलें तो वे कोटि बार धन्यवाद देनेके योग्य हैं। अस्तु राजमतीजीने कहा कि मैं अपने कुल धर्म, आत्म धर्म और सतीत्व धर्म को कदापि नहीं

छोड़ूंगी चाहे प्राण जाएं तो जाएं, तू तो कुछ वस्तुही नहीं है यदि इन्द्र व नल कूबेर जैसे डिगावे तौ भी न डिगूं बस तुम भी ऐसे निर्लज्ज अपावन भोगोंके लिए अपने मनको न डुलाओ ऐसा मन तो मूढ अज्ञानी दुष्ट जनोंका होता है जिनको अपने मन रोकनेकी समझ नही होती जिधर देखा उधरही श्वानकी तरह भागने लगे परन्तु जो विद्वान् धर्मात्मा विचार शील पुरुप होते है वे अपने मनको वशमें रखते है क्योंकि, उनको ज्ञानके वलसे मनको समझाने की विधि आती है, वस वे रह नेमि जी भी तो विद्वान् और धर्मात्मा पुरुप थे इस लिये राजीमती जी के गम्भीर और विचार पर्क वचनों को सुनकर मनको मोड़ा और दृढ़ चित्त होकर वोले, हे साध्वी जी ? आप वड़ी विदुपी पण्डिता और बुद्धिमती हो आप की सुशलिता सरलता गंभीरता आदि गुणो का वर्णन करने को सुर गुरु भी समर्थ नहीं हैं । आप जैसी शास्त्रों को जानने वाली स्त्रियां आप तरें और औरो को तारने वालीं होती है । आपके वचन रूपी अंकुशसे मेरा मनरूपी हस्ति जो संयम रूपी घरसे वाहर निकल गया था वह फिर निज स्थान पर उपस्थित हुआ है। मैं आप

का उपकार कभी नहीं भूलूंगा जो मैंने आप की अविनय की है वह क्षमा करें बस वर्षांके ठहरने पर श्री महासती राजीमती जी महाराज साध्विओं से जा मिलीं और श्री मद्भगवान् नेमिनाथ के दर्शन किये और पश्चात् वहुत काल तक संयम तप अर्थात् दस प्रकार का यति धर्म पालती रहीं यथा—(१) खन्ती (२) मुक्ति (३) अज्जवे (४) मद्दवे (५) लाघवे (६) सच्चे (७) संजमे (८) तवे (९) चियाए (१०) वम्भचर्य बासे।

अर्थ—खन्ती (क्षमा) मुक्ति (निर्लोभता) अज्जवे (सरल हृदय) मद्दवे (कोमल हृदय) लाघवे (अपने आपको लाघव मे रखना (अहङ्कार न करना) सच्चे (मन के सच्चे वचन के सच्चे और कर्म के सच्चे) अर्थात् मन से झूठे विचारों का न करना झूठ वचन का न बोलना और झूठे कर्तव्योंका न करना संजमे (इन्द्रियों को वशमें रखना) तवे (तपस्या करना अर्थात् संतोष करना) चियाए (धन और कामिनी का त्याग और ज्ञान का अभ्यास) वम्भचर्य्य वास (ब्रह्मचर्य्य में अर्थात् यति धर्ममें सर्वदा वास करना) इन धर्मों को पालकर कर्मरहित होकर सर्वज्ञ पद प्राप्त करके मोक्ष हुई। इससे स्पष्ट है कि, जो लोक ऐसा कहते हैं कि,

स्त्री को दीक्षा, व शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है वे लोक सूर्य्यके होते हुए रात कहनेवालेके समान हैं देखो उक्त लेखसे श्री राजीमतीजी साध्वी पण्डिता स्त्रीने किस प्रकार अपना और दूसरेका उद्धार कियाहै।

जैनाचार्य्याबालब्रह्मचारिणीचंदनबालासर्वज्ञ

अंग देश चंपा नगरी दधिवाहन राजा धारिणी रानी की पुत्री श्रीमती चंदनबाला चंद्रमुखी गज गामिनी माता पिता की आज्ञा पालने वाली थी। जब वह आठ वर्षकी हुई तो माता पिताने विचार किया कि यह कन्या पूर्व जन्मके शुभकर्म्मों से इस वंशमें उत्पन्न हुई है। यदि इसको शास्त्र विद्या पढा कर श्रेष्ठ आचार वाली धर्मके योग्य जिससे जन्म सफल हो, ऐसा न किया जाय तो यह पाप हमारे सिर पर होगा। यथा श्लोक—

माता शत्रु ! पिता वैरी, येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये बको यथा ॥

तब राजा ने श्रेष्ठाचारी अध्यापक के पास अध्ययन कराना आरम्भ कर दिया। वह बालिका थोड़ेही वर्षोंमें यथायोग्य अक्षरबोध (प्राकृत, संस्कृत, व्याकरण, भाषा) आदिकमें पढ़कर योग्य पण्डिता हो

गई, वह सुलक्षणी राजवर कन्या जव अनुमान वारह वर्षकी हुई तव कौशाम्वी नगरी का राजा शतानीक जो राजा दधिवाहन का सवधु (सांढु) था उसने परस्पर किसी वैमनस्य (तनाजे) के कारण सेना लेकर दधिवाहन पर आक्रमण कर दिया उस युद्धमें दधिवाहन की पराजय हुई और वह भाग गया। राजा शतानीककी आज्ञासे उसकी सेनाने चम्पापुरीको लूटना आरम्भ किया। तव दधिवाहन की धर्मपत्नी रानी धारणीदेवी जी राजकन्या चन्दन वालां को साथ लेकर एक भूगृह अर्थात् भोरे मे अपने धर्म और प्राणोंकी रक्षाके लिए छुपकर वैठ गई। तव महलोंके लुट जानेके पश्चात् एक सारथी (रथवान) उस भोरे तक आपहुंचा उसको देखकर धारणी रानी कांप उठी और विचार करने लगी यदि धन चला गया तो कदाचित् फिर मिल जावेगा। परन्तु यदि मेरा सतीत्व नाश हो गया तो वह फिर कभी प्राप्त न हो सकेगा। इसलिए रानी ने अपने समग्र आभूषण उसको देने के लिए उतारने आरम्भ किए। तव उस मनुष्यने देखा कि जव तक यह भूषण उतारेगी तव तक सम्भव है कि कोई और मेरा साथी आजावे तव वह रथवान रानी और

राजकन्या की भुजा पकड़ खेंच कर रथ में सवार कराकर भाग निकला। जव वस्तीसे वाहर वहुत दूर निकल गया तो एक ओर का पर्दा उठा कर यूं वोला—मैं कैसा भाग्यवान् हूं जो मुझको धन सम्पत् और रूपवती स्त्री हाथ लग गई। यह शव्द क्या था वज्र था जो रानीजी के शिर पर पात हुआ और वह गम्भीर विचार सागरमें डूव गई, हा! मैं किस वंशकी पुत्री और किस कुलकी वधु हूं हा हन्त! आज यह शव्द मुझे सुनना पड़ा वस उस ने अपने धर्मकी रक्षाके लिए अपने परमप्रिय प्राणों को तुच्छ समझकर आत्मघात करना उचित समझा, तव अपने इष्टदेव को स्मरण करके प्राण प्यारे पति के और राजपाट के और अपने जीवन सर्वस्व एक मात्र कन्याके स्नेहको छोड़ कर ससार से सदा के लिए वियुक्त होना स्वीकार करके अपने नेम धर्म मे जो कोई अज्ञात पाप हो गया हो तो उसकी मिच्छामि दुक्कड़ं (भूल) स्वीकार करती हुई। और सव प्राणि मात्र से क्षमा मांगती हुई अपने मरने का उपाय सोचने लगी। परन्तु वहां कुछ मरनेका साधन न पाकर अपने पैने दांतोसे ही अपनी जिह्वा को काट--डाला। तव रक्त की धारा वह

निकली और ग्रीवा गिराकर तकिएके सहारे जा लगीं। अंजान चंदन बाला जो डरी हुई हिरनीकी न्याई सहमी हुई वैठी थी अपनी माताके मुख से रक्त वहता हुआ देखकर कांप उठी और अपनी माताके गलेसे लगकर उसके मुखपर हाथ रखकर बोली हे मातेश्वरी ? यह क्या दशा है मुखसे रक्त (खून) क्यों वह रहाहै मातासे कुछ उत्तर न मिलने पर देखा तो आंखोंकी पुतली फिर गईहैं। और नाड़ी भी बंदहै तब वह बड़े ज़ोर से रोकर कहने लगी माता ? आपने तो स्वर्गकी यात्रा स्वीकार की परन्तु मुझे किसकें आश्रय पर छोड़ा हे माता ? इस संसार मे तुझसे अन्य मेरा कौनहै, तेरे विना मुझे यह जगत् सूना देख पड़ताहै हाय माता तूने मुझको बुरे समय पर धोखा दिया क्योंकि, पिता मेरा युद्धमें भाग गया नगरी लुट गई अब कहो तुम मुझको किसके हाथ सौंप कर इस अस्थिर जगत् से प्रस्थान कर गईं।

हाय ? माता मैं अब क्या करूंगी किसके भरोसे जीऊंगी इत्यादि, इस विलापको सुनकर वह रथवान् पर्दे के अन्दर मुंह डाल कर देखता है कि, महारानी तकियेके साथ सिर लगाए पड़ी है और मुखसे

रक्त वह रहा है और कोई कोई श्वास शेप हैं और कन्या पास वैठी रो रही है। तव उसने विचारा कि हाय हाय यह पतिव्रता स्त्री मेरे शब्द को न सह सकी इस लिए इसने प्राण त्याग दिए क्यो न त्यागे भला तीतरी तरुशार (तेजी तुपार) अर्थात् असली घोड़ा कोड़ा क्यो सहता है उसने तुरंत उठ कर रानी के भूषण उतार कर उसकी टांग पकड़ कर रथसे वाहर फेंक दी इस विचारसे कि, कोई राज्य कर्मचारी देखले तो चोरी के स्थान में हत्याकी घटना समझे और उस कन्या को धैर्य दिया कि,हे वालिका? तू मत रो तू मुझको पिता समझ मैं तेरा निर्वाह करूंगा तव वह चंदन वाला कि कर्त्तव्य(क्या करसकती थी)विमूढसी होकर अन्तमें संतोप कर गई। रथवान् रथको वेगसे हांकता हुआ कौशाम्वी नगरीमे अपने घरके द्वार पर आ पहुचा, उसकी गृहिणी पहले ही से उसकी वाट जोह रही थी कि, अन्य लोग जो युद्ध में गए थे वे धन लेले कर अपने घरो मे आ रहे हैं मेरा पति भी धन लेकर आवेगा। परन्तु जव उसने रथमें वैठी हुई राजकन्या को देखा तो आग वावूला होकर वोली क्या मेरे लिए सौतन (सौकन) लाया है वस इसको मेरे घर मे मत ला इसको चौराहेकी मंडी

निकली और ग्रीवा गिराकर तकिएके सहारे जा लगीं । अंजान चंदन बाला जो डरी हुई हिरनीकी न्याई सहमी हुई बैठी थी अपनी माताके मुख से रक्त बहता हुआ देखकर कांप उठी और अपनी माताके गलेसे लगकर उसके मुखपर हाथ रखकर बोली हे मातेश्वरी ? यह क्या दशा है मुखसे रक्त (खून) क्यों बह रहाहै मातासे कुछ उत्तर न मिलने पर देखा तो आंखोंकी पुतली फिर गईहैं । और नाड़ी भी बंदहै तब वह बड़े ज़ोर से रोकर कहने लगी माता ? आपने तो स्वर्गकी यात्रा स्वीकार की परन्तु मुझे किसकें आश्रय पर छोड़ा हे माता ? इस संसार में तुझसे अन्य मेरा कौनहै, तेरे बिना मुझे यह जगत् सूना देख पड़ताहै हाय माता तूने मुझको बुरे समय पर धोखा दिया क्योंकि, पिता मेरा युद्ध में भाग गया नगरी लुट गई अब कहो तुम मुझको किसके हाथ सौंप कर इस अस्थिर जगत् से प्रस्थान कर गई ।

हाय ? माता मैं अब क्या करूंगी किसके भरोसे जीऊंगी इत्यादि, इस विलापको सुनकर वह रथवान् पर्दे के अन्दर मुंह डाल कर देखता है कि, महारानी तकियेके साथ सिर लगाए पड़ी है और मुखसे

रक्त बह रहा है और कोई कोई श्वास शेप है और कन्या पास बैठी रो रही है। तब उसने विचारा कि हाय हाय यह पतिव्रता स्त्री मेरे शब्द को न सह सकी इस लिए इसने प्राण त्याग दिए क्यों न त्यागे भला तीतरी तरुथार (तेजी तुपार) अर्थात् असली घोड़ा कोड़ा क्यों सहता है उसने तुरंत उठ कर रानी के भूपण उतार कर उसकी टांग पकड़ कर रथसे बाहर फेंक दी इस विचारसे कि, कोई राज्य कर्मचारी देखले तो चोरी के स्थान मे हत्याकी घटना समझे और उस कन्या को धैर्य दिया कि,हे बालिका ? तू मत रो तू मुझको पिता समझ मै तेरा निर्वाह करूंगा तब वह चंदन बाला किं कर्त्तव्य(क्या करसकती थी)विमूढसी होकर अन्तमें संतोप कर गई। रथवान् रथको वेगसे हांकता हुआ कौशाम्बी नगरीमे अपने घरके द्वार पर आ पहुचा, उसकी गृहिणी पहले ही से उसकी बाट जोह रही थी कि, अन्य लोग जो युद्ध मे गए थे वे धन लेले कर अपने घरो मे आ रहे है मेरा पति भी धन लेकर आवेगा। परन्तु जब उसने रथमें बैठी हुई राजकन्या को देखा तो आग बबूला होकर बोली क्या मेरे लिए सौतन (सौकन) लाया है बस इसको मेरे घर मे मत ला इसको चौराहेकी मंडी

में वेच कर दाम उठा ला नहीं तो सरकार में रिपोर्ट कर दूंगी कि, यह किसीकी कन्याको चुरा लाया है। तव विवश होकर उस रथवान् ने उस अधमरी वाल कन्याको द्वार पर खड़ा कर दिया और रथको ठिकाने लगा कर उसकी वांह पकड़ मंडीमें लेगया और चौकमें खड़ी करके पुकारने लगा कि, यह कन्या विकाऊ है, जिसने लेनी होवे लेलेवे तव सैंकड़ों लोग उसको देखनेके लिए वहां एकत्र हो गए उसका कंचन वर्ण शरीर था । जो शोक और चिन्ताके कारण पीतल समान हो गया था तथापि उसकी वास्तविक सुन्दरता उससे पृथक् नहीं हुई थी (उसका रूप सुन्दरताका उद्वोधकथा उसे देखकर सवलोग लालसा के मारे मोल पूछने लगे परन्तु जव वीस लाख स्वर्ण मुद्रा मोल सुना तो मन मोस कर रह गए इतनेमें नगर नायिका वेश्याको सूचना मिली कि एक नव वयस्का स्वर्ण रूपसी कन्या विकने आई है तव वह नगर नायिका कई वेश्याओंको साथ लेकर वहां पहुंची और उसका रूप देख गद्गद् प्रसन्न हुई । और सोचा कि कोई राजकुमार व सेठ न खरीद ले इस लिये तुरंत ही अपने अनुचरो (आज्ञाकारी नौकरो) को आज्ञा दी कि, तुरन्त २० लाख स्वर्ण मुद्राके तोड़े

ले आओ । यह देख कर चंदन बाला पूछने लगी कि हे माता ? तुम्हारे कुलकी क्या रीति है और मुझे किस लिए मोल लेती हो, तब नगर नायिका बोली कि तू कुछ चिन्ता न कर हमारे नित नए शृंगार नित नए भोग अच्छा खाना अच्छा पहिरना आदिक भोग विलास की सामग्री सब प्रकार की विद्यमान रहती है । इस बातको सुनते ही वह कुलवती चंदन बाला मूर्छा खाकर गिर पड़ी तब रथवान्ने देखा कि मेरी तो आजीविका ही गई शीघ्रही अपनी बांह के सहारे उठा कर उसकी धूलिको अपने वस्त्र से पोंछा और वायु करी जब उसको सुधि आई तो कहने लगी हाय पिता तूने मुझको इस मूर्छामे ही मरने क्यो न दिया, क्यो जिवाया हाय शोक ! मेरा पिता तो युद्ध में भाग गया और माता मेरी जिह्वा काट कर मर गई जिसको मरे पशुके समान जंगल मे फैंक दियागया, जिसके जलानेको लकड़ी भी न मिली और मुझको इस मंडी मे पशु की न्याई बेचा जाता है और खरीदती कौन है वेश्या । ऐसे दुःखमे दुःखी हुई २ मस्तक उठा कर निहारने लगी कि यहां कोई मेरा रक्षक सज्जन भी है परन्तु कहां था, न देस न देसका जाया सब ;

पराया था। तव उसनें दोनों हाथ भूमि पर टेक दिए और वे सुधि आने लगी उसके इस दुःखकी दशाको देख कर धर्म रक्षक दैव भी न सह सके और ऐसा दैवयोग हुआ कि, अचानक एक ओर से वानरों की सेना आगई और वे उन वेश्याओ और दूसरे लोगो की ओर घूर घूर कर टूट पड़े किसीके चीर फाड़ डाले किसीके नाक कान काट डाले तव वे सव लोग भाग गए और नगरमें कोलाहल मच गया कि, न जाने इस कन्यामें क्या जादू है, फिर क्या था कोई मनुष्य डर के कारण उसके पास न फटकता था। उस कौशाम्वी नगरी में एक धनदत्त नाम श्रेष्ठाचारी साहुकार रहता था उसने भी यह बात सुनी तो समझा कि, यह कोई सत्यवती हे चलो उसके दर्शन तो करें उस सेठने वहां जाकर देखातो जान पड़ा कि यह तो कोई राजकन्या है। न जाने इस पर यह विपत्ति क्यों कर पड़ी।

तव साहुकारने कहा हे रथवान्! इसका मोल क्या है? उसने उत्तर दिया वीस लाख स्वर्ण मुद्रा सेठने कहा कि एक लाख दे सकता हूं उस रथवान् ने सोचा कि जाते चोरकी पगड़ी ही सही अतः स्वीकार कर लिया। तव चन्दन वाला उस सेठ

से पूछने लगी कि पिताजी आपका क्या आचार व्यवहार है और मुझको किस लिए ख़रीदते हो ? सेठने उत्तर दिया हे पुत्रि ! मै जेनमतका श्रावक हूं मेरे घरकाव्यापार शाहूकाराहै और आचार मेरा यह है मांसनखाना, मद्यनपीना, चोरी न करना, झूठी साक्षी न देना, पूरा तोलना, पूरा मापना, सर्कारी महसूल न चुराना, किसी प्राणीको जान बूझ कर दुःख न देना, पर धनको मट्टीके समान समझना, और पराई स्त्रीको भगिनीके तुल्य समझना और प्रातःकाल परमात्माका जप करना, गुरुके दर्शन करने, सुपात्र दान करना इत्यादि और मेरे संतान नहीं है इस लिए तुझको पुत्री बनानेके लिए खरीदता हूं, बस फिर क्या था वह चन्दन बाला आनन्द से गद्गद् होगई झट उठ कर सेठ के हाथ की अंगुली पकड़ कर बोली कि चलो पिताजी शीघ्र अपने घरको चले और वह साहुकार एक लाख स्वर्ण मुद्रा उसे देकर उस कन्याको अपने साथ घरमे ले आया और अपने भाई वन्धुओं मे जन्म महोत्सवकी भांति व्यवहार बांटा और उस को विशेष विद्याध्ययन करना और उभयकाल सन्ध्या सामायिकका करना और दान मान आदि

आचारों पर चलाना आरम्भ किया। इस प्रकार छेवर्ष व्यतीत होगए। और वह कन्या अनुमान१८वर्ष की होगई जिसके रूप यौवनकी क्रान्तिसे आंखें चुंधियाने लगीं और उसको उसकी मतई माता (उपमाता) ने वहुतसे कष्ट भी दिये परन्तु चंदन वाला उन कष्टोंकी ओर ध्यान न धरती हुई अपने क्षमा धर्मपर आरूढ़ रही, जव राजा शतानीकको सूचना मिली कि मेरी सालीकी कन्या दधिवाहन राजा की राजकुमारी सेठके घर विकी हुई आई है तव राजाने सेठको कहा कि यह कन्या मेरी है इसका मैं किसी उत्तम वंशके राजकुमारसे विवाह करूंगा, सेठने कहा कि मेरी धर्म पुत्री है इसको किसी अच्छे साहुकारके वणिकपुत्रसे व्याहूंगा, इस प्रकार कुछ चिर परस्पर विवाद होता रहा फिर चंदन वाला से पूछा गया कि तुझको क्या स्वीकार है उस ने उत्तर दिया कि सेठजी मेरे धर्म पिता हैं जिन्होंने मुझको घोर विपत्तिमें आश्रय दिया है और विवाह के विषयमे यह है कि न मै राजकुमारसे विवाह कराऊंगी और न किसी अच्छे साहुकारके वणिक पुत्रसे। जिस समय श्रीमद्भगवान् चौवीसवें तीर्थङ्कर महावीर स्वामीको सर्वज्ञ (केवल) ज्ञान होगा तव

जैन योग धारण करूंगी अर्थात् साध्वी बनूंगी तब राजा और सेठ दोनोंने हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया और उसने ऐसाही किया वह कुमारी चन्दन वाला बालब्रह्मचारिणी परम सुशीला परम पण्डिता साध्वी जी कई साध्विओंके परिवारसेदेश विदेश धर्म उपदेश करती हुई विचरने लगीं। और अनेक पुरुष व स्त्रियोंको धर्मके पोत (जहाज) पर चढ़ा २ कर भवसागरसे पार किया जिनकी ३६००० उच्च वंशों की राजकुमारी तथा सामान्य कुल सेठोंकी पुत्रिये चेली हुईं उस चन्दन वाला साध्वी को ३६००० आर्य्याओंकी प्रवर्तिनी अर्थात् आचार्य्या पद प्राप्त हुआ और फिर वह स्वयं सर्वज्ञ पद प्राप्त करके मोक्ष हुई और चेलियोंमेसे कई एक स्वर्ग और कई मोक्ष हुईं जिनको लगभग २५०० वर्ष हुए हैं इसका वर्णन नाम मात्र सूत्र संवायांगमें और सूत्र कल्प कथामें तथा अन्य कथाओंमें सविस्तर है।



स्त्रीका सभामें निज पतिको उपदेश।

सूत्र उत्तराध्ययन अध्ययन १४वे मे अधिकार है—ईखूकार नगर तिसका ईखूकार नाम राजा तिसघर सुलक्षणी कमलावती नामनी राणी होती

हुई एकदा समय किसी वैरागीके वैराग्यका कथन सुनकर विरक्त भावको प्राप्त होकर अपने पतिको मध्य सभामें उपदेश देने को उपस्थित हुई और कहा कि, अयि राजन् यह संसार असार है इसमें सार एक श्रीजिनधर्म है इसलिये प्रमादको तजकर शीघ्र आत्म कार्य करनेको सावधान होजाइये और मिथ्या पदार्थोंकी प्रीति छोड़ दीजिये—धन रह जायगा खजानेमें, नारि रह जायगी महलोंमें, परिवार खड़ा रह जायगा श्मशान भूमिमें, देह रह जायगी चिखामें, इसलिये जो साथ जाने वाला आत्म ज्ञान है उसकी चिन्ता कीजिये किन्तु इस संसार रूपी उद्यानमें सर्वदा मनुष्य जन्म रूपी अनेक कलियां खिलतीहैं। और अनेक कुमलाकर झड़ जाती हैं तब राजाजी आश्चर्यमें भरकर बोले कि, अयि राणी क्या तुझे कोई रोग उत्पन्न हुआ है अथवा कोई देवयोग हुआ है राणी बोली क्या रोगियों के मेरे जैसे वचन होते हैं मैंतो आपको समझाने और वैराग्य दिलानेके लिये आई हूं राजा–प्रथम तूतो समझदार और वैरागन बनके दिखला फेर मुझकोभी उपदेश करियो राणी–मैं वैरागन बनी तो आपको समझाने आई अन्यथा मेरी क्या

समर्थथी जो इस प्रकार सभामें आकर आपसे वाद विवाद करूं प्रत्युत मैं तो महलोंमेंसे सपथ (कस्म) खाकर आई हूं कि मैं अब संयम धारण किये विना इन महलों में पग न धरूंगी तब राजा को भी वैराग प्राप्त हुआ और खड़े राज को त्याग कर दोनों ने संयम धारण किया राणी ने साध्वीओंकी मंडलीमें और राजाने साधुओंकी मंडलीमें ज्ञान क्रिया सहित विधि पूर्वक साधना करके शरीरी और मानसी दुःखोंसे मोक्ष पाया इत्यर्थः ।

स्त्रीका सभामें शास्त्रार्थ ।

(४) कौशाम्बी नगरीमें राजा सहस्रानीककी पुत्री और राजा शतानीककी भग्नी और राजा उदाइकी भूआ *श्री जयन्तीजी जिसने देवों ऋषियों और मुनिओंकी* सभामें श्री मद्भगवान् महावीर स्वामीजी महाराजसे प्रश्नोत्तर कियेहैं और फिर जैन साध्वी होकर धर्मका प्रचार करके मोक्ष हुई हैं जिसको लगभग २५०० वर्षके हो गए हैं, इसका वर्णन भगवती सूत्र शतक बारहवें उद्देसा दूसरेमें सविस्तार है ।

पाठक ! देखिये श्रीमहासती जी महाराजने जैन सूत्रानुसार भी सिद्धकर दियाहै कि जितना



स्वत्त्व ज्ञान प्राप्त करनेका पुरुषको है उतना ही अविद्याके दूर करनेका स्वत्त्व (अधिकार) स्त्रीको भी प्राप्तहै जब स्त्रियां अरिहन्त (तीर्थकर) सर्वज्ञ तककी पदवी प्राप्तकर चुकीहैं तो फिर यह माननाकि स्त्रीको वेद विद्याके पठन पाठनका अधिकार नहीं है कैसी भूलकी बातहै इसलिये आशाहै कि सज्जन पुरुष स्त्रिओंको विद्याकादान देना कदापि अधर्म न समझेंगे ।



बुद्ध मत की स्त्रियां विद्या में सर्वज्ञ ।

पाठक ! श्री महासती पार्वतीजी महाराजने १९१३ ई० में मुझे बुद्धदेव जी का जीवन चरित्र उर्दू जिसके चतुर्थ भाग में बुद्ध तपस्विनिओं का वर्णन लिखाहै दिखलाया जो आपके ... नीचे लिखा जाता है

बुद्धदेव जी ... चरित्र ... उर्दू भाषामें लाहौरमें ... में ... ई० के पृष्ट ... बुद्ध ... । था ७न

परिवारों में आना जाना और सोसायटी में उनके आदर और सत्कार का वर्णन मालती माधव आदि संस्कृत नाटकों में पाया जाताहै। बुद्ध सन्यासिन अपनी प्रतिभा विद्या और पवित्रता के द्वारा श्रमण की पदवी को प्राप्त कर सकती हैं यहां तक कि वे अरिहन्त होने की अधिकारिणी समझी जाती हैं। क्षिमया आदि वहुत सी बुद्ध सन्यासिनों ने अपनी असाधारण प्रतिभा और विद्वत्ता के कारण बुद्ध मण्डल में वहुत कीर्ति प्राप्त की थी। सूत्र टपक थिरा गाथा और थिरी गाथा नामक दो पुस्तकों के भाष्यमे उनके लेखकाओं के नाम और उनका जीवन वृत्तान्त लिखाहै। इससे प्रतीत होताहै कि वहुत सी स्थविरो तपस्विनिओं ने बुद्धदेव जी के जीवनमें ही थिरी गाथा रची थी इनमे वहुत सी गाथाएं अत्युत्तम हैं और उन के लेखकाओं की अलौकिक प्रतिभा और धर्मभाव का प्रमाण देती हैं कि, यह सब तपस्विनिआं बुद्धधर्म के संबंध में उच्च शिक्षा और उपदेश देतीथीं वहुतसे भिक्षु और भिक्षुकाएं उनका उपदेश सुनने के लिए एकत्र होते और उनको सुनकर मुग्ध हो जाते थे। थिरी भाष्य में सोना नामी एक तपस्विनि का वर्णन है, वह

राजा बिम्भसारके सभा पण्डित की पुत्री थी बुद्ध धर्म में दीक्षा लेनेके पश्चात् वहुत ध्यान धारण और साधना द्वारा उसने अरिहन्त की पदवी प्राप्त की।

पाठक—देखिए बुद्ध मतके ग्रन्थ, उनसे भी यही सिद्ध होताहै कि स्त्रियोंने अरिहन्त तककी पदवीको प्राप्त कियाहै। इसलिए जो श्रुति पण्डित जीने दूसरे प्रश्नमें लिखीथी कि स्त्री शुद्रको दीक्षा ग्रहण और वेदपढ़नेका अधिकार नहीहैं वह भ्रम-दूर होगया औरयहसिद्ध होगयाकिउनको अधिकार है। अव रहा शुद्रोंके विषयमें वह भी सुनिये।

शुद्रोंको वेदका अधिकार।

(१) श्री महासती पार्वती जी महाराजने दूसरे प्रश्नके उत्तरमें शुद्रोंके विषयमें जो कुछ कहा वह नीचे लिखाजाता है पहले तो भागवतके वनाने वाले सूतजी ही शुद्र हुएहैं, सुनाहै कि सूतजीको शौनकादि ऋपिओने कहाहै कि हे सूतजी? कोई ऐसा सूत्र सुनाओ जिससे सुरती अर्थात् मनोवृत्ति ईश्वरकी भक्तिमें लीन होजाए, तव सूतजीने उत्तर दिया कि हे शौनकजी! मैं तो शूद्रहूं मुझसेक्या सूत्र सुनोगे, तव ऋपिओने कहाकि हे महात्मा? धर्म

नीतिमें तो वर्णकी कोई प्रधानता नहीं होती ज्ञानकी प्रधनाता होतीहै। तब सूतजी ने भागवत का उपदेश किया।

वाल्मीक मुनि।

(२) फिर श्री महासती जी महाराज ने कहा कि वाल्मीक मुनि इतर अर्थात् नीच जाति के हुए हैं। सुना है कि, महाभारत इतिहास के शान्ति पर्व में जहां ऋपिओं का अधिकार है वहां यह श्लोक लिखे है।

चाण्डाली गर्भ सम्भूतो वाल्मीको महामुनिः।
क्रियायां ब्राह्मणो जातः तस्माज्जातिरकारणम्॥

अर्थात्—वाल्मीकि मुनि चण्डाली के गर्भ से उत्पन्न हुए परन्तु क्रिया उनकी ब्राह्मण वृत्ति को पहुंचती थी इस लिये जाति धर्म का कारण नही है क्रिया ही धर्म का कारण है।

(३) वेदव्यास जी माच्छिनी अर्थात् मल्लाहिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए है।

श्लोक—कैवर्ती गर्भसम्भूतो व्यासो नाम महामुनिः।
क्रियायां ब्राह्मणो जातःतस्माज्जातिरकारणम्॥

अर्थ—वेद व्यास जी कैवर्ती अर्थात् जलमें

रहने वाली (मल्लाहिनी) के गर्भ से उत्पन्न हुए क्रिया के विषय में वह ब्राह्मण पद को पहुंचे इस लिए धर्म में जाति का काम नहीं है इत्यादि ।

किसी पण्डित ने यह भी कहा है—

शूद्रोऽपि शील सम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो मतः।
ब्राह्मणोऽपि क्रिया हीनः शूद्रादधर्मी भवेत् ॥

अर्थ—जो शूद्रशील अर्थात् दया सत्य आदिक से संस्कृत हो उसको गुणवान ब्राह्मण माना है यदि ब्राह्मण क्रिया हीन हो वह शूद्रसे भी बढ़कर अधर्मी होता है अर्थात् उसको शूद्र कहना चाहिये ।

देखिए एक और पण्डितजी क्या कहते हैं—

शीलं प्रधानं न कुलं प्रधानं कुलेन किं शील विवर्जितेन । वहवो नराः नीच कुले प्रसूताः स्वर्गं गताः शीलमुपेत्य धीराः ॥

अर्थ—शील अर्थात् श्रेष्ठाचार ही प्रधान है, कुल की प्रधानता नहीं, अच्छे कुल अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय आदि द्विज कुलमें जन्म लेनेसे क्या सिद्धि है जोशीलसेरहित है । वहुत नर नीच कुलमें उत्पन्न हुए हुए श्रेष्ठाचार को पालन करके धैर्य्यवान स्वर्ग को गए हैं इत्यादि ।

जैनमतके सूत्रोंमें भी ऐसा भाव पाया जाता

है, यथा-(श्वेताम्बर मतका सूत्र उत्तराध्ययन अध्ययन १२वां गाथा ३७वीं)।

सक्खंखू दीसई तवो विशेषो।
नदीसई जाईविशेषकोई॥

अर्थ—साक्षात् दीखता है तपका विशेष अर्थात् प्रभाव नहीं दीखता जाति का विशेष कोई अर्थात् मुक्तिके विषयमें जाति की प्रधानता नहीं है इत्यादि।

ऐसे ही दिगम्बर मतके तत्त्वार्थ नामक ग्रन्थ के २८वे श्लोक में कथन है।

सम्यग् दर्शन सम्पन्न मपि मातङ्ग देह जम्।
देवादिवं विदुभस्म गूढ़ाङ्गारान्तरौजसम्॥

अर्थः—जो तत्त्ववेत्ता पुरुष हो अपितु जिस की देह चेद् यदि चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुई हो तथापि आत्मा का गुण आत्मा मे रहेगा अर्थात् ज्ञान दर्शन चरित्रादि गुणोंसे मोक्ष होगा यथा भस्ममें दवा हुआ अङ्गाराग्नि अग्निके स्वभाव से न्यारा न होगा इत्यादि।



हिज़ हाईनैस महाराजा साहब बहादुर नाभा की सम्मति और आपका उपकार।

जब श्री महासती पार्वतीजी महाराजने इन

दोनों प्रश्नों का न्याय पूर्वक उत्तर देकर निश्चय करा दिया, और जो पंडित प्रश्नों को लाए थे उन्होंने वे लिख लिये और वे उत्तर महाराज नाभा नरेशके सम्मुख उपस्थित हो कर पण्डित जीको सुना दिए जब महाराजने इन उत्तरोंको सुना तो अत्यन्त प्रसन्न हुए और पण्डितोंको कुपित होकर कहा कि तुम कैसे मिथ्या प्रश्न करते हो देखो तुम्हारेही ग्रन्थोंसे तुम्हारे प्रश्न मिथ्या सिद्ध होगए हैं। अस्तु हिज़ हाइनैस बहादुरने लाला बख्शी राम मालेरिया श्रावकको यह कहला भेजा कि माईजी श्रीमती पार्वतीजी महाराजसे विनय करदो कि एक विशाल भवन उनके लिए हम देंगे जिस में आप ठहर कर स्त्रियोंको शिक्षा दिया करेंगी, इस पर लाला बख्शी राम श्रावकने श्री महासती पार्वती जी महाराजके चरणों में उपस्थित होकर प्रार्थना की, कि श्री महाराज नाभा नरेश आप को राजकीय भवन देनेके लिए कहते हैं इसका हम क्या उत्तर दें तब आपने कहा कि हे भाई! क्या आप नहीं जानते हैं कि हम जैनके साधु व साध्वी लोग एक स्थान पर एक मकान अपना बना कर नहीं ठहरते हैं क्योंकि हमारे जैन सूत्रों

का नियम है कि गांव गांवमें विधि पूर्वक विचर कर धर्म उपदेश करते रहना किसी मकानका लोभ न करना अर्थात् डेरा बना कर एक स्थान पर न रहना इसलिये हम कोई मकानादि द्रव्य नहीं लेंगी जब लाला बख्शी रामने महाराजको श्रीमहासती जीकी ओरसे यह उत्तर सुनाया तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और जैन मुनियों की निर्लोभता की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार आप अपने उपदेशों के प्रकाशसे सत्यासत्यकी परिक्षा दिलाती हुई वहां से विहार करके मालेर कोटला लुधियाना जालन्धर होती हुई हुशयारपुर पधारी और वहांके श्रावक और श्राविकाओंकी धर्म रुचि देख कर सं० १९४५ का चतुर्मासा वहां का ही स्वीकार किया।

सं० १९४५ वि० का चातुर्मास्य हुश्यारपुर में

श्री महासती पार्वती जी महाराजका चतुर्मासा सं० १९४५ का हुश्यारपुरमे चौथी वार हुआ वहांके श्रावक श्राविकाओंने धर्म ध्यानका यथाशक्ति अच्छा उद्यम किया और चतुर्मासेकी समाप्तिपर आप विहार करके ग्राओं ग्राओं नगर नगरमें दया क्षमादि धर्म रूप अमृतकी वर्षा करती हुई अमृतसरमे विराजीं

दूसरा दर्शनावरणी कर्म।

यह कर्म चेतन का निश्चय अर्थात् यथावत पदार्थका रूप जो चेतनकी पवित्रतामें प्रकाश होता है उसको आच्छादन करता है अर्थात् ढकताहै जिससे यथार्थ पदार्थ पर श्रद्धा (निश्चय) होने नहीं पाती।

तीसरा वेदनी कर्म।

आपने तीसरे कर्मका नाम वेदनी कर्म बतलाया और कहा कि इस संसारमें प्राणि मात्रको शुभ अशुभ कर्मोके फल कड़वे और मीठे यह कर्म चखाता है अर्थात् सुकृतके फल मीठे अर्थात् सुख और दुष्कृतके फल कड़वे अर्थात् दुःख दिखलाता है।

चौथा मोहिनी कर्म।

आपने चौथे कर्मका नाम मोहिनी कर्म बतलाया और कहा कि यह मोह चेतनके आनन्दमें और समदृष्टमें विघ्न पहुंचाता है जैसे सरोवर का जल टिका हुआ होताहै परन्तु उसमें वायुका संचार होनेसे नाना प्रकारके तरंग उठने लगजाते हैं जिससे जलका स्थिरभाव नहीं रह सकता इसी प्रकार चेतनके आत्मिक आनंद स्थिति भावमें मोह कर्म रूप वायु का संचार होनेसे तरह तरह की प्रकृतियां बदलती

रहतीहै अर्थात् कभी काममे कामी, कभी क्रोधमें क्रोधी कभी लोभमें लोभी, कभी अहंकारमें अहंकारी, कभी हंसीमें, कभी हर्षमे, कभी विषादमें, कभी रोनेमें, कभी भयमें, कभी शोकमें, कभी किसी पदार्थसे रागमें आकर स्नेह का करना, कभी किसी पदार्थसे द्वेषमें आकर घृणा करना इत्यादि प्रकृतियोके वदलनेसे चेतनका आत्मा नन्द स्वभाव विगड़ जाता है अर्थात् अपनी वास्तविक स्थिति को भूल कर जिस अवस्थामें हो उसी प्रकारकी अवस्थामे हो जाता है जैसे किसी पुरुषने मद्य पान किया हो उसके मदमें वह पुरुष अपनी वास्तविक स्थिति को भूल कर कभी हंसता है कभी रोता है कभी सुख मानता हुआ सुखी होता है और कभी दुःख मानता हुआ दुःखी होता है इत्यादि, इसलिए इस मोहिनी कर्मको जीतना सवसे कठिन है।

पांचवां आउषा कर्म।

पांचवे कर्म का नाम आउषा कर्म है जो चेतन को देह के साथ सम्वन्ध रखने के लिये काल के वांधने वाला है जैसे जव तक कैदी कैद की अवधि को न भोग लेवे तव तक कारावास से छुटकारा नहीं पासकता, इसी प्रकार आउषा कर्म के अनुसार

जितनी आयु जीव बांध कर लाया है निश्चयनयेक
अपेक्षा उसमें से न्यून व अधिक करने की अर्था
एक क्षण भर के लिये इस देह में रखने की कोई
समर्थ नहीं रखता है इत्यर्थः।

छठा नाम कर्म।

छठे कर्म का नाम "नाम कर्म" है जो चेत
के तरह तरह के भले व बुरे नाम पैदा करने
उपादान कारण है अर्थात् जीवात्मा को कभी नर
में नारकी कभी तिर्य्यञ्च में एकेन्द्रिय शाक प
आदि, द्वीन्द्रिय अर्थात् कृमि आदि, त्रीन्द्रिय च्यूं
आदि, चतुरेन्द्रिय मक्खी मच्छर आदि, पंचेन्द्रिय ज
चर मत्स्यादि, स्थलचर गौ भैंस आदि, और नभ
शुक कपोत आदि, कभी मनुष्य गति में स्त्री, पु
क्लीव, स्वरूप, कुरूप, अच्छी चाल, बुरी चाल,
बुरा, राजा, रंक, साधु, चोर इत्यादि कभी स्वर्ग में
देवता, इन्द्र, इन्द्राणी आदि कहलाता है
नाम कर्म के ही फल हैं। इत्यर्थः।

सातवां गोत्र कर्म।

सातवां गोत्र कर्म—यह कर्म
चेतन को ऊंच नीच पद दिलाता है,

के उदय से आर्य उत्तम गोत्री क्षत्रिय इक्ष्वाकु वंशी, सूर्य्यवंशी, चन्द्रवंशी, काश्यप गोत्री, वसिष्ठ गोत्री, तीर्थंकर चक्रवर्ति, बलदेव, वासुदेव, पण्डित, तपस्वी, शूर, इत्यादि उच्चपद प्राप्त कराता है और कभी अशुभ कर्म के उदय से अनार्य चण्डाल, चमार, खटीक, झींवर, म्लेच्छ, दूत, वधिक, पांमर आदि नीच पद प्राप्त कराता है इत्यर्थः ।

आठवां अन्तराय कर्म ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज ने आठवें कर्म का नाम अन्तराय कर्म बतलाया, जिसका काम जीवात्मा की शक्ति अर्थात् पुरुषार्थ को रोकना है अर्थात् यह कर्म चेतन को अनन्तवीर्य्य के होते हुए भी निर्बल अवस्था को प्राप्त करादेता है अर्थात् प्राणी किसी प्रकार का पुरुषार्थ विशेष प्रगट नहीं कर सकते, जैसे कई मनुष्य चाहते हैं कि हम सुपात्र दानदें परन्तु दान देने की सामर्थ्य होने पर भी अर्थात् आर्य्य और धनाढ्य होने पर भी देश काल और सुपात्र के न मिलने से दान नहीं देसकते, और कई लोग चाहते हैं कि, हम इतना धन कमाएं, कि, लाखपति करोड़पति होजाएं परन्तु उद्यम के करते हुए भी कंगाल ही रहते हैं, अथवा दीवाले निकल जाते हैं, कई लोग चाहते हैं कि हम अ

खायें पहनें और भोग विलास करें परन्तु पदार्थ पास होने पर भी रोग आदि के कारण से भोग नहीं कर सकते और कई लोग चाहते हैं कि हम युद्ध में अपने शत्रुओं पर विजय पाकर यश लेवें परन्तु जय नहीं पाते और कई यह चाहते हैं, कि हम संन्यासी (साधु) होकर शास्त्र विद्या पढ़ें और देश विदेश घूम कर धर्मोपकार करें और तपस्या करके कर्म क्षय करें परन्तु कई निर्बल होनेसे अथवा रोगी होनेसे अथवा निस्सहाय होने से व माता पिता स्त्री पुत्र मित्र आदि की बाधासे पूर्वोक्त कार्य नहीं करसकते यह अन्तराय कर्म के फल हैं।

कर्मों से रहित होने का सार।

श्रीमहासती पार्वती जी महाराजने कहा कि यदि ज्ञानावरणी कर्म, दर्शनावरणी कर्म, मोहनी कर्म, अन्तराय कर्म यह चारों कर्म तप संयम के साधनों से क्षय किए जावें तो इस चेतन के चार गुण प्रगट होजाते है जो नीचे लिखे जाते हैं—

(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त आनन्द, (४) अनन्त वीर्य्य, (शक्ति), जिससे वह चेतन सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग (आनन्दरूप)

अनन्त शक्तिमान् कहलाता है जिसको जीवन मुक्त भी कहते हैं, शेप चार कर्म भी देह के त्याग अर्थात् निर्वाणकाल में क्षय होजाते है उस समय उस शुद्ध चेतन को वंद्ध मुक्त (विदेह आत्मा) कहते हैं अर्थात् सूक्ष्म शरीर (अन्तःकरण) और साथ ही सर्व कर्मो से मोक्ष होजाता है फिर चार गुण और प्रगट होजाते है अर्थात् सच्चिदानन्द, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त इस पद को प्राप्त होजाता है इसलिए जैनशास्त्रों मे परमेश्वर के उत्कृष्ट अष्ट गुण कहे हैं जो निम्न लिखित है—

(१) सर्वज्ञ, (२) सर्व दर्शी, (३) निर्वाध अर्थात् अरुय्य (वाह्याभ्यंतर रोग रहित), (४) सर्वानन्दरूप, (५) अचल, (६)अमूर्ति, (७)अयोनि, (८) अनन्त शक्तिमान्,अर्थात् ज्ञानावरणी कर्मके न होनेसे सर्वज्ञ, दर्शनावरणी कर्मके न होनेसे सर्वदर्शी,वेदनी कर्मके न होनेसे निर्वाध,मोहनी कर्मके न होनेसे सर्वानन्दरूप, आउपा कर्मके न होनेसे अचल, नाम कर्मके न होने से अमूर्ति,गोत्र कर्मके न होनेसे अयोनि, और अन्तराय कर्मके न होने से अनन्त शक्तिमान् इन पूर्वोक्त अष्ट कर्मो की १४८ प्रकृतियां उनकी स्थिति और उनका अनुभाग अर्थात् रस और उनके वंधन आदिका जैनसूत्रो मे वहुत विस्तारसे वर्णन है मैने तो यहां

मन भी स्वभावतः नीचे को पूर्वोक्त अशुभ संकल्पों (नीच कर्मों)की ओर जाता है, और जिस प्रकार नल के और कला आदिक के प्रयोग से जल ऊपर को चढ़ता है इसी प्रकार सत्संग, ज्ञान, वैराग, त्यागादि के प्रयोग से मन भी ऊपर को शुभ विचारों में चढ़ता है इत्यर्थः इस लिये आपने यह भी बतलाया कि विद्वानों ने तीन अंकुश भी कहे हैं जो निम्न लिखित हैं—

(१) बड़ों का अंकुश, (२) लज्जा का अंकुश, (३) ज्ञान का अंकुश, जो कर्म काया से किये जाते हैं उनके रोकने के लिये राजा आदिक अथवा गुरु आदिक बड़ों का ही अंकुश होता है और वचन के कर्मों को रोकने के लिये पंचआदिक वा भाईयों की लज्जा का अंकुश होता है, परन्तु मनके कर्मों को रोकने के लिए केवल (एक) ज्ञान का ही अंकुश होता हैं। यथा—कोई मनुष्य किसी ऐसे एकान्त स्थान पर कुछ हिंसा व मिथ्या व व्यभिचार आदि कुकर्म करता हो,जहां पर उसको किसी राजा व किसी और बड़े बूढ़े के दण्ड का भय न हो और ना ही पंचो की लाज हो तो वहां उसको किस का अंकुश काम देसकता है अर्थात् उसके मनमे किस अंकुश

का भय हो जो वह ऐसे स्थान पर कुकर्मसे बच सकता है, इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि ज्ञान ही का अंकुश काम दे सकता है अर्थात् किसीने आध्यात्मिक शिक्षा (ज्ञान वैराग्य की शिक्षा) प्राप्त की हो और उसका बीज उसके हृदय पर जम चुका हो तो वही पुरुष ऐसे एकान्त स्थान पर खोटे कर्मसे अपने आपको बचा सकता है क्योंकि ज्ञानके सुनने व सीखने वालोंके बिना और कौन जान सकता है कि इस लोक व परलोक मे शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है जैसे कोई मनुष्य राजा व माता पितादि से छुप कर विष खाए तो वह विष उसीको मारता है राजा आदिकको नहीं इस लिये यह ज्ञानका अंकुश लोक और परलोक के सर्व कार्यों के सुधारने वाला है यथा दोहा—

अंकुश बिन बिगड़े सभी कुशिष्य कुपुत्र कुनार।
अंकुश कर सुधरे सभी सुशिष्य सुपुत्र सुनार॥

किसी कविने और भी कहा है—

परमेश्वर परलोक का, निश्चय नही जिस चित्त।
गुह्य देश मे पापसो, कबहुन बचतो मित्त॥

इस पर श्रीमहासती पार्वती जी महाराजने

एक बड़ा प्रभावशाली दृष्टांतरूप व्याख्यान भी दीया जो नीचे लिखा जाता है—

(परलोक के मानने में लाभ)

यथा एक सुन्दरपुर नगरमें धनदत्त नामक श्रेष्ठी निवास करता था जिसके कुलमें पूर्वजोंसे जैन धर्म के नियमानुसार वर्ताव था, यथा देव अरिहन्त, गुरु निग्रन्थ, जिन भाषित दया सत्यादि धर्म और गणधर कृतशास्त्र इन पर निश्चय यह तो उनका मन्तव्य था और कर्तव्य यह था कि, सात कुव्यसनों का तो अवश्य ही त्याग होता है यदि बन पड़े और सन्तोष हो तो रात्री भोजन का परित्याग, कन्दमूल का परित्याग, बिनाछाने जलपीने का त्याग, और प्रातःकाल सामायिक और पाठका करना, साधु दर्शन, शास्त्र श्रवण, सुपात्र को दान, बड़ों की विनय, भ्राताओं से प्रेम गरीबों पर दया, किसी को गाली तक का न देना, नीति से व्यवहार का करना इत्यादि यथा—

श्लोक—स्वर्गस्थितानां महाजीवलोके,
चत्वारि चिन्हानि वसन्तिदेहे ।
दानः प्रसंगी मधुरा च वाणी,
देवस्य जापं गुरुवन्दनञ्च ॥

अर्थ—स्वर्ग के जाने वालों में चार लक्षण रहते है, दान देना, मीठी वाणी, परमेश्वर का जप और गुरुजनोंकी वन्दना इत्यादि, जिसके चार कुमार थे तीन तो सदाचारी थे परन्तु चौथे कर्मदत्त कुमार को कुसङ्गत के प्रभावसे जूआ खेलने का अभ्यास पड़ गया कभी जीत गया तो छाती निकाल कर चलने लग गया कभी हार गया तो घर के भाजन भी उठाके लेगया जब माता पितादि घरकी रखवाली करने लगे तो पत्नी के भूषण वस्त्रों पर बस चला किं बहुना कुटुम्ब से निरादृत (निरादर) होगया तो फिर निर्वाह होना दुष्कर होगया, तब धन बिना जुहारिये भी द्युतस्थान (जूएखाने) में नहीं बैठाते यह प्रकृति का स्वभाव है कि, जूएबाज अकसर चोरी की ओरही झुकते हैं। अतः एकदा समय एक श्रेष्ठि के घर चौथे विवाहमे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई थी जब वह बड़े उत्साह से बहुत द्रव्य व्यय (खर्च) करके बड़े प्रेम प्यार से पलकर वर्ष दिनका हुआ जिसकी वर्ष गांठ (सालगिरह) के महोत्सव पर उसे रत्न जड़ित, लाख रुपये के कङ्कन (कड़े) पहराकर पालकदास की गोदमें देकर दुकान पर भेजा, पथ मे बाज़ार के चौकमें नाटक होरहा था वह पालक देखने में

निमग्न हुआ तव वह धनदत्त श्रेष्ठिपुत्र कर्मदत्त जुआरिया धनार्थी उस वालक को पालक की गोद में से लेताही वस्त्र से ढककर भीड़ में होकर भाग गया और नगर से वाहर दूर निर्जन स्थान एकान्त पहुंच कर उस मोहिनी मूर्ति सुकुमार बालक को भूमि पर रख दीया, वह वालक भय करके क्षुभित हृदय हिचकियें लेले कर उसका मुख देख देख रोने लगा, तव उस जुआरिये ने उसके सम्पूर्ण भूषण उतार कर अपनी कमर के फेंट में वान्ध लिये और खोज मिटाने के लिये उस वालक के गले में अङ्गुष्ठ देने लगा, तव विचार आया कि, कोई गोपाल (गवाला) व गडरिया (भेड़ चराने वाला) इस जंगल में देखता न हो जो चोरी के वदले खून के अपराध में फंस जाऊं। फिर सोचा कि यदि गोपाल आदि देखभी लेंगे तो क्या करलेंगे। खवर देदेंगे व काम पड़े गवाही देदेंगे जिनकी मुझे शङ्का हुई, परन्तु अरे मूढ़मन क्या तैने गुरु महाराज से सुना नहीं है कि सिद्ध,वुद्ध,मुक्त,परमात्मा,परमेश्वर,सर्वज्ञ,सर्वदर्शी, अन्तर्यामी अर्थात् जो मनकी उत्पत्ति को भी जानता है (सवकी मनकी वृत्ति को) जान रहा है, कर्तव्य का तो क्या, शङ्का

करनी चाहिये हा ? हा ?? मुझे ऐसा करना योग्य नहीं अस्तु बालक की ग्रीवापर से हाथ उठा लिया वह सुकोमल गुलाब के फूल के समान बालक धूली में पड़ा हटकोरे ले रहा है, फिर जुआरी विचारने लगा कि, परमेश्वर निस्सन्देह सर्वज्ञ अन्तर्यामी है परन्तु बालक के मारते वकत न तो मेरा हाथ पकड़ा कि, इसे न मार और नाहीं कुच्छ हा हत कही और नाही परमेश्वर ने मुकद्दमा चलने पर गवाही देनी है कि हां इसने मेरे सम्मुख बालक मारा है; तो फिर परमेश्वर का क्या भय करना है, हां लज्जा तो करनी चाहिए क्योंकि, लज्जा तो बालक की व निर्धन (कगाल) की भी आजाती है कि, मैं इसके देखते हुए कुकर्म कैसे करूं, और परमेश्वर तो सर्वोपरि प्रधान है। उसके देखते कुकर्म कैसे किया जाय। फिर इधर उधर देख कर मनमे आई कि इसको मारही डालता हूं किस २ बातकी सर्वज्ञ से लाज की जा सकती है, और सर्वज्ञ के तो न राग है न द्वेष है अर्थात् (कोई भला करो कोई बुरा करो) भले पर राग नहीं बुरे पर द्वेष नहीं इसी कारण परमेश्वर कर्म कर्ता नहीं है, फिर सोचा कि अरे मन ? भले बुरे कर्मों का फल तो अपने आपको

ही अवश्य मेव भोगना पड़ेगा प्रथम तो इसी भव (इसी जन्म में) इस देह में रोग दण्ड शोक दण्ड वियोग दण्ड राज दण्डादि से भोगना पड़ेगा कदाचित् किसी कारण से इस लोक में न भी भोगा जाय तो परलोक में नरक तिर्यक् मनुष्य दीन दुःखी दरिद्री रोगी सोगी परवशी आदि से अवश्य ही भोगना पड़ेगा यथा श्लोक—

कृत कर्म क्षयो नास्ति, कल्पकोटि शतै रपि ।
अवश्य मेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभा शुभम् ॥

हा ! हा !! यह मेरे कुकर्म (मनुष्यघात १ वालघात २ निरपराधी को मारना ३ और इसके माता पिताकी आन्तोको दाघ करना ४) (इन का फल मैं कैसे भोगूंगा हा ! हा !! मैं तो इसे नही मारूंगा, उनके घरके द्वार पर इसे रख कर कहीं चला जाऊंगा। इतने में पीछे वालक के न मिलनेसे पालकने घर जाकर पुकार करी कि, भीड़के बीचमें से कोई ठग कुमारको मेरी गोदमें से खैंच कर ले भागा, इतनी सुनतेही सर्व कुटुम्बी जन व्याकुल होकर चहुंदिशि दौड़े और राज सभामें जापुकारे, राजाने भी अपने नगर रक्षक (कोतवाल) को बुलाकर प्रचण्ड आज्ञा करदी

कि, अपने कर्मचारियोंको साथ लेकर शीघ्र वन वसतीसे खोज निकाल कर आज्ञा मोड़ो अन्यथा जो चोरको दण्ड सोई तुझको होगा अस्तु फिर क्या था राजकीय लोग और साथही जिनदत्त सेठ और सेठके चाकर नगरसे बाहर खोज निकालते २ उसी एकान्त प्रछन्नस्थान पर जा पहुंचे जहां वह कर्मदत्त जुआरिया कुछ सोच रहा था वस उस बालकको भूमि पर पड़ा देखतेही कोतवालने तो उस ठगको कड़ी लगा कर दृढ बन्धनसे बांध लिया, और बालकके पिताने उस भयभीत धूली भरे बच्चेको शीघ्रतासे उठा कर अपने हृदयसे लगा लिया, और उसे मुरझाया हुआ रोनेकी भी शक्तिसे हीन देख कर दासको आज्ञा दी कि शीघ्र वस्तीमे जा जहां से दूध मिले लेकर हमको पथमे ही आमिल ऐसा न हो कि कदी का भूखा प्यासा मेरा लाल ..... अस्तु चाकर तो आज्ञाके साथही मुठ्ठिएं बांध कर पवनवेग होगया नगरसे बाहरही एक गुज्जर महिष वालेके घरसेही एक पात्रमें दुग्ध लेकर पीछे सेठ जीको शीघ्रही आमिला और सेठजीने गोद वाले हाथमे भाजनको ग्रहण किया और दूसरे हाथकी अंगुलिये दूधसे भरभरकर बालकके मुखमे डालते

हुए कोतवालके साथ राज सभा में पहुंचे, राजाने सादर सब वृत्तान्त पूछकर उस अपराधीके सम्मुख होकर कहा अरे दुष्ट तू चोर है और यह अपराध तैंनेही किया, अपराधी बोला हे स्वामिन्! मैं चोर नहीं चोर का भाई नही चोर मेरी जाति नही मै तो इसी नगरका निवासी धनदत्त नाम सेठका पुत्र कर्मदत्त हूं परन्तु यह अपराध मैंने अवश्य किया है—

राजा—क्यों?

अपराधी—कुसंगके कारण जूएका अभ्यास होनेसे धनके लिये।

राजा—बालकके विषयमें तेरा क्या विचार था?

अपराधी—भूषण उतारे पीछे बालक को मारकर भूमिमें गाड़ देनेका था परन्तु मारा नही।

राजा—मारनेका विचार क्यों था, और न मारने का कारण क्या था।

अपराधी—मारना था खोज मिटानेके लिये और नहीं मारनेका कारण प्रथम तो यह था कि, कोई देखता न हो जो खूनके मुकद्दमे में फंस जाऊं, दूसरे यह सोचा कि, कोई देखे न देखे परन्तु परमेश्वर तो सर्व दर्शी देख रहा है फिर

सोचा कि, परमेश्वर जानता है और देखता भी है परन्तु मुझे कुकर्म करते न हटाता है और न हां हत करता है नाही काम पड़े साक्षी (गवाही) देगा कि, हां मेरे सम्मुख मारा है तो फिर मार ही क्यों न दूं, फिर ध्यान मे आया कि परमेश्वर कुछ कहो न कहो साक्षी दो न दो परन्तु कर्मा के फल तो कर्मों के करने वाले को ही भोगने पड़ेगे, प्रथम तो इसी लोक में अन्यथा परलोक मे तो अवश्यमेव भोगने पड़ेंगे इस कारण मे इस वालक को इसके घर पर ही छोड़ दूं इतने मे आप के कर्मचारियो के हाथ आप के दर्शन मिले, जो कुछ था सो मैने तो सच सच कह सुनाया अव आपके अधीन है इच्छा हो मारे इच्छा हो छोड़दे । तव राजा साहिव सभासदों की ओर दृष्टि करके बोले अयि सज्जन पुरुषो ? देखो यह पुरुप चोर नहीं चोर की जात नहीं परन्तु कुसंग के प्रभाव से कैसा दुष्ट कर्म किया । तथापि याद रखने की वात है, कि इसको श्रेष्ठाचारी कुल में उत्पन्न होनेके कारण और महात्मा त्यागी साधुओ की शिक्षाके प्रभावसे कहां तकका लाभ हुआहै कि दुष्टकर्म करनेके समय इसकी पूर्वसुमति ने इसको प्रेरणा की, कि परमेश्वर और परलोक भी तो है ।

तव इसने सुमति का निरादर न किया अर्थात् (सुमतिकी शिक्षा पर विश्वास किया)अर्थात् परमेश्वर और परलोक को माना जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रथम तो अनमोलक रत्न वालक के प्राण वचे, द्वितीय इसके प्राण वचे, तृतीय इसका परलोक न विगड़ा, चतुर्थ श्रेष्ठी जी के हृदय का टुकड़ा कुल दीपक पुत्र रत्न नये सिरे मिला यदि उस वक्त यह सुमति का आदर न करता अर्थात् परमेश्वर और परलोक को न मानता तो वालक के प्राण जाते १ और न्याय होने पर राजनीति के अनुसार इसको सूली भेद किया जाता २ और वाल घातादि दोषके प्रयोगसे दुर्गतिके महा कष्ट चिरकाल तक भोगने पड़ते ३ और श्रेष्ठीजी को महा दुःख अनुभव होता प्रत्युत कुलक्षय होता४और इसके पिता पत्नी आदिक दुःखी होते ५इत्यादि इस लिये परमेश्वर और परलोक का मानना मनुष्यमात्र का परमधर्म है। फिर राजा साहिवने न्याय किया,कि तुझको सात वर्ष कारागार (कैद) मे रक्खा जाये परन्तु मैं तेरे श्रेष्ठी पुत्र होने का लिहाज न करता हुआ केवल तेरे सत्य वोलने पर साफ छोड़ता हूं परन्तु याद रखना कि फिर जूआ आदि कुव्यसनों को कदाचित् ग्रहण न करना

सभा सम्मुख शपथ (कस्म) खा और सेठ से कहा कि यह बालक के भूषण इस कर्मदत्त को देदे और बालक का सुख मनाता हुआ घर को जा और कहा कि शुभाशुभ कर्तव्यके प्रत्यक्ष फल देख लिये, तब सेठ जी ने वे भूषण (गहने) उसके सम्मुख किये कि ले तब कर्मदत्त बोला कि मैं मंगता भिखारी नहीं हूं मैंतो श्रेष्ठी पुत्र हूं यह कर्म तो मेरेसे कुसंगति ने कराये, इन भूषणों को तो आप इस बालक के मस्तक परसे वार कर पुण्य करदो अर्थात् गोरक्षादि अभय दान मे, विद्यालय, अनाथालय, विधवाओं के धर्मरक्षा आदिकमे लगादो, तबसब सभासद धन्य धन्य कर उठे और सेठजी ने ऐसे ही किया सभा विसर्जित हुई। और सेठ जी अपने जीवन प्राण पुत्र रत्न को लेकर घर आए और मंगल रचाये। और कर्मदत्त अपने घर गया, उसकी प्रशंसा सुनते हुए कुटुम्बियो ने हर्ष प्रकट किया और आदर से निर्वाह होने लगा और घर २ इस बात का प्रचार हुआ कि संसार में धर्म ही सार है। ऐसा कहकर श्रीमहासती श्रीपार्वती जी महाराज ने कहा कि अयि भव्य जनो ध्यान रखना परमेश्वर और परलोक को उपरोक्त जैन सूत्रानुसार अवश्य मानों इसमे पूर्वोक्त बहुत लाभ हैं।

यदि आप लोगों की समझमें परमेश्वर और परलोक का स्वरूप न भी आवै तो भी मानना आवश्यक है यथा किसी पण्डित ने श्लोक भी कहा है—

संदिग्ध परलोकेऽपि कर्तव्यः पुण्य संग्रह ।
नास्तिच नास्तिनोहानि आस्तिचनास्तिकोहतः ॥

अर्थः—यद्यपि किसीको परलोक और परमेश्वर के मानने में सन्देह भी हो तथापि पुण्य (सुकृत) दयादानादि शुभ कर्म का संग्रह (सञ्चय) करना योग्य है चेद् यदि परलोक नही भी होगा तो भी हमारे को कोई हानी न होगी किन्तु हमारे शुभकर्मों का फल हमको यहां ही अच्छा मिलेगा अर्थात् सज्जनों में आदर देश विदेश में यश इत्यादि यदि परलोक होगातो हमको परलोक में वड़े २ स्वर्गादि सुखदायक फल मिलेंगे,परन्तु नास्तिकों को वड़ी हानि होगी क्योंकि

व्याख्यान अमृतसर नं० ३

पांच इन्द्रियोमें रस इन्द्रियका जीतना दुर्लभ है। श्रीमहासती पार्वती जी महाराज ने कहा कि पांच इन्द्रय यह हैं, (१) श्रोत इन्द्रय (२) चक्षु इन्द्रय (३) घ्राण इन्द्रय (४) रस इन्द्रय (५) स्पर्श इन्द्रय इन पांचों इन्द्रयोमें से रस इन्द्रयको जीतना वहुत दुर्लभहै किन्तु इस रसना के कारण कई लोक अपने धर्म नियम को तोड़ देते हैं और इसी रसनाके लिए कई लोग दाल रोटी पर संतोष न करते हुए नाना प्रकारके कुकर्म (हिंसा झूठ चोरी ठग्गी मायाचारी आदिक) से धन इकट्ठा करते है कि हम अच्छे २ पदार्थ और नाना प्रकारके सरस व्यञ्जन खाएं यहां तक कि धर्मसे विरुद्ध अभक्ष्य पदार्थों को भी भक्षण करने लग जाते है इस रसना के कारण कई संयमी सयम वृत्ति से भी पतित हो जाते हैं।

यथा दृष्टान्त—राजगृह नगरके वाहर वनमे एक साधु रहता था जिसने अपनी इन्द्रियो के वश करनेके लिए इन्द्रियों के सव विषय त्याग रखे थे, मनको यहां तक साध लिआ था कि भूख लगने पर वनके सूखे पत्रों पर ही निर्वाह कर लेता था। एक दिन वहां पर वनक्रीड़ा करता हुआ एक राजा

से स्वादिष्ट खाने खिलाए। इसके पश्चात् साधुजी प्रतिदिन वेश्या के घर पर आया करते और भोजन करके वापिस बनको लौट जाया करते थे। एक दिन वेश्या जान बूझकर घर से चली गई, दासी ने साधु को खड़ा रखा जब वेश्या आई तो कहने लगी, आज यहां ही विश्राम कीजिए, अब समय जाने का नहीं रहा, तब साधु वहीं ठहर गया, अब साधुजी वेश्याके वशमें तो हो ही चुके, फिर वनमें जाने की क्या आवश्यकता थी, एक दिन वेश्या ने साधु से कहा, महाराज ! यह सब घर वार, धन, दौलत महाराजा साहब की कृपा से हैं, आप मेरे साथ चलकर उनसे अवश्य मिलें, ताकि आपका दरबार मे भी आदर हो, साधु तो वेश्या का भक्त हो ही चुका था, उसके कथन को ब्रह्मा का वाक्य समझता था, तुरन्त साथ हो लिया। राजा सिंहासन पर बैठा हुआ था, वेश्या और साधु दोनों सन्मुख जाकर खड़े हो गए, राजाने कुछ देर साधु की ओर देखकर कहा क्या आप वही साधु हैं, जिनके दर्शन मैने वन में किए थे, जब आपने मेरी ओर आंख उठाकर भी न देखा था। हंसकर यह हमारी इस वेश्या का ही प्रताप है कि आपने मेरे मकान पर

आकर दर्शन दिए हैं, यह सुनकर साधु वड़ा लज्जित हुआ और अपनी भूल का पश्चात्ताप करने लगा, साधुने समझ लिया कि यह सब कुकर्म राजा ही ने वेश्या से करवाया है। सचमुच इन्होंने मेरी परीक्षा के लिये यह प्रपञ्च रचा शोक ! मै परीक्षा में अवतीर्ण हुआ (गिर गया) यदि मैं रस इन्द्रिय के वशमें न पड़ता तो अपने योगसे कभी भ्रष्ट न होता और ना ही इस समय इतना अपमान सहना पड़ता इस प्रकार अपनी भाभवता पर शोक करता हुआ राजा की ओरदे खकर वोला कि अब के तो मैं परीक्षा मे अवतीर्ण होगया, परन्तु आपकी कृपासे आशा है कि अब न हूंगा, राजाने कहा तथास्तु ऐसा ही होना चाहिए, अस्तु वह साधु फिर अपने धर्म पर आरूढ होकर वन को चला गया, और रीति पूर्वक प्रायश्चित हो अपने योगमें दृढ़ होगया, इत्यर्थः। इसी लिये पांच इन्द्रियो मे रस इन्द्रिय का जीतना वड़ा दुर्लभ कहा गया है॥

व्याख्यान अमृतसर नं० ४.

पांच यमोमे ब्रह्मचर्य्य का पालन करना दुर्लभ है। श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने ब्रह्मचर्य के विषय पर एक वड़ा ही प्रभावशाली ०५

दिया । आपने वतलाया कि यह जो पांच महाव्रत (यम) हैं, अर्थात् अहिंसा, सत्य, दत्त (अचौर्य) ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह अर्थात् निर्ममत्व इन पांचों में से चैाथे महाव्रत ब्रह्मचर्य्य का पालन करना अति दुर्लभ है।

आपने कहा कि पहला यम दया, करुणाभाव से पाला जासकता है, दूसरा यम सत्य, विवेक से बोला जासकता है । तीसरा यमदत्त (अस्तेय) सन्तोप से पल सकता है, पांचवां यम अपरिग्रह निर्ममत्व भावसे पल सकता है, परन्तु चौथा यम ब्रह्मचर्य्य यह विना ज्ञान और वैराग्यके और पांच इन्द्रिय तथा छठे मनके वशमें किये बिना पल ही नही सकता। जैसे मछली जलके और रेल गाड़ी रेल की सड़कके विना चलही नही सकती। ऐसे ही कामदेव को वस किये विना ब्रह्मचर्य्य भी नही पल सकता, इत्यर्थः । फिर आपने कहा कि इस कामके वशमें होकर लोक अनेक प्रकार के कुकर्म करलेते हैं और नाना प्रकार के कष्ट भी सहते हैं । कई राजाओं ने इसके वशमें होकर रावणके समान राज्य का नाश कर दिया और शिर तक कटा दिया, वहुत लोगो ने इसका दास वनकर अपनी उत्तम जाति कुलवंश को कलंकित कर दिया । इसी कामदेव ने

लाखों मनुष्यों को वर्णाश्रमके धर्मसे पतितकर दिया, यह एक ऐसा चाण्डाल है जिसने मनुष्यों को तो क्या विचारे पशु पक्षियो तक को भी दुःखों में डाला हुआ है, वे भी इसके वश होकर एक दूसरे से लड़ लड़के मरते हैं, इन पर ही वस नहीं है, प्रत्युत इस कामदेव ने योगियों महात्माओं और ऋषियों की समाधियों को भी निर्दयता से तोड़ डाला। यही कारण है कि इस कामदेवके वेग अतिशय साधनाओंके करते हुए भी रुकने कठिन है।

फिर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने कामदेवकी प्रबलता दर्शाने के लिये एक दृष्टान्त भी दिया जो निम्नलिखित हैः—

ब्रह्मचर्य्य के विषय में दृष्टान्त ।

एक महात्मा ब्रह्मचारी साधुने ब्रह्मचर्य्य यममे उत्तीर्ण (पास) होकर सफलता का सार्टीफ़िकेट (प्रशंसा-पत्र) प्राप्त करने के लिए वस्ती में रहना त्याग दिया, और वसन्तपुर नगर के वाहर दूर जाकर एक वनकी गुफामे ध्यान लगाया, जो ऐसा एकान्त स्थान था कि जहां स्त्रियों का पाओं तक न पड़ता था. यहां तक कि पशु जाति की स्त्रियां भी दृष्टि-गोचर न होती थीं। इस स्थान पर वह ब्रह्म-

चारी इस चौथे यम का साधन यथा रीति करता रहा, जब उसे भूख लगती तो वहां धरा ही क्या था जिसे खालेता, बस अत्यन्त भूख लगने पर वह वनके सूखे पत्ते ही खालिया करता था, इस प्रकार उस महात्मा पुरुषने चौवीस वर्ष तपस्या में विता दिए, आप जानते हैं कि शरीरका निर्वाह अन्नपर ही निर्भर है, देहके योग्य भोजन न मिलने से उस महात्मा का शरीर अतिकृश होगया, लहू सूख गया नाड़ियां दीखने लगीं, हड्डियां उठते बैठते खड़ खड़ाने लगीं, जिससे उस तपस्वी को पूरा विश्वास होगया कि अब तो मेरा तन, मन मेरे वशमें होगया है, इस लिये चौथे यम(ब्रह्मचर्य)में मुझे पूर्ण सिद्धि प्राप्त होगई है। अब मुझे वस्ती के निकट रहने में कोई हानि नहीं है, ऐसा विचार कर वह उस निर्जन वनसे चल दिये और वस्ती में रहने की इच्छा से एक वागीचे की झोंपड़ी में जो वसन्तपुर नगरके निकट थी, आडेरा जमाया, इस झोंपड़ीमें लोग अग्नि की धूनी लगा रखते थे, और शौच कर्म से निवृत्त होकर वहां से आग लेकर सेका करते थे, व कई लोक तमाखू पिया करते थे। जब लोगोंने इस झोंपड़ीमें एक महात्मा ब्रह्मचारी साधुको विराजमान देखा तो सबने उस

को प्रणाम किया, और कहा कि हमारे अहोभाग्य हैं, कि हमको ऐसे श्रेष्ठाचारी महात्माके दर्शन हुए हैं, और सब इस महात्मा की प्रशंसा करने लगे, और जो आता, उसकी निर्लोभता और वैराग्यताको देखकर आश्चर्य्य रह जाता। धीरे धीरे नगर भर मे ब्रह्मचारी के गुणोंकी चर्चा फैलगई और नर नारियोंके समूह आने लगे, यहां तक कि राजाके कानो तक भी उसकी कीर्ति पहुंच गई, और राजाजी स्वय दर्शन को उपस्थित हुए और उसके क्षीण शरीरको ही देखकर समझ गये कि महात्मा सचमुच पूरा ब्रह्मचारी है। राजा साहब अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रणाम करके चले आये और रात को रणवास मे गये तो उस महात्माकी प्रशंसा राणीसे भी की, तब महाराणी बोली, कि हमे क्या सुनाते हो, हम तो आपके आयु भरके कैदी हैं, हम क्या जाने कि कहां क्या होरहा है, कैदी तो कैदकी अवधि पूरी करके छूट जाते हैं, परन्तु हम विना अपराध ही एक ऐसी कैद मे बन्द हैं, जिस की कोई अवधि ही नही है, तब राजाने कहा, आप निःशङ्क होकर साधुके दर्शन को जाएं, मैं आज्ञा देता हूं, प्रत्युत (बल्कि) अभी जाएं, क्योंकि

का समय ही आपके लिए अच्छा है। दिनके समय तो वहां मेला लगा रहता है।

महाराणीजी राजाकी इस बात पर बहुत प्रसन्न हुई और बोलीं बहुत अच्छा अभी जाकर उनके दर्शन कर आती हूं॥

महारानीजी को ब्रह्मचारी के दर्शन।

राजाके कथन पर स्वयं महारानी एक दासी और एक सखी को साथ लेकर पीनस में चढ़कर चलदीं, पालकी कुटियाके समीप जाकर ठहराई गई वहां चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था, कोई स्त्री व पुरुष आस पास दिखाई न पड़ता था। महाराणी पालकी से नीचे उतरीं और दासी को आज्ञा दी कि लालटैन को साम्हने करो और आप बाहर खड़ी होकर कुटियाके अन्दर दृष्टि डाली तो क्या देखती है कि एक राख का ढेर है, जिस पर एक महात्मा परमात्माके ध्यानमें अवस्थित है। महारानी निस्संकोच होकर अन्दर चली गई और पालकी उठाने वाले कहार व दासी सब बाहर ही रहे। महारानीके लिए वहां कोई कुर्सी व सिंहासन आदि तो रखा ही न था, उसी राख की ढेरी के निकट साधु को प्रणाम करके बैठ गई।

जब ब्रह्मचारीजीने ध्यान खोला तो चकित होकर सोचते हैं कि क्या मैं स्वप्नमें हूं व जाग रहा हूं क्योंकि कहां यह राखसे भरी हुई कुटिया और वनवासी योगी, और कहां लालटैनके तीक्ष्ण प्रकाश के सन्मुख एक महाराणी के वस्त्रोंकी जगमगाहट दूसरे भूषणोंके मणिओं की कान्ति मानों कुटिया में देवलोककी भान्ति तारोंकी सी दीप माला हो रही थी। ऐसा अवसर उस महात्माने जीवन भर में पहले कभी देखा ही न था, क्षण क्षणमें विद्युत् की सी तीखी लिश्क उसके नेत्रों पर पड़ रही थी, चकित था कि रात्रिके समयमें यह सन्मुख बैठी हुई अलौकिक सुन्दरी कौन है क्या स्वर्ग लोकसे इन्द्राणी स्वयं मेरे दर्शनोंको आई है फिर स्वयमेव विचार किया कि शास्त्रोमे सुनतेहैं कि ब्रह्मचारियो को इस शरीरके छोड़ने पर अवश्य स्वर्ग मिलता है परन्तु मैंने तो इसी शरीरमें स्वर्गकी अपसराको देख लियाहै। इधर ऋषि इन विचारोमे निमग्न हो रहे थे उधर महाराणी ऋषिके ब्रह्मचर्य्य आदि गुणो को मनमें धारण करती हुई ऋषिकी ओर देख २ कर विस्मित हो रही थी, इस प्रकार ऋषिकी दृष्टि राणीके चन्द्र मुख और कमलदल नयन और

उसके हीरों पन्नों आदि रत्नोंसे जड़े हुए भूषणों पर पड़नेसे उस मुनिका मूर्छित काम देव बिना जागे न रह सका, और उसकी दृष्टि तत्काल ही फिर गई। महाराणीजी भी स्वयं बुद्धिमती चतुर और पण्डिता थी तुरंत जान गई कि ऋषिजी तो ब्रह्मचर्य्यके सिंहासनसे गिर गए, मैं तो इस ब्रह्मचारीकी अतिशय साधनाकी प्रशंसा स्वयं (अपने) महाराजके मुखसे सुनकर आई हूं परन्तु शोक ! अतिशोक !! कामरूपी सर्पने इसकी वृत्तिको भी डसकर विषैला बना दिया हाहा !! दुष्ट कामदेव, अस्तु महाराणीजी उसके क्षीण और भस्म रञ्जित शरीरको देख देखकर गम्भीर विचार सागर में निमग्न होकर गोते खाने लगी।

राणीका कामकी प्रबलता पर विचार।

महाराणीजी सोचती हैं कि इस ब्रह्मचारीकी इतनी साधना परभी विषयोंने इनका पीछा न छोड़ा, यथा श्लोक—

भिक्षाशनं भवनमायतनैक देशः। शय्याभुवः परिजनोनिज देह भारः॥ वासश्च जीर्ण पट खण्ड निवद्ध कन्था। हा हा तथापि विषयान्नजहाति चेतः॥

अर्थ—भिक्षा मांगकर भोजन करना-किसी घरके एक कोनेमें वास करना भूमिपर शय्या करके सोना अपनी देहके सिवा दूसरा कोई पास नहीं है, फटे पुराने चीथड़ोंकी गोदड़ी का ओढ़ना, हा शोक! इस दशामें भी विषय पीछा नहीं छोड़ते।

महाराणी ने फिर विचार किया कि यह विचारा तो क्या वस्तु है इस कामदेवने बड़े बड़े बलवानों और उत्तम पुरुषोंको भी अपने वश में किया है, जैसा कि भर्तृहरि कृत शृंगार शतक श्लोक १ में भर्तृहरिजी लिखते हैं—

श्लोक—शम्भु स्वयम्भु हरयो हरिणेक्षणानां।
येनाक्रियन्त सततं गृह कर्म दासाः॥
वाचामगोचर चरित्र विचित्र ताय।
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय॥

अर्थ—शम्भु (शिव) स्वयम्भु (ब्रह्मा) हरि (विष्णु) इन तीनो देवताओको मृगाक्षिणी स्त्रियो के जिस कामदेवने घरके काम करनेको दास बना दिये इस कामदेवकी विचित्रता लिखने और पढने से परे है, इसलिए भर्तृहरिजी कहतेंहै कि (मै ब्रह्मा, विष्णु, और शिवको क्या नमस्कार करूं) जिस कामदेवके यह तीनो वशमेंहै उसी कामदेवके ताई

नमस्कार करता हूं। इसप्रकार भर्तृहरि जीने काम देवके विषयमें शोक प्रकट कियाहै। महाराणीके इसविचारको वर्णन करते हुए श्रीमहासती पार्वती जी महाराजने श्रोता जनोको बतलाया कि धन्यहैं श्री अरिहन्तदेवजी महाराज कि जिन्होंने ऐसेकाम-देवको जीतलियाहै और निष्काम, निष्क्रोध, निर्लोभ निर्ममत्व होकर सर्वज्ञ जिनेन्द्र पदको प्राप्त कियाहै। फिर महाराणीका विचार इस कामदेवकी नीच-ताकी ओर गया कि देखो इसदुष्ट कामदेवने नीच से नीचके घटमें भी आसन जमानेसे घृणा न की यथा श्लोक—शान्तिशतके तथा भर्तृहरिशतके:—

कृशःकाणः खञ्जः श्रवणः रहितः पुच्छविकलो।
व्रणीपूयक्लिन्नः कृमिकुल शतैरावृततनुः॥
क्षुधाक्षामो जीर्णोऽपि करक कपालाऽर्पित गलः।
शुनी मन्वेतिश्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः॥

अर्थ—श्वा अर्थात् कुत्ता कैसा कुत्ता सूखा हुआ काणा, लंगड़ा, कान गलकर गिर गए हुए, पुच्छ भी गल सड़ कर गिर गईहुई खुजलीसे देहपर घाव हुए हुए जिनमेंसे रादवहरहीहै और उनमे कीड़े कुलबुलकर रहेहैं भूखका मारा हुआ खानेके वास्ते जीर्ण भाण्डेमें मुंह डालनेसे और भाण्डेके फूटजानेसे भाण्डेका गलमां

गलेमें पड़ा हुआहै, ऐसा होने पर भी वह कुत्ता कामदेवके वशमें हुआ २ कुत्तीके पीछे जाताहै और वह कुत्ती उसको काटनेको पड़तीहै, जिसपर भी कामदेव उस कुत्तेके हृदयसे अपना आसन नही उठाता हा शोक!

पाठक! देखिए अवराणीजी उस महात्माको कैसे समझातीहें।

महाराणी का ब्रह्मचारी पर उपकार।

जब महाराणी ने वड़े वड़े वलवान् उच्चसे उच्च और नीचसे नीच मनुष्यों और पशुओं को कामदेवके वश में पाया तो सोचा कि अव मुझे कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे यह ब्रह्मचर्य से गिरा हुआ योगी फिर ब्रह्मचर्य मे आरूढ हो जाय ताकि इसकी वहुत वर्षोंकी साधना मट्टी मे न मिल जाय और मेरा यहां आनाभी सफल हो जाय, यह सोच कर उसको सुमार्ग पर लाने के लिए महाराणी ने उस ब्रह्मचारी से प्रार्थना की, कि आपकी क्या इच्छाहै आज्ञा करो मे उपस्थित हूं। ब्रह्मचारी उसकी इस वात पर वड़ा प्रसन्न हुआ और अपने मनका भाव प्रकट किया महाराणी जो वड़ी ही पतिव्रता

और पण्डिता थी उसने तुरंत अपना पचास हज़ार रुपयेका दुशाला अपने ऊपरसे उतारकर उस राख के ढेर पर विछा दिया, तव ब्रह्मचारी तुरंत ही चमक कर बोला कि हैं हैं ऐसे वहुमूल्य दुशालेको राखमें क्यों ख़राव करती हो, तव महारानी ने ब्रह्मचारी के मुख की ओर देखकर उत्तर दिया कि हे ब्रह्मचारी ? मेरा यह दुशाला तो पचास हज़ार रुपयाका है राख लग गई तो क्या हुआ झाड़ने से शुद्ध (साफ़) हो जाएगा परन्तु आपका ब्रह्मचर्य्य धर्म जो २४ वर्ष के घोर परिश्रम और वड़े कष्टों से कमाया हुआ है जिस का मोल ही नहीं अर्थात् अमोलक है आप उसको विषय भोगकी राख में डालकर नाश करने लगेहो, क्या उसका तुझको शोक नहीं है। महाराणीकी यह शिक्षा सुनतेही वह ब्रह्मचारी संभल गया और अपने पहले अभ्यासके अनुकूल वैसाही शान्तभाव धारण कर लिया और मन में पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा कि हे मातेश्वरी ! हे गुरुणी !! मैं तुझ को धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझ पतितको अच्छी शिक्षा देकर उद्धार लिया है, आपके इस उपकारको जीवन पर्य्यन्त न भूलूंगा। तव महाराणी बोली अ ' है जो आप

पुनः धर्ममे सावधानहो गएहैं इसके पश्चात् महारानी ने ब्रह्मचारी को नमस्कार किया और अपने महलों मे परतकर चली गई।

यह दृष्टान्त सुनाकर श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि अयि श्रोताजनो! अब आप समझ गए होंगे कि पांच महां व्रतों मे से चौथा महा व्रत अर्थात् ब्रह्मचर्य्यका पालना कहां तक दुष्करहै।

व्याख्यान अमृतसर नं० ५।

पांचवें बोलसे आठवे तकका वर्णन।

पांचवे बोलमें श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि छे ६ कायामेंसे वायुकायाकी दयाका पालनकरना अतिदुर्लभहै फिर कहा कि पहली कायाका नाम पृथ्वीकायाहै अर्थात् ऐसेजीवहै- किजो कर्मानुसार स्थावरकाया योनिभोगतेहै जिनकी देह यह सब-प्रकारकीपृथ्वी अर्थात् मट्टी होतीहै) (२) ऐसेही अपकाया (सब प्रकारका जल) (३) तेयुकाया (सब प्रकारका अग्नि) (४) वायुकाया (सब प्रकार के वायु) (५) वनस्पतिकाया (सबप्रकारके हरे शाकपात आदि उद्भिज) फिर आपने कहा कि यह पांचो स्थावर काया मे एकेन्द्रिय जीव

होतेहैं अर्थात् वस्तुतः ज्ञान इन्द्रियां पांच होती हैं (१) श्रोत्र इन्द्रिय (कान) (२) चक्षु इन्द्रिय (आंख) (३) घ्राण इन्द्रिय (नासिका) (४) रस इन्द्रिय (जिह्वा) (५) स्पर्श इन्द्रिय (शरीर) अर्थात् जिनके केवल शरीरही होताहै कान, आंख, नाक, मुंह नहीं होता जैसे मट्टी, जल, अग्नि, वायु, सब्जी यह पांचो उपरोक्त स्थावर काया होतेहैं और छटीकायाका नाम तर्स काया अर्थात् जंगम काया (चलने फिरने वाले जन्तु) कहेहैं अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय। द्वीन्द्रिय जीव उसको कहतेहैं जिसके केवल मुख और शरीरही होताहै अर्थात् कृमि गण्डूया जलौका (जोक) आदि, त्रीन्द्रिय उसको कहते हैं जिसके देह मुख और नासिका हो अर्थात् च्यूंटी, कुंथु, खटमल, चिचड़ी, जूका, कान खजूरा आदि, चतुरेन्द्रिय उसको कहते हैं जिसके शरीर मुख नासिका और नेत्र होतेहैं जैसे मक्खी मच्छर ततैया बिच्छु आदि, पंचेन्द्रिय जीव उसको कहते हैं जिसके पांचो इन्द्रियां अर्थात् शरीर, मुख, नासिका आंख और कर्ण हों यथा जलचर अर्थात् कच्छ मच्छ मण्डूक आदि, स्थलचर पशु गौ भैंस घोड़ा हाथी ऊंट आदि, नभचर पक्षि अर्थात्

शुक, सारिका, काक, कपोत आदि, –इनके अतिरिक्त नारकी मनुष्य और देवता भी पंचेन्द्रिय है—फिर आपने कहा कि इन पूर्वोक्त छे कायामे से वायुकाया की दया (रक्षा) का कारना कोई स्थान खाली न होने से व दृष्टि गोचर न होनेसे अति दुर्लभ है।

(६) छठे बोलमें आपने कहा कि पांच सुमतिओमें से भाषा सुमतिका पालन करना अति दुर्लभ है।

(७) सातवें बोलमें कहा कि शक्तिके होते हुए क्षमा करना अतिदुर्लभ है।

(८) आठवें बोलमे कहा कि इन्द्रियोंके भोग मिलते हुए त्याग करना अति दुर्लभ है। इन ८ आठों बोलों (बातो) का व्याख्यान करके आपने यह भी कहा कि जो दुर्लभ कार्य्यको करते हैं वही धार्मिक सुपात्र शूरवीर स्त्रियें व पुरुष होते हैं।

यथा सूत्र दसवै कालिक अध्ययन ३ गाथा १४ वी—

दुकराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहेतुय।
के इत्थ देव लोएसु, केइसिज्झंति नीरया ॥१४॥

अर्थ—जो दुष्कर है करना अर्थात् तपस्या आदिक जिसको जो करते हैं, जो दुष्कर है सहना अर्थात् कटुवचन आदि जिसको जो सहते हैं ऐसे

शूर मनुष्य कई स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं और कई कर्म्म रजसे रहित होकर मोक्ष हो जाते हैं इसलिए जो पुरुष व स्त्रियां मोक्ष होना चाहें तो उपरोक्त धर्म में अवश्य उद्यम करें यही हमारी शिक्षाका परमार्थ है।

जब श्रोता जनोंने आपके यह पवित्र उपदेश सुने तो वहां के लोग गद्गद प्रसन्न होकर आपकी प्रशंसा करने लगे और वहुतों के हृदय स्थलमें सत्य धर्म अंकुर उत्पन्न हुए।



हठ धर्मियों का सुमार्ग से गिराने का प्रयत्न।

पाठक ? यह वात भी वर्णनीय है कि, जब श्री महासती पार्वती जी महाराज के प्रभावशाली व्याख्यानो के दीपकसे श्रोताजनों के हृदयोमे सत्या-सत्य पदार्थों की परीक्षा करनेके लिए पर्य्याप्त प्रकाश होगया और आपके ज्ञान व वैराग्य भरे उपदेशों की महिमा अनेक ब्राह्मण व क्षत्रिय भी आपस मे अपने संबंधी और मित्रो के साथ करते हुए जैन मुनियो की साधना और उनके तप जप संयम की प्रशंसा करने लगे तो चाहे कोई कैसा ही भला कर्म क्यों न करे परन्तु सवकी सम्मति एक नही हो सकती,

जैसे सूर्य्य के प्रकाश को न चाहने वाले भी कई एक जीव होते हैं, इसी प्रकार कुछ हठधर्मी लोक यूं कहने लगे कि अजी आप नहीं जानते हैं, हमको तो जैनके साधुओं के दर्शन तक करना भी मना है तो फिर यह कैसे हो सकता है कि उनका व्याख्यान सुना जावे, यदि तुम इन के शास्त्र सुनोगे तो सम्भव है कि तुम जैन मतको अंगीकार भी करलो, फिर तो तुम्हारा जन्म ही पलट जायगा अर्थात् तुम वर्ण संकर हो जाओगे जिसका परिणाम यह होगा कि तुम जातिसे निकाल दिए जाओगे।

इस पर श्रोताजन बोले सुनो भाईयो हम लोग माई पार्वतीजी देवी का व्याख्यान कई दिनसे सुन रहे हे और हमने उनसे कई एक नियम भी किए हैं परन्तु ऐसा करने पर न तो हमारा जन्म पलटा है और नां ही हम वर्ण संकर हुए हैं आप ही कहें कि क्या हम मनुष्य से पशु हो गए हैं अथवा आर्य (हिन्दु) से अनार्य (मुस्लमान) होगए हैं अर्थात् हमारा क्या विगड़ गया है, हां यदि सच पूछते हो तो हमारा पहले की अपेक्षा सुधार अवश्य हुआ है अर्थात् पहले हम मांसाहारी थे मद्यपान करते थे वेश्या गमनादि कुकर्मों से भी घृणा नहीं करते

थे झूठी साक्षिको यद्यपि बुरा समझते थे परंतु नियम न था माता पिता की सेवा भक्ति करना तो एक ओर रहा उल्टा उनसे झगड़ा करते थे परन्तु जिस दिनसे हमारे हृदय में जैन वाणीके दीपकका कुछ प्रकाश हुआ है उस दिन से हमारे हृदय ऐसे अकार्य्यों से घृणा करने लग गए हैं ऐसे कर्म करने से हृदय धड़कता है अव आप स्वयमेव पक्षपातको छोड़ कर विचार दृष्टि से देख कर बतलाएं कि जो इन उपरोक्त कर्म्मोंके करने वाले मनुष्य हों उनको जातिसे बहिष्कृत (बाहर) करना उचित है व हमको।

अस्तु कुछ पर्वाह नहीं यदि तुम लोग पक्षपात की मदिरामें मतवाले होकर हमको अपनी जातिसे बहिष्कृत भी कर दोगे तो भी हमारी कोई हानि न होगी हम अन्य सदाचारियोंसे वर्ताव कर लेंगे।

जैनधर्मके महत्वपर मिथ्यामतियोंके विचार

जब अमृतसर के ब्राह्मण और क्षत्रियों में परस्पर झगड़ा होने लगा तो वे श्रोता लोक निन्दा करने वालों में से कई मनुष्यों को साथ लेकर श्री महासती पार्वतीजी महाराजकी सेवामें आए और आपके चरणोंमें उन्होने निम्नलिखित चार प्रश्न किए—

१ प्रश्न—एक मनुष्यने यह कहा, अजी जैनियोंमें और तो सब बातें अच्छी हैं परन्तु यह लोग स्नान नहींकरते जो स्नानधर्म स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है जबवही नही तो शेष क्रिया शुद्ध कैसेहो सकतीहैं।

२ प्रश्न—किसी पुरुषने यह कहा कि हमारे शंकराचार्य्यने जैनियोंके दर्शन करनेका निषेध किया है।

३ प्रश्न—कोई पुरुष यूं बोला, अजी कई ब्राह्मण लोग हम को यह कहते हैं कि जैनी लोग विवाहके अवसरपर आटेकी गौवनाकर उसका बधकरते हैं।

४ प्रश्न—किसी ने ऐसा कहा अजी जैनियों की निन्दा तो हमारे गुरु नानकदेवजी ने भी लिखी है।

श्री महासती पार्वती जी महाराजने इन चारों प्रश्नोंको सुन कर और श्रोता जनोंको उत्तरके लिए उत्सुक पाकर चुप रहना अनुचित समझ कर निम्न लिखित उत्तर दिया—

अरे भाइयो! इस गड़बडका कारण केवल द्वेष भाव ही है और अधिकतर तो जबसे जैन मुनियो की मण्डली में से पृथक् होकर श्रीमान् जीवनरामजी महाराज के चेले आत्मारामजी ने पीताम्बर मतको धारण किया है तबसे ही उन्होंने

और उनके सेवकोंने जैन मुनियों को द्वेष भावसे ढूंढिये नाम कह कर निन्दा करना और निन्दा का सर्व साधारणमें सम्यक्त शल्योद्धरादि पुस्तकों द्वारा प्रचार करना मुख्य धर्म मान लिया॥

आत्मारामजी संवेगीके द्वेषभावका कारण

पाठक! आत्माराजी सम्वेगीको जैन मुनियों से द्वेष क्यों था इसका भी थोड़ासा उल्लेख कर देना समुचित समझता हूं, मोहनलाल श्रावक अमृतसर निवासीने अपनी बनाई हुई "दुर्वादी मुखचपेटिका" नामक पुस्तक जो सं० १९४९ में ऐंग्लो संस्कृत यंत्रालय अनारकली लाहौरमें ला० रामचन्द मैनेजरके प्रबंधसे छपी थी जो जैन सभा अमृतसरसे मिल सकती है कुछ तो उसमेंसे और कुछ जैन जातिके वड़े बूढों से सुनने में आए हैं उनमेंसे कई नोट लिखता हूं।

स्वामी आत्मारामजी पहले श्री श्री श्री जीवन रामजी महाराजके चेले थे परन्तु गुरुमहाराजने उनको विमुख हुआ जान कर अलग कर दिया तव पंचनद (पंजाब) देशके समग्र जनपदो (ज़िलो) को छोड़ कर आत्मारामजी आगरे पहुंचे और

सं० १९२० में वहां पर जैन मुनि श्री स्वामी र
चन्दजी महाराजकी शरणली और उनसे जैन सू
के पढ़नेकी प्रार्थना की। तब श्री स्वामी रत्नचं
जी महाराजने उनकी विनतीको स्वीकार कर
जैनके कई सूत्र पढ़ा दिए परन्तु जैसा जिस
स्वभाव होता है वह वैसाही काम करता है सुत
आत्मारामजी ने स्वामी रत्नचन्दजी के उपकारव
बदला यह दिया कि स्वामीजी महाराजके ही क
क्षेत्रोंके सेवकोंको फुसलाना (बहकाना) आरम
कर दिया और कई एक भोले भाले सेवकों व
श्रद्धा को डिगा ही दिया, उनकी इस चालने अन
में वहांसे भी निरादर कराया और इसके अति
रिक्त और भी कई विशेष कारणोंसे आत्मारामज
को विवश होकर पंचनद (पंजाब) मे ही वापि
आना पड़ा। श्री श्री श्री स्वामी जीवनरामजी
महाराज से तो पहले ही विमुख होकर गए
इस लिए उनकी शरण में तो आही नहीं सकते
थे परन्तु आत्मारामजी ने श्री १००८ जैनाचार्य
पूज श्री अमरसिंहजी महाराजके चरणोंकी शरण
ली। वे बड़े दयालु थे उन्होंने उसको आदर
अपने सम्मुख उनके व्याख्यान करवाए और

शिष्यों को भी आत्मारामजीके साथ विचरने की आज्ञा देते रहे परन्तु शोक ! आत्मारामजी ने इस का बदला भी अपने स्वभावके अनुसार ही दिया अर्थात् पूज अमरसिंहजी महाराज के टोलेमें ही भेद डाला अर्थात् पूजजीके विशनचंद आदिक ११ चेलोंको अपने फेर में लाकर बहका लिया ।

नोट

इसका प्रमाण वल्लभ विजय जी कृत आत्माराम के जीवन चरित्र में उल्लिखित है जो आत्मारामजी कृत तत्वनिर्णय प्रासाद ग्रंथ प्रथमावृत्ति का छपा हुआ है उसके आरम्भ मे लिखा है कि किस प्रकार विशनचंद आदि साधु बहकाए गए थे और उसी जीवन चरित्र के पृष्ट ३४ से ३७ तक स्वयम् वल्लभ विजय जी लिखते हैं कि आत्माराम जी के पिता गणेशदास जी डाका मारते रहे और उसका फल यह हुआ कि दस वर्ष कारावास में रहे इत्यादि ॥

तो श्री पूजजी महाराज ने विचारा कि अक्सर पिता पर पुत्रकी बुद्धि होती है कि जिसने-भलाई के बदले में हमको इतनी क्षति पहुंचाई । इस लिये पूजजी महाराजसे भी निरादर ही पाया, तब दक्खन देश में चले गये जहां मूर्ति पूजक जैनियों के बहुतसे

मन्दिर हैं । अन्तमें उन्होने अपने उस विचारको पूरा कर लिया जो आरम्भसे ही उनके मनमें घर कर चुका था अर्थात् सं० १९३२ व १९३३ मे मुखवस्त्रिकाको जो जैन मुनियों का चिन्ह है उतार दिया । जो श्वेताम्बरी मत अर्थात् श्वेत वस्त्र धारने वाला मत है उससे विरुद्ध पीताम्बर अर्थात् पीले वस्त्र धारणकर लिए और उसी समयमें आत्मारामजीने द्वेष भावके कारण जैन मुनियोंको ढूंढिये नामसे निन्दा करना कर्त्तव्य समझ लिया ।

पाठक! भली भान्ति समझ गए होंगे कि आत्मानन्दी क्यो जैन मुनियोंसे द्वेष रखते हैं ।

प्रथम प्रश्नका उत्तर स्नानके विषय में

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने प्रथम प्रश्नके उत्तर मे कहा कि उनलोगों को उचित है कि वे पहले इन्हीं आत्मानन्दी साधुओं और श्रावकोंसे पूछें कि उनके पीताम्बरी साधु स्वयं स्नान करते हैं व नहीं यदि करते हैं तो किस सूत्रके अनुसार करते हैं, यदि नहीं करते तो वे अपने आपको किस विमान पर [illegible] मानते हैं। फिर श्री महासतीजी महाराजने हमारे निशीथ'' सूत्रके चतुर्थ उद्देश[illegible]

साधुके शरीर व वस्त्रपर विष्टा राध अथवा रक्त लगजाय तो उसे शुद्ध किये बिना शास्त्र पढ़े तो दण्ड आताहे इत्यादि, परन्तु स्नान के विषयमें आपने कहा सो जैन गृहस्थ तो स्नान करते ही हैं किन्तु ब्रह्मचारियों और साधुओंके लिए स्नानका तो शृंगारका कारण होने से प्रत्येक शास्त्रों में निषेध है। यथा महा भारत शान्ति पर्व ब्रह्मचर्य्यके अधिकारमे ऐसे श्लोक सुने जाते हैं—

सुख शय्याशंन वस्त्रं, ताम्बूलं स्नान मर्दनम् ।
दन्त काष्ठं सुगन्धं च, ब्रह्मचर्य्यस्य दूषणम् ॥

अर्थ—(१) सुख शय्या (२) सब रस भोजन (३) बहुत महीन वस्त्र (४) ताम्बूल चर्वण (५) स्नान (६) मालिश आदि (७) दांतोको काष्ठसे घिसना अर्थात् दातन करना (८) इतर आदिक सुगंधित द्रव्य लगाना। इन आठ कार्य्योंका करना ब्रह्मचारियोंके लिए दोष है और ऐसें ही कई ग्रंथ कर्ता लिखते हैं कि मनुस्मृति तथा गोतम स्मृति आदिक में ब्रह्मचारियोके प्रति अधो लिखित २३ कार्य्य निषेध हैं। (१) मधु (२) मांस (३) सुगन्धि (४) पुष्पमाला (५) दिनको सोना (६) नेत्रोमे अंजन आंजना (७) उबटना करना (८) सवारी घोड़ा, ऊंट,

हाथी, बग्घी, रेल आदि पर चढना (९) जूता पहनना (१०) छत्री लगाना (११) काम (मैथुन करना) (१२) क्रोध (१३) लोभ (१४) मोह (१५) बाजा बजाना (१६) स्नान करना (१७) दातन करना (१८) हर्ष (१९) नृत्य (२०) गान (२१) निन्दा करना (२२) मद्य पान (२३) भय। पाठक! देखो नं० १६वां स्नानका है जो ब्रह्मचारियों के लिए वर्जित है। इसी प्रकार जैन मूलसूत्र दशवैकलिक अध्ययन ३ में ५२ कार्य्य ब्रह्मचारी (साधुओं) के लिए वर्जित कहे हैं जिसमे स्नानका स्पष्ट तया निषेध किया है देखो श्लोक नं० २

उद्देसियं, कियगडं, नियागं, अभिहडाणिय, राइभत्ते, सिणाणेय, गंध, मल्लेय, वीयणे २

अर्थ—(१) साधुके नामसे भोजन बनाया जावे (२) साधुके लिए पदार्थ मोल लिया जावे (३) साधुको न्योताका भोजन अथवा प्रति दिन किसी विशेष गृहका भोजन लेना (४) मकान पर आया हुआ भोजन लेना (५) रात्रिमें भोजन करना (६) स्नान करना (७) सुगन्धि लगाना (८) पुष्प माला आदिका धारण करना (९) पंखा करना यह साधुओं के लिये दूषण हैं। इसी प्रकार और भी दूषण

बतलाए हैं विस्तृत् भयसे नहीं लिखे गए, जिनका विस्तृत वर्णन इसी सूत्र के इसी अध्ययन की आठवी गाथा तक देख सकते हैं अर्थात् यहां भी छेवें बोल में साधुको स्नान निषेध है।

आत्मारामजी संवेगी की सम्मति।

फिर श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि, स्वयं आत्मारामजी संवेगी भी अपने बनाए जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थ जो कि सं० १९४० वि० का छपा हुआ है पृष्ठ १०२ पर लिखते हैं कि, ऐसी अशुचि देहको महा मोहांध पुरुष शुचि मानते हैं तथा जलके १०० घड़ोंसे स्नान करके सुगन्धि पुष्प कस्तुरी आदि पदार्थोंसे वाहर की त्वचा को कितने काल ताईं मुग्ध जीव शुचि सुगंधित करते हे परंतु विष्टाका कोठा मध्य भागमें कैसे शुचि होय इत्यर्थः

श्री गुरु नानक देवजी की सम्मति।

महासती पार्वतीजी महाराजने गुरु नानक देव जी की सम्मति वतलाई कि, उन्होंने भी स्नान करने को शुचि नहीं माना यथा—शव्द

सुचे सो न नानका वैठे पिण्डा धो।
सुचे सो ही नानका जिस मन वसिया सो॥

और ऐसा भी कहा है—

जलके मंजनजे गत होए मेंडक नित नित न्हावें ।
जैसे मेंडक तैसे वो नर फिर फिर जोनि पावे ॥

कबीर साहबकी सम्मति ।

इसके अनन्तर श्री महासती श्रीपार्वतीजी महाराजने कबीरजी की सम्मति बतलाई कि कबीर जीने स्नानको कैसा माना है—

कबीरा चली न्हावणें दिल खोटे मन चोर,
बाहरों धोती तूंबड़ी अन्दरों बिसियर घोर ।
साधु भले बिन न्हातियां चोरसो चोरो चोर,
साहबकी कर वंदगी तू भी साहब हो ॥

श्री महासती श्रीमती पार्वतीजी महाराजने स्नानके विषयमें जब यह सिद्ध कर दिया कि ब्रह्मचारियों तथा साधुओंके लिए स्नान करना केवल जैन मतमे ही वर्जित नही है प्रत्युत अन्य मतवाले भी इससे सहमतहै अस्तु शास्त्रकार दो प्रकारके स्नान वर्णन करतेहै जिनका उल्लेख नीचे कियागया है—द्रव्य (वाह्य) स्नान और भाव (अभ्यन्तर स्नान) जैसे एक पुरुष निद्रामें सोया पड़ाहै उसको एक मच्छरने काटा तो उसने निद्रामें ही पांओसे पाओं

मल डाला तो वह मच्छर मरगया और उसका रक्त पाओंमें लगगया। एक और दूसरे मनुष्यको मच्छर ने नींदमें काटा तो उसने जागकर मारनेके विचार के विना पाओंसे पाओं मलडाला ऐसे ही तीसरेको मच्छरने काटा तो उसने जागकर मच्छरको क्रोधसे दांत पीसकर मसलडाला अब प्रातःकाल होने पर जो लोग कहते हैं कि स्नानकरनेसे हमारे पाप दूर हो जातेहैं सो यह उनकी भूलहै, हां वाह्य स्नानसे देहके ऊपरका मैल उतरजाताहै परन्तु अभ्यन्तर मैल अर्थात् किए हुए पाप कर्म कदापि दूर न ही होते जैसे पहले मनुष्यसे नींदमें अनजाने मच्छर मारा गया था जिसको अनादृष्ट पाप भी कहतेहैं उसका वाह्य स्नान करनेसे जो मच्छरका रक्तलग गया था वह उतरगया परन्तु अज्ञानमें मच्छरके प्राणनाश होनेसे जो हिंसाका दोप अर्थात् अनादृष्ट पाप लगा था वह नहीं उतरा, वह कैसे उतरताहै वह अंतरग स्नान अर्थात् परमेश्वरके नाम लेनेसे अर्थात् जप करनेसे उतरताहै जिसको स्वाध्याय भी कहतेहै। दूसरे मनुष्यने जागृत होकर विना विचारे मच्छर मारडाला था यह पाप नाम लेनेसे नहीं उतरता यह पाप दान देनेसे उतरताहै, तीसरे

मनुष्यने जान बूझकर तममें अर्थात् क्रोधमें भरकर दांतपीस कर मच्छरको मार डाला यह पाप दान देनेसे भी नहीं उतरेगा यह पाप तपस्या करनेसे उतरताहै यदि उपरोक्त तीनो धर्मोमेसे एक धर्म भी न किया जावेतो फिर इन पापोंका फल परलोक अर्थात् नीच गतिमें भोगना पड़ेगा यथा दृष्टान्त—

किसी मनुष्यका रुमाल भूमि पर गिरपड़ा उसको धूलिलग गई तो झाड़नेसे साफ होगया जैसा कि प्रथम मनुष्यका पाप था। यदि गीला रुमाल भूमि पर गिर पड़े तो झाड़नेसे धूली नही उतर सकसी वह धूपमे सुखाकर मल डालनेसे उतरतीहै जैसाकि दूसरे मनुष्यका पापथा। यदि चिकना रुमाल भूमि परपड़े तो उसकी धूली धूपमें सुखाने व मलनेसे भी नहीं उतरती वह सज्जी सावन लगाने व खुम्भ पर चढ़ानेसे और शिलापर पछाड़नेसे उतरतीहै जैसाकि तीसरे मनुष्यका पापथा अर्थात् किसीसे हिंसा आदि का पाप अज्ञानमे होजाय तो नं० १ सूखे रुमालकी न्याई मिच्छामि दुकड़ं ... के देनेसे अर्थात् भूल माननेसे व नाम लेनेसे उतर जाताहै। जो जानकर व्यवहार मात्रमे अर्थात् साधारणतया पाप किया जाय तो नं० २ गीले रुमालकी न्याई दान देनेसे

व कुछ दण्ड प्रायश्चित्त लेनेसे उतर जाताहै और जो पाप जीव हिंसा आदि जानबूझकर कामके वश अथवा क्रोधके वश व जिह्वाके स्वाद आदि के लोभके वशमें किया जाय तो वह नं० ३ चिकने रुमालकी न्याईं कठिन तपस्या करनेसे और संयम व ब्रह्मचर्य्य आदि कठिन साधनाओंसे उतरताहै अन्यथा परलोकमें कई प्रकारके दुःखोंसे भोगना पड़ता है। इन बातोंको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और आपकी अतिशय प्रशंसा करने लगे और निन्दक लोक निरुत्तर होकर चुप कर गए।

द्वितीयप्रश्नकेउत्तरमें

जैनमुनिका ब्राह्मणोंसे शास्त्रार्थ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने पहले प्रश्नका संतोषजनक उत्तर देकर दूसरे प्रश्नका उत्तर देना अधोलिखित प्रारम्भ किया—

आपने कहा यह जो दूसरा भाई कहताहै कि शंकराचार्य्यजी कह गएहैं कि जैनियोंके दर्शन न करने चाहिए इसका कारण भी द्वेष ही है। इस समय मुझे श्री स्वामी रत्नचन्दजी महाराजकी एक पुरानी बात स्मरण हुई है वह यह है कि लगभग

सँ० १९१८ वि० में एक दिन स्वामी रत्नचंदजी महाराज जो बहुधा आगरे में रहा करते थे, नित्य नियम के पश्चात् किले के समीपवर्ती मार्गसे होकर यमुना तीरपर शौचके लिए जा रहे थे, इतने में एक ब्राह्मण आता हुआ, मार्ग में मिला जिसने स्वामीजीको देखकर सिर हिलाया। स्वामीजी बोले, क्यों सिर क्यों हिलाया ब्राह्मण बोला इस लिए कि तुम्हारे दर्शनसे नरक मिलता है। स्वामी जी मुस्कराकर भला तुम्हारे दर्शन से क्या मिलता है। ब्राह्मण हमारे ..हमारे दर्शनसे स्वर्ग मिलता है।

स्वामीजी—वाह वाह फिर हम तो वड़े लाभ में रहे क्योंकि तेरे दर्शन हमको हुए हैं हमको तो स्वर्ग मिलेगा और तुमको नरक .ब्राह्मण लज्जित होकर और कुछ चुपसा रहकर बोलाकि अजी हमारे शंकराचार्य्य शंकर दिग्विजय में शिक्षा दे गए हैं कि, जैनियो के दर्शन न करने चाहिए, ऐसा श्लोक भी लिखा है—

न पठेद्यावनीं भाषां न गच्छेज्जैन मान्दिरम्।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि प्राणैःकण्ठगतैरपि॥

अर्थ—मत पढ़ना यावनी भाषा को (म्लेच्छोकी भाषा अर्बी फारसी आदिक)को और जो हाथी मारने

को आता हो उससे डरकर भी प्राण कंठमे आजावें तो भी जैन मन्दिर में मत जाना इत्यादि.

स्वामीजी—जैनियोंने ऐसी क्या बुराई की थी कि जिसके कारण शंकराचार्य्यजी ने ऐसा लिखा है इस बुराई का भी तो कहीं उल्लेख किया होगा ।

ब्राह्मण—कुछ चुपकासा होकर, ऐसा लिखातो स्मर्ण नही है ।

स्वामी जी—क्यों यह स्मरण क्यो न रहा लो मै स्मरण करा देता हूं, वही शंकराचार्य्य जो लगभग ७०० संवत् विक्रमी में हुए हैं जो बाल्यावस्था मे संन्यासी बने थे और ३२ वर्षकी आयुमें परलोक सिधार गए थे परन्तु आनन्दगिरिकृत शंकर दिग्विजयके पढ़नेसे यह सिद्ध होताहै कि,जब शंकराचार्य मण्डुक ब्राह्मणकी स्त्री सरसवाणी (सरस्वती) से शृंगार रसकी चर्चा मे निरुत्तर हो गए तो एक मृत राजाके शरीर मे प्रवेश करके उसकी रानीसे नाना प्रकार के भोग करके वाममार्गी हो गए थे, सुतरां आगम प्रकाश ग्रंथ का कर्ता भी कहता है कि शंकर स्वामी शाक्तअर्थात् वाममार्गी थे जिसका प्रमाण आत्मारामजी संवेगीने भी अपने वनाए हुए

अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रन्थ प्रथमावृति वाले में लिखा है कि शंकराचार्य्य अद्वैतवादी परमहंस थे ।

अस्तु, कुछ हों परन्तु वैदिक हिंसाको अहिंसा कहते थे अर्थात् यज्ञमें वेदों के अनुकूल पशु वध करने में दोप नही है ऐसा मानते थे ।



शंकराचार्य्यका वौद्धों और जैनियोंसे वर्ताव

श्रीमहासतीजी महाराजने कहा कि जैसा मनुजी ने भी मनुस्मृतिके पांचवें अध्याय के श्लोक ३९, ४०, ४१ मे लिखा है जो सं० १९५० वि० में छपी और उल्लूकभट्ट विरचित अन्वार्थ वाली तृतीयावृत्ति सं० १९५९ कल्याण वम्बई की छपी मे देखो ।

यज्ञार्थ पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥
मधुपर्के च यज्ञे च पितृ दैवत कर्माणि ।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीत्मनुः ॥

अर्थ—यज्ञकी शुद्धिके लिए प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा ने आप ही पशु उत्पन्न किए हैं यज्ञ सम्पूर्ण जगतकी वृद्धिके लिए होता है इस लिये यज्ञमें पशु होम करना अवध है अर्थात् हिसा नहीं है । " समांस मधु " अर्थात् मांस विना मधुपर्क नहीं

होता इस लिए मधुपर्क में और यज्ञ में और श्राद्ध आदि पितृ तथा देवकर्ममें पशु मारने योग्यहैं अन्यत्र नहीं मनुजीने यह कहा है। परन्तु जैन और बौद्ध इस बात को नही मानते हैं वह कहते हैं कि समस्त आर्य धर्म (जैन,बौध,सनातनादि) का मूल मंत्र है— "अहिंसा परमोधर्मः" तो फिर वे वेद ही क्या जिसमें पशु वध लिखा है, और वह यज्ञ ही क्या है जहां रुधिरकी नाली बहती हो, यह तो अनार्य भूमि ठहरी, किसी पण्डितने कहा भी है—यथा श्लोक—

यूपे बध्वा पशुं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यद्येवं गम्यते स्वर्गं नरके केनगम्यते ॥

अर्थ—यज्ञमें एक यूप (खम्भा) खड़ा किया जाता है जिससे पशु बांधे जाते हैं फिर वे पशु मार कर अथवा जीते ही अग्निमें डाल दिए जाते हैं और वहां रुधिर का कींच किया जाता है,यदि ऐसा करनेसे स्वर्गमें जावें तो नरकमें किस करके जा सकते हैं, इससे सिद्ध हुआ कि इस कर्मसे नरकमे ही जायंगे नतु स्वर्गमें इत्यादि—अतःइस कारणसे परस्पर विवाद था, तब शंकराचार्य्यजी की ओर कई राजे होगए, क्यो न होते उनको ऐसी शिक्षासे इस प्रकार

की स्वच्छन्दता मिल गई कि, यज्ञमें बनाए हुए मांस को खा भी लें और स्वर्ग भी मिल जाय।

यथा मनुस्मृति अध्याय ५

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानाञ्च काम्यया।
यथा विधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये ॥

अर्थ—ब्राह्मणोंकी कामना मांस भक्षणकी हो तो यज्ञ में परोक्ष विधि से अर्थात् वेद मंत्रानुसार शुद्ध करके भक्षण कर लें और श्राद्धमें मधु पर्कसे इत्यादि।

अस्तु इस पर शंकराचार्य्यंने बौद्धों को कहीं तो मरवा डाला और कहींसे निकलवा दिया और जैनियोंके शास्त्र कुछ फूक दिए कुछ जलमे वहा दिए इन घोर अत्याचारो के अतिरिक्त द्वेपभाव से पूर्वोक्त यह भी कह गए कि, जैनियोंके दर्शन नहीं करना, भला तुम ही बतलाओ कि इसमें जैनियों का क्या अपराध है।

जैनमुनि और ब्राह्मणके शास्त्रार्थका परिणाम

जब स्वामीजीके वचनोसे ब्राह्मणको संतोप आगया तो वह ब्राह्मण कुछ निरुत्तरसा होकर बोला, अजी जैन मतमे त्याग वैराग्य क्षमा तपस्या

आदि व्रत तो अच्छे हैं परन्तु सरावगियों में दोष है तो एक......

स्वामी जी—अटके क्यों कहो कहो क्या दोषहै?

ब्राह्मण—यही कि, सरावगी न्हाते नहीं वैष्णव लोग न्हा लेते हैं।

स्वामीजी—वस सरावगियों के सारे गुण छोड़ कर केवल एक वाह्य वृत्ति स्नानको प्रधान रख कर वैष्णव निर्दोष बन वैठे क्या इसीका नाम पण्डिताई है अच्छा जैनियों को, गौ, समझलो जो कभी नहीं न्हाती और वैष्णवों को भैंस समझ लो जो प्रतिदिन न्हातीहै परन्तु स्मरणरहे, न न्हाने वाली गौओंका तो मूत्र भी पीकर वही वैष्णव पवित्र होना मानते हैं और नित न्हाने वाली भैंसका तो दर्शन भी अच्छा नहीं मानते। ब्राह्मणने जव यह सच्चाईसे भरी हुई वक्तृता सुनी तो निरुत्तर होगया और लज्जित सा होकर हंसकर चला गया, स्वामी जी भी अपने कार्य्यमें लग गए। फिर श्रीमहासती जी ने कहा कि हे श्रोताजनो! अब तुम आपही विचार करलो कि यह द्वेष भाव नहीं तो और क्या है, सचतो यह हेकि ऐसे पवित्र अहिंसाधर्मके पालनेवालो के कई मतमतान्तरी लोग द्वेषी हैं, क्योंकि जैनमे मद

मांसका व्यवहार सर्वथा नहींहै दयाका ही अधिकतर प्रचार है और और अनेक मतावलम्बी जो अहिंसा को परमधर्म कहते है परन्तु अहिंसाको परमधर्म कहते हुए भी जिह्वाके वशमें होकर मदमांसाहारी बनकर हिंसासे वच नही सकते अर्थात् कोई यज्ञके छद्म(छल) से (वहानेसे) कोई पितृदानके नाम से कोई झटके के नामसे कोई हलाल के नामसे हिंसाको निर्दोप कहकर उसको कर ही लेते है। इसलिए वे लोग स्वयं अच्छा बननेके लिए जैनियोके दया सत्यादि महत्वके यशको न सहन करते हुए व उनके मन्तव्यो और कर्तव्यों को न जानते हुए अथवा किसी मांसाहारी हिंसक के बहकाए हुए जैनको कोई नास्तिक कह देताहै कोई अनीश्वरवादी कह देताहै कि जैनी ईश्वरको नही मानते हैं और कोई कह देताहै कि जैनी न्हाते नहीं मैंले रहते हैं इत्यादि यह सब पूर्वोक्त द्वेप भावका ही कारण है। किसी पण्डित ने कहा भी है—

मूर्खाणाम् पाण्डिता द्वेष्याः, निर्धनानां महाधनाः।
व्रतिनः पापशीलानां, असतीनां कुलस्त्रियाः॥

अर्थ—मूर्खोको पण्डितोंसे द्वेप होता है और निर्धनोको धनवानोसे द्वेप होता है, पापियों को दया सत्यादि व्रतके पालने वालोंसे द्वेप होता है, असती

अर्थात् व्यभिचारिणियों को कुलस्त्रियों अर्थात् सतियों से द्वेष होता है, इत्यादि ।

तृतीय मिथ्या रूप प्रश्न का उत्तर ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने तीसरे प्रश्न के उत्तरमें कहा कि इस भाईने जो कहा था कि लोग ऐसा कहते हैं कि जैनी लोग विवाह के अवसरमें आटेकी गौ बनाकर बध करते हैं सो ऐसा कहने वालोंकी अज्ञानताहै क्योंकि, जैन ऐसा कर्म करने की कदापि आज्ञा नहीं देता ऐसा दुष्ट कर्म्म करना तो एक ओर रहा जैनी लोग तो ऐसे कर्मके नाम मात्रसे भी घृणा करते हैं । फिर श्री महासतीजी महाराजने कहा कि हां जैनी लोगोंके विवाह आदि अवसरों पर प्रायः ब्राह्मण लोग ही कार्य्य करतेहैं इसलिए जो कार्य्य उन अवसरोपर जैनी करते होंगे वह सब ब्राह्मणोंके आदेशानुसार ही करते होंगे इस लिए यह प्रश्न ब्राह्मणोंके साथ सम्बन्ध रखताहै उन्हीं से पूछना योग्य है कि उन्होंने विवाहके समय वेदों के अनुसार क्या क्या विधियां बतलाई है, क्योंकि आप सब जानते हैं कि, हम जैन साधु गृहस्थोंके किसी भी संसारी कार्य्यमें सम्मिलित नहीं होते हैं

प्रत्युत विवाह वाले घरमें भिक्षा लेने भी नहीं जाते हैं इसलिए विवाहकी रीतिको ब्राह्मणही जानते होगे। फिर श्रीमहासतीजी महाराजने यह भी कहा कि इस बातको तो हम भी भली भांति स्वीकार करते हैं कि इस दुष्ट कर्म्मको जैनी लोग किसीके बहकाने पर भी नही करते होगे क्योंकि जैनसूत्र तो एक मात्र दयासे परिपूर्ण हैं तो फिर उनको माननेवाले ऐसा अकार्य्य कर ही नही सकते। हे भाई! जो लोग ऐसा कहकर तुमको भ्रम जालमे फंसाते हैं उन्हींके धर्म शास्त्र मनुस्मृत्यादि में ऐसे श्लोकहै, देखो मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक ३७

कुर्य्याद् घृत पशुंसंगे, कुर्य्यात् पिष्टपशुं तथा।
नत्वेवतु वृथा हन्तु, पशु मिच्छेत् कदाचन ॥३७॥

अर्थ—जो मांस खानेकी बहुतही इच्छा हो तो घीका अथवा चूनका (आटेका) पशु बनाकर खाएं और देवताओंके निमित्तके विना कभी पशुओंके मारने की इच्छा न करे।

अब सोचना चाहिए कि यहां पशु शब्दमे सभी पशु आगए क्योंकि यहां पर किसी विशेष पशुका नाम तो लिखा ही नहीं, यथा बकरा, बैल, गौ, घोड़ा इत्यादि सो अपने शास्त्रोंके ऐसे लिखने

पर विचार न करते हुए दयावान मनुष्योंके सिर दोप धरने, यह द्वेपभाव नहीं तो और क्या है। अपितु इस द्वेपभाव (ईर्पा) के लक्षणही हैं कि विना अपराधीको अपराधी वनाकर मरवादेना व निकलवा देना सच्चेको झूठा बना देना यथा सूत्र निरावलिका कौनक राजाकी राणीने अपने देवर "वहल कुमार" को अथवा "पाण्डव-चरित्र" में कौरवोने पाण्डवों को इत्यादि—



चतुर्थ निन्दारूप प्रश्नका उत्तर ।

चतुर्थ प्रश्नके उत्तरमें श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि यह जो चौथा भाई ऐसा कहताहै कि गुरु नानकदेवजीने भी ग्रन्थ साहिवमे जैनियों की निन्दा लिखी है-सो सुनिये कि गुरु नानकदेवजी ने जैनमार्गकी निन्दाकीहै कि प्रशंसा अर्थात् न जाने किन सर्वाङ्गिओके विपयमें ऐसा आदि ग्रन्थ साहिव माझा दीवार श्लोक महल्ला पहिलामें लिखाहै कि—

"सिर खुहाएं पिएं मलवानी जूठा मंग मंग खाएं।
फोलफदीलतमूंह लैन भड़ासां पानी देख संगाएं ॥
भेडावागूंसिर खुहाएं भरी हत्थ सुहाई ।
मां पिऊ किरत गुआएं टवर रोवन ढाई ॥

ओन्हां पिण्ड न पतल किरया न दीवा मोए किथाई।
अठ सठ तीरथ देन न ढोई ब्राह्मण अन्न न खाई॥
सदा कुचील रहें दिनरातीं मत्थे टिका नाही"।

इत्यादि—श्रीमहासती जीने कहा कि यह कहना एकान्त (केवल) वेसमझी का है कि गुरु नानकदेवजीने यह जैन मतके विषयमें लिखाहै क्योंकि इसमें जैनमतका तो कहीं नामही नही है किन्तु जब जैन ऐसे कर्मही नही करता तो वे जैन का नाम लिखतेही कैसे-प्रत्युत (वल्कि) गुरु नानकदेवजीने जैनमतकी वड़ाई तो अवश्य लिखीहै, देखो सुखमनी साहिव अष्टपदी—

"न्योली कर्म करें वहु आसन।
जैनमार्ग संयम अति साधन"॥

अर्थात् जैनमार्गमे संयमके वहुत ही उत्तम और कठिन साधन है, जव श्रीमहासतीजी महाराजने यह सिद्ध कर दिया कि गुरु नानकदेवजी ऐसे मनुष्य न थे कि वे जैनधर्म जैसे सर्व हितकारी पवित्र धर्मकी निन्दा करते प्रत्युत उनके वाक्यो ने यह सिद्ध कर दिया कि उन्होंने जैनधर्मकी साधना को सर्वोत्कृष्ट (अतिकठिन) माना है, फिर श्री महासती पार्वतीजी महाराने कहा कि इसको जो

निंदा पर्क लगाया गया है कि "मत्थे टिका नहीं" तो क्या सिक्ख लोग मस्तक पर टिका लगाते हैं हमने तो सिक्खों को टिका कभी नहीं देखाहै। फिर आपने कहाकि इसको जो निन्दा पर्क समझा गया है कि "ओन्हां पिण्ड न पत्तल किरिया न दीवा मुए किथाओं पाई, अठ सठ तीरथ देन न ढोई ब्राह्मण अन्न न खाई।"

इस पर भी विचार करके देखो कि कैसी भूलकी बात है कि यहां पर तो ऐसे लिखा है, और फिर इन्हीं बातों का गुरु नानकदेवजी ने स्वयं खण्डन भी किया है, देखो जन्मसाखी गुरु नानक साहब उर्दु में अमृतसर प्रेस में छपी जिसका पृष्ट २०७, जब गुरुजी ज्योति जोत समावन लगे तब संगत ने पूछा कि आपकी दीवा वत्ती आदि क्या करें, तब गुरु जी ने कहा, राग आसा—

"दीवा मेरा एक नाम दुःख विच पाया तेल ।
उन चानन ओह सुक्खिया चौंका जमसों मेल ॥
रहाओ "पिण्डपत्तल मेरीकेसों किरिया सच्चनाम करतार
ऐथे ओथे अग्गे पिछे एह मेरा आधार ॥
गंग बनारस सिफ्त तुम्हारी न्हावे आतमराम ।
सांचा न्हावण तां थिए जहां अह निस लागो भाव" ॥

श्रीमहासतीजी महाराज ने कहा कि, देखो बावा नानक साहव जी ने क्या अच्छा कहा है कि, मेरी क्रिया पिण्ड पत्तल आदि कैसी है, इस लोक और परलोकमें सब स्थानोमे जो ईश्वर का सच्चा नाम है इसीका मुझे आधार है, (ईश्वर परमात्मा का जो गुण गाता है यही गंगा वनारस तीर्थ है) इसमे आतमराम न्हावे तव सच्चा स्नान होता है कि जहां दिन रात यही भाव लगे हों। अव देखिए कि, पहिले तो इन्ही उपरोक्त कर्मोंका न करना निन्दा में दाखल किया है और अव स्वयमेव इनका न करना स्वीकार किया है।

अव आप श्रोताजन स्वयं विचारलें कि यह सव बाते कहां तक ठीक हैं और यह जो निन्दा मे दाखिल किया है कि ब्राह्मण अन्न न खाएं, सो जैनीयोंके हां तो ब्राह्मण अन्न प्रसन्न होकर खाते हैं वरंच सिक्खोंके हां ब्राह्मणोंको अन्न खाते कम सुना है वे अपने सिक्खोको ही खिलाते है।

सो अव किस प्रकार माना जावे कि, गुरु नानकदेवजी ने ऐसा कहा है या वैसा कहा है।

जव श्रीमहासतीजी महाराज ने इन चारों ही प्रश्नोंके ऐसे संतोषजनक उत्तर देदिए तो वे

मोहर हमको भी दे दीजिए, तब ब्राह्मण बोला तुझे किस बातकी दूं मैं यूंही तो नहीं ले आता मेरा मस्तिष्क (मगज) लगताहै एक घण्टा परिश्रम उठाकर एक मोहर पाता हूं, तब नापित रुष्ट हो गया और जब राजाका क्षौर करने गया तो चुगली की कि हे महाराज ? यह ब्राह्मणजो आपको कथा सुनाने आताहै वह कहताहै कि भाई मोहरके लोभसे राजाको कथा सुनाता हूं परन्तु मुझको राजाके मुखसे दुर्गन्धि आतीहै इसलिए मैं नाकढांप कर अर्थात् मुंडासा बांधकर कथा सुनाता हूं आपने कभी विचार किया होगा कि वह खुले मुंह कथा नहीं करता, तब राजाने कहा अच्छा। उसकी नाक ऐसी पतलीहै तो अब ध्यान रखूंगा, तब वह नाई फिर पण्डितके पास आया और कहने लगा कि आज मैं राजाका क्षौर(हजामत)करने गयाथा तो वे कहते थे कि पण्डितजी कथा तो अच्छी करते हैं परन्तु उनके मुखसे दुर्गन्धि आती है इसलिए हम को घृणा होतीहै, अबतो कि किसी औरसे कथा सुना करेंगे यह सुनतेही मै सीधा आपके पास आया हूं कि आप राजाकी इच्छाको जानलें। मैं इस विषय में आपको एक उपाय भी बतलाता हूं यदि पसन्द

हो तो स्वीकार करें, पण्डितजी बोले कहिए, नाई ने कहा, कल, कथा सुनाने जाएं तो मुंडासा बांध कर सुनावें। पण्डितने नापित की सम्मति को मान लिया और जब कथा सुनाने गए तो मुख पर मुंडासा बांध कर सुनाने लगे। राजाको नापितके कथनसे खियाल तो पहले ही से था, मनमें सोचा कि नाई सत्य कह गया है कि मुंडासा बांध लेता है। राजा जी अपने क्रोध को प्रकट न करके पूर्ववत कथा सुनते रहे परन्तु कथाके समाप्त होने पर पण्डित को कहा कि पण्डित जी इस समय हमारेपास मोहर नही है हमारी चिट्ठी खजानचीके पास ले जावे वह आपको तुरंत मोहर देदेवेगा। ब्राह्मण बोला बहुत अच्छा अतः महाराजने एक चिट्ठी लिख कर ब्राह्मण को देदी। पण्डित जी चिट्ठी जेबमे डाल कर तत्काल खजानेकी ओर चलपड़े परन्तु भाग्यवश वही नापित मार्गमें मिला। ब्राह्मणने सोचा कि यह नाई नित्य मुझसे एक मोहर मांगा करता है इस लिये आजकी मोहर इसको ही देदूं इसकी मांग हटेगी और मेरा खजाने तक जानेका कष्ट मिटेगा सुतरां उस ब्राह्मणने वह चिट्ठी उस नापितको देदी और कहा कि जा आज तू ही मोहर खजानेसे लेले। नाई बहुत ही प्रसन्न

हुआ और वहींसे खजानेको चलदिया और जाते ही वह चिट्ठी खजानचीके हाथमें देदी और कहा कि मोहर देदो खजानचीने लिफाफा खोला तो एक आज्ञप्ति (हुकमनामा) पाया जिसमें यह लिखा था कि इस पत्रका लाने वाला तुमसे एक मोहर मांगेगा तुम तुरन्त उसकी नाक काटलेना खजानची महाराजकी आज्ञानुसार तत्काल ही चाकू लेने अन्दर चला गया, नापित बहुत प्रसन्न हुआ कि देखो कितनी शीघ्रता से मोहर लेने गया है, खजानची शीघ्र ही लौट आया और झट पट चाकूसे उसकी नाक काट डाली नाईने कहा हैं हैं यह क्या मोहरके बदले मेरी नाक क्यों काट ली तब खजानची ने कहा कि इस चिट्ठी में सरकारी हुकम यही था तब नाई रोता हुआ ब्राह्मणके घर आया और कहा तूने मेरे साथ बड़ा छल किया जो चिट्ठी देकर मेरी नाक कटवादी, ब्राह्मण चकित रह गया कि हैं यह क्या हुआ मुझे तो इस बात का कुछ पता ही न था कि सरकारने इसमे ऐसा लिखा है तब नापित अपने मनमे समझ गया कि यह मेरी पिशुनता (चुगली) करने का फल है ब्राह्मणका दोष नहीं और ब्राह्मण भी इस भेद को

सुनकर हंसपड़ा—किसी कविने कहाभी है—

भले भलाई, बुरेबुराई कर देखोरे भाई ।
चिट्ठि दीनी ब्राह्मणको, नाक कटाई नाई ॥ इत्यर्थः—

जब श्री महासती पार्वती जी महाराजने सत्यके दीपकसे यथार्थ पदार्थ का दर्शन करा दिया और बतला दिया कि वे शंकाएं निर्मूल थी तो बहुत से अन्य मतके पुरुषोंने जैन धर्म के महत्त्वको जान लिया और उसके नियमोको मुक्तिका दाता समझ कर उन पर यथा शक्ति चलना स्वीकार कर लिया अर्थात् समायिक सम्वर आदिभी करने लगगए और उनलोगोंने अमृतसरके जैनीभाईयोके साथहोकर आप के चरणो में स०१९४६के चतुर्मासा करनेकी अतिशय विनतीकी जिस पर आपने कहा कि हमारी इच्छा स्यालकोटकी ओर जानेकी है परन्तुचौमासा तो वहीं का होगा जहां की श्री श्री १००८ पूज मोतीरामजी महाराज आज्ञा देंगे आपके इस वचनको सुनकर लाला सोहनलाल जौहरी, लाला सुखानन्द, लाला मोहनलाल, लाला सधीराम, लाला भानाशाह आदि चतुर्मासेकी अनुज्ञा लेनेके लिए मालेर कोटला चले गए जहां पूज्य मोतीरामजी विराजमानथे उनके दर्शन किए और फिर उनके चरणों मे प्रार्थना की, कि

हुआ और वहींसे खजानेको चलदिया और जाते ही वह चिट्ठी खजानचीके हाथमें देदी और कहा कि मोहर देदो खजानचीने लिफाफा खोला तो एक आज्ञप्ति (हुकमनामा) पाया जिसमें यह लिखा था कि इस पत्रका लाने वाला तुमसे एक मोहर मांगेगा तुम तुरन्त उसकी नाक काटलेना खजानची महाराजकी आज्ञानुसार तत्काल ही चाकू लेने अन्दर चला गया, नापित बहुत प्रसन्न हुआ कि देखो कितनी शीघ्रता से मोहर लेने गया है, खजानची शीघ्र ही लौट आया और झट पट चाकूसे उसकी नाक काट डाली नाईने कहा हैं हैं यह क्या मोहरके बदले मेरी नाक क्यो काट ली तब खजानची ने कहा कि इस चिट्ठी में सरकारी हुकम यही था तब नाई रोता हुआ ब्राह्मणके घर आया और कहा तूने मेरे साथ बड़ा छल किया जो चिट्ठी देकर मेरी नाक कटवादी, ब्राह्मण चकित रह गया कि हैं यह क्या हुआ मुझे तो इस बात का कुछ पता ही न था कि सरकारने इसमें ऐसा लिखा है तब नापित अपने मनमे समझ गया कि यह मेरी पिशुनता (चुगली) करने का फल है ब्राह्मणका दोष नही और ब्राह्मण भी इस भेद को

की कि, आप उसमें व्याख्यानकी कृपा किया करें सुतरां उनकी इच्छानुसार आपके व्याख्यान उस हवेलीमें प्रतिदिन होने लगे और श्रोता जनों की संख्या पांचसौके लगभग होती थी बहुतसे अन्यमती लोगोने आपके उपदेशसे नाना प्रकारके नियम भी किये अर्थात् कई लोगोंनें मांस भक्ष्यादि सात कुव्यसनों का परित्याग किया और बहुत लोगोंने झूठी साक्षि तक देनेका त्याग कर दिया और जैनमें जो आठ दिनके पर्यूपन पर्व चतुर्मासी पर्वसे ४२वें दिन प्रारम्भ हो कर उनचासवें दिन संवत श्री पर्व होकर समाप्त होते हैं इन आठ दिनोमे वहांके जैनी भाईयोंने रोटी दाल पूरी कड़ा (हलुआ) आदि दीन दुखियों में वांटा और दूधकी सबील (प्याऊ) लगवादी अर्थात् जलके स्थानमें दूध पिलाते रहे। किं बहुना आपके इस चतुर्मासामें वहांके निवासियोंने दया धर्मका भली भान्ति परिचय करादिया, इस चतुर्मासेमे एक और उपकार हुआ वह यह था कि जो अमृतसर की बिरादरीका आपसमे कुछ समयसे झगड़ा चला आता था वह दूर होगया अर्थात् उनका द्वेषभाव आपकी पवित्र वाणीके प्रभावसे दूर होगया और सबके खण्डित हृदय मिल गए और सब ओर

श्री श्री श्री महासती पार्वती जी महाराजके अमृत-सर पधारने से जैन धर्म का वड़ा प्रचार हुआहै वहुत से अन्यमती लोगोंको भी जैन धर्मकी लग्न होगई है । इसलिए यदि आप श्री महसतीजी महाराजको अवके सं० १९४६ वि० का चतुर्मासा अमृतसरमें ही करनेकी आज्ञा देदें तो वहुत ही उपकार होगा और आपकी वड़ी ही कृपा होगी । इस पर श्री पूज जी महाराजने रीति पूर्वक आज्ञा देदी और भाई आज्ञा लेकर अतीव प्रसन्नता से वापस आकर सर्व वृत्तान्त श्री महासती जी महाराजके चरणों में सुना दिया । सुतरां आपने श्री पूजजी महाराज की आज्ञानुसार वहां का ही चतुर्मासा मानकर विहार कर दिया

सं० १९४६ वि० का चातुर्मास्य अमृतसर में

आप स्यालकोट पसरूरकी तर्फ धर्मका प्रचार करती हुई विचर कर पूज्यजी की आज्ञानुसार पुनः अमृतसर पधारीं, आप यह तो भलीभांति जान ही चुके हैं कि आपकी प्रशंसा अमृतसरमे कहांतक थी अब चतुर्मासामे पूर्वोक्त परिषधा यहां तक बढ़ गई कि उस स्थानमें श्रोताजनों के वैठनेको स्थान न मिला तव श्रावक जनोने सरदार नरेन्द्रसिंह जी की हवेली की याचना करके आपकी सेवामें विनती

की कि,आप उसमें व्याख्यानकी कृपा किया करें सुतरां उनकी इच्छानुसार आपके व्याख्यान उस हवेलीमें प्रतिदिन होने लगे और श्रोता जनो की संख्या पांचसौके लगभग होती थी वहुतसे अन्यमती लोगोने आपके उपदेशसे नाना प्रकारके नियम भी किये अर्थात् कई लोगोनें मांस भक्ष्यादि सात कुव्यस्नो का परित्याग किया और वहुत लोगोने झूठी साक्षि तक देनेका त्याग कर दिया और जैनमें जो आठ दिनके पर्यूषन पर्व चतुर्मासी पर्वसे ४२वें दिन प्रारम्भ हो कर उनचासवे दिन संवत श्री पर्व होकर समाप्त होते हैं इन आठ दिनोमे वहांके जैनी भाईयोने रोटी दाल पूरी कड़ा (हलुआ) आदि दीन दुखियो मे वांटा और दूधकी सवील (प्याऊ) लगवादी अर्थात् जलके स्थानमे दूध पिलाते रहे। कि वहुना आपके इस चतुर्मासामें वहां के निवासियोने दया धर्मका भली भान्ति परिचय करादिया, इस चतुर्मासेमे एक और उपकार हुआ वह यह था कि जो अमृतसर की विरादरीका आपसमे कुछ समयसे झगड़ा चला आता था वह दूर होगया अर्थात् उनका द्वेषभाव आपकी पवित्र वाणीके प्रभावसे दूर होगया और सबके खण्डित हृदय मिल गए और सव ओर

शान्तिका साम्राज्य होगया और जो परदेशोंसे आपके दर्शनार्थ यात्री आते थे उनका सबने मिलकर तन मन धन से सत्कार किया, और जो पुस्तक आपने "ज्ञान दीपिका" नामसे हुश्यारपुरमें बनानी आरम्भ की थी उसको इस चतुर्मासे में समाप्त करदी और लाला भानाशाह अमृतसर निवासीने आपसे लेकर लाला मेहरचन्द लक्ष्मनदास लाहौर वालेके पास छपने के लिये भेजदी और उन्होंने उसको सं० १९४६ वि० में छपा कर प्रकट करदी॥

ज्ञान दीपिका ग्रन्थ के विषय।

पाठक वृन्द! श्री १००८ महासती पार्वतीजी का बनाया हुआ ज्ञान दीपिका नामक ग्रन्थ सचमुच पढ़नेके योग्य है अर्थात् मनुष्यके सुधारका एक मात्र साधन है और ज्ञानका एक भण्डार है इसके पढ़ने से प्रत्येक मनुष्य पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जिस प्रकार जगत्के विचित्र पदार्थ किसी प्रदर्शनीमें विद्यमान होने पर भी अंधेरी रात्रिमें दिखाई नहीं पड़ते, जब तक कि उनको दीपक आदिक के प्रकाशसे न देखा जावे, इसी प्रकार यह ज्ञान दीपिका भी सत्यासत्य पदार्थोंके यथार्थ

स्वरूप के देखनेका एक साधन है। इस ग्रन्थके दो भाग है, पहले भागमे आपने जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थ आत्माराम जी सम्वेगी रचितकी भूलोके सुधारके सम्वध में कुछ टिप्पणिआं दी है तथा आत्माराम जी ने जो जैन मुनियोंकी ढूंढिए नामसे निन्दा की है उसका उत्तर दिया है यथा सं० १७१८ वि० के लगभग सूरत नगर के निवासी लवजी नामक एक साहुकार ने जो जाति से सिरीमाल थे, वज्रांग यतिके पास दीक्षाली थी और शास्त्रोंको भली भान्ति पढ़ा था, उन्होने ज्ञानके दीपकसे जव देखा कि शास्त्रोका अभिप्राय जो है उस पर यह यति लोग नही चलते हैं अर्थात् इनकी क्रिया शास्त्रोके विरुद्ध है तो वे वहुत घवराए क्योकि यतिओंके शास्त्रानुसार न चलनेका कारण यह था कि श्री १००८श्रीमद्भद्रवाहु स्वामीजी महाराज व्यवहार सूत्रकी चूलिकामें पहले हीं लिख गए थे कि वारह वर्षी कालके पश्चात् यति लोग मूर्तिकी स्थापना करावेंगे। यथा सूत्र—

चेइयं ठपावेइ दव्वहारिणो मुनि भविस्सइ लोभेण माला रोहेण देउल उवहाण उद्यमण जिन विंव पइ ठावण विहिउ माइ एहि वहवे तव पभावा पयाइस्संति अविहे पंथे पड़िस्सन्ति इत्यादि।

अर्थ—मूर्तिकी स्थापना करावेंगे द्रव्यधारी (धन दौलत रखने वाले) मुनि (साधु) घने (बहुत) हो जावेंगे लोभ करके मालारोपण अर्थात् मूर्तिके कण्ठमें फूलोंकी माला डाल कर फिर उसका मोल करावेंगे अर्थात् नीलाम करावेंगे और पंचमी तपादिकाउद्यमन (ओज्झमन) करावेंगे। जिन बिंब पइठावणविहिउ (तीर्थंकर देवोंकी मूर्ति) की प्रतिष्ठा करावेंगे। इत्यादि बहुत विधियें बतावेंगे अविहेपथे पड़िस्सन्ति (उल्टे पंथ पड़ेंगे) सो इस भविष्यत् वाणीके विरुद्ध तो हो ही नहीं सकता था इस लिये ऐसा ही हुआ, सुतरां सुना जाता है कि सं० ५३८ वि० के पश्चात् बारह वर्षका अकालपड़ा उसमें यहसबबातें आरम्भहो गई क्योंकि साधुओं को ४२ दूषण टाल कर अन्न जलका मिलना कठिन हो गया था इस लिये बहुतसे साधु संयम वृत्ति से गिर गए अर्थात् कई वैद्यक आदिकार करने लग गए कई मंदिर मूर्तिआं बनवा कर बैठ गए शनै २ यह सब बातें भविष्यद् वाणीके अनुसार प्रचलित होती गई, कहीं कहीं विशेषतः ऐसे क्षेत्रोंमे जहां अकालका अधिक कष्ट न था वहां कोई कोई साधु रहभी गये थे। जैसेपूर्वोक्त संवत्१७२० वि० में लवजीने अपने गुरुको कहा था कि तुम सूत्रोंके अनुसार आचार क्यों

नही पालते, गुरु बोला कि पंचम कालमें शास्त्रोक्त सम्पूर्ण क्रिया नहीं पल सकती। तब लवजी ने कहा—कि तुम्हारा आचार भ्रष्टहै मैं तुम्हारे पास नहीं रहूंगा मैं तो सूत्रानुसार क्रिया करूंगा तब उसने सूत्रानुसार पूर्वोक्त मुख वस्त्रिका मुख पर लगाई जैसे कि पूर्व काल में मुनिजन लगाया करते थे और विधि पूर्वक कठिन क्रिया करनेलगे और जो लोग उन्हें पूछते कि यह कठिन क्रिया कहांसे निकाली है तब वे उत्तर देते कि शास्त्रो से ढूंढ कर, तब लोग उन्हें ढूंढिया ढूंढिया कहने लगे अर्थात् यह संज्ञा सं० १७२० वि० में जैनको मूर्ति पूजक सम्प्रदाय ने दी है।

फिर महासती श्री पार्वतीजी महाराज ने लिखा है कि आत्मारामजीने जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ प्रथमावृत्ति के ५७ पृष्ठ में एक पांच वर्ष के बालक को दीक्षा देना लिखा है परन्तु जैन सूत्रो मे पांच वर्षके बालक को दीक्षा देनेकी आज्ञा नही है यदि कोई देवेतो वह जिन आज्ञासे विरुद्धहै फिर आत्मारामजी लिखते हैं कि इस पांच वर्षकी आयुमें दीक्षालेने वालेसाधुने८४ वर्ष संयम पाला जिसमे तीन करोड ग्रंथ रचे। श्री महासतीजीने उत्तरमें लिखाहै कि एक वर्षके ३६०

दिनोके हिसावसे ८४ वर्षों के ३०२४० दिन हुए यदि वह प्रति दिन सौ सौ पुस्तक तय्यार करते तौ भी केवल ३०२४००० पुस्तकें वन सकती थीं इसलिये इस गप्पको आत्मनंदियोके सिवा और कौन मान सकता है।

फिर श्री महासतीजी महाराज लिखती हैं कि, यदि किसीका ग्रन्थसे अभिप्राय श्लोकसे हो तो यह भी झूठहै क्योंकि आत्मारामजी ने जैन तत्त्वादर्शके पृष्ठ ५९५ पर लिखाहै कि यश विजय गतीने १०० ग्रन्थ रचे हैं तो क्या ऐसे पण्डित की प्रशंसा १०० श्लोक के लिए लिखी है।

इससे सिद्ध हुआ कि ग्रन्थोंसे उनका अभिप्राय पुस्तकों से ही है श्लोकों से नहीं, इस प्रकार की अनेक भूलोंका सुधार पहिले भागमें कियाहै और चार निक्षेपोंका स्वरूपभी दिखलाया है।

इसके दूसरे भागमे अत्यन्त संक्षेपके साथ श्री महासतीजी ने यह दिखलायाहै कि जैनधर्म और अन्य मतोंमें क्या भेदहै। और देव, गुरु, धर्मके लक्षण क्याहैं। इस जगत् रूप झूलने की चार गति रूप चार पटड़ीओंका स्वरूप और उनके कारण जगत् की असारता, और हिंसा

मिथ्यादिके त्याग की और दया क्षमा आदि के ग्रहण करनेकी शिक्षाभी दी हैं। तथाअपने पापोंको जानना और उनसे बचने का उपाय और गृहस्थ को धर्म कार्य्योंमें अहर्निश किस प्रकारकी क्रिया करनी उचितहैं जिसमें सामायिक का पाठ और सामायिक करनेकी विधिभी लिखी है इत्यादि॥

इस पुस्तकको आपने ऐसी सरल भाषा में लिखाहै कि जिसको थोड़ा पढ़े हुए भी समझकर सुमार्ग पर चलनेका उद्योगकर सकतेहैं इस लिए आशाहै कि जो लोग इस पुस्तकको निष्पक्ष हो कर पढ़ेंगे वे इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।

आपका अमृतसरसे विहार।

चर्तुमासा समाप्त होने पर आपने अमृतसरसे गुजरांवालेकी ओर विहार कर दिया। अमृतसर के समस्त जैन श्रावक और श्राविका तथा बहुतसे अन्यमतके लोग खत्री वैष्णव ब्राह्मण एक सहस्रके लगभग भीड़ भाड़ श्री महासतीजी महाराज की सेवामें विहारके समय साथ थे आप नगरके चाटी पिंड दरवाजेके बाहर तालावके किनारे ला० महेश दास जी अरोड़ा की सरायमे ठहर गई। भक.

स्वामीने जब इतनी भीड़ देखी तो बाहर निकल कर कहने लगे कि कौन महात्मा हैं जिनकेसाथ इतने लोग हैं,जब लोगोंने श्रीसतीजीका नाम बतलाया तो वे शीघ्रहीअपनी कोठीमें चलेगए और तुरन्तही एक टोकरा सेवोंके फलोंका और पांच रुपये रोक लेकर आपकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले कि महाराज मेरी यह भेंट स्वीकार करें । आपने उत्तर दिया, यह भेंट हमारे योग्य नहीं है हां यदि कुछ भेंट देना चाहते हो तो कुछ अभक्ष पदार्थ मांसादि का अथवा झूठ बोलने आदिकका परित्याग करो। तब वे समझ गए कि यह त्यागी साधुहैं न रोकड़ लेंगे और ना ही सबजीको हाथ लगायेंगे, ऐसी भेंटोंके लेने वाले साधु तो मिलते ही रहते हैं परन्तु ऐसे निर्लोभी साधु कही कहीं मिलते हैं ।

इसलिये उन्होंने कुछ धर्म विरुद्ध और राजविरुद्ध झूठ बोलने के झूठी साक्षी देनेके और मद्यपानके परित्यागकी भेटदी पाठक ! आप समझ गए होंगे कि, जैन मुनिओंकी भेट रुपये भूषण व भूमि आदि पदार्थोंकी नहीं होती उनकी यही भेट है कि लोग कुमार्गसे बच कर सुमार्गमें लग जाएं। दूसरे दिन आपने वहां ही व्याख्यान दिया और वहांसे लाहौर

की ओर (तर्फ) विहार कर दिया और लाहौरमें कुछ दिन उपदेश करके गुजरांवालेको विहार कर दिया । पाठक ! आप जानते हैं कि जैन मुनिओं की कैसी कठिन वृत्ति होती है अर्थात् शीतकाल व ग्रीष्मकालमें नङ्गे पाओं पैदल विचरना सूर्य्य ऊगनेके पश्चात् विहार करना और अस्त होनेसे पहले किसी गाओं में ठहरजाना और कूआ वापी आदिक से जल लेकर न पीना अर्थात् अग्नि आदिक के संस्कार हुए विना कच्चा जल नहीं पीना फल फूल आदिक हरी सबजीका न खाना कोई भक्त जन उनके लिये भोजन पानी बना करदे, व मोल लेकर दे, तो नहीं लेना जो गृहस्थिओंने अपने कुटंबके लिये बनायाहो उसमेंसे थोड़ा २ घर २ फिरकर विधि पूर्वक याचना करके लेना इत्यादि इसलिये यात्रामें अनेक प्रकारके परीषह (कष्ट) सहने पड़ते हैं इसी कारण लाहौर और गुजरांवालेके बीच गाओमें आहार पानी संयम वृत्तिके अनुसार थोड़ा मिला और मंजिलभी भारी की गई इस लिए आपको मार्गमें ज्वर हो गया वहां औषधि कहां प्रत्युत उष्ण जलके स्थानमें छाछ मिलती रही उसीका सेवन करने से शिरमें पीड़ा पेटमें दर्द होने लगी परन्तु आपने

इन कष्टोंके होते हुए भी अपनी यात्रा को बंद न किया। जब गुजरांवाला तीन चार कोस रहगया तो गुजरांवाले के एक सौ के लगभग भाई और बाई आप की अभ्यर्थना(लेने) को उपस्थित हुए, आपके कष्टको देखकर सब व्याकुल होगए सबने यही उचित समझा कि आप का गुजरांवाले में पहुंच जानाही उचितहै उन्हों ने प्रार्थना की, कि आप को विहार से कष्ट तो अवश्य होगा परन्तु उचित यही है कि आप शीघ्र ही नगर में पधारें क्योंकि वहां उपाय हो सकता है आपने उन की विनती को स्वीकार कर के गाओं से विहार कर दिया और सायंकाल गुजरांवाले पहुंच गईं और कुछ आहारभी किया परन्तु रात्रि को आवश्यक प्रतिकर्मणा के पश्चात् जिगर शूल (गुम हैज़ा) हो गया। रात्रिका समयथा इसलिये चिकित्सा न हो सकी क्योंकि जैनी साधुओंका यह धर्महै कि रात्रि को न खाना न पीना। जब लोग प्रातःकाल दर्शनार्थ व व्याख्यान सुननेके अर्थ आए तो उन्हें पता लगा कि रात्रिमें बहुत खेद रहा तब उन्होंने तत्काल नगरके कई एक योग्य चिकित्सक बुलाए जिन्होंने रेचन (जुलाब) के लिये कहा, साधु की

वृत्ति के अनुसार ओषधि ली गई परन्तु दस्त (जुलाव) न आए प्रत्युत कष्ट और भी बढ़ गया तब श्रावक भाई घबराए और तुरंतही स्यालकोट के श्रावकोंको (टेलीग्राम) तार दी। तारके पहुंचते ही एक सौ के लगभग श्रावक अच्छे अच्छे योग्य वैद्योको साथ लेकर स्यालकोटसे गुजरांवाले पहुंचे और जिस जिस नगरमें आपकी व्याधि (बिमारी) का समाचार पहुंचा वहां वहां से भी लोग गुजरां वाले आ पहुंचे, यहां तक कि रावल पिण्डी तथा कुछ नगरोके लोग तो अपने साथ दुशाले और किम्ख्वाब तकभी लेआए और अमृतसर से चंदन मंगवानेको कहा गया और उस समय स्यालकोट की पचास साठ स्त्रियोने यह नियमकर लिया था कि, जब तक हमको यह शुभ समाचार न मिलेगा कि श्री महासती पार्वतीजी महाराज नीरोग हो गईहै उससमय तक हम दूध दही घी निमक मीठा आदि न खाएंगी अर्थात् आंवल व्रत करेंगी। वैद्योकी सम्मातिके अनुसार और साधु वृत्तिके अनुकूल चिकित्सा होता रहा। अन्तमें दया धर्म के प्रतापसे और आपके पुण्योदयसे शनै २ स्वास्थ्य (आराम) बढ़ने लगा तब लोगोंने दीनोंमे दान

और भाइयोंमें मान सतकारादि करके बहुत आनन्द मनाया क्योंकि बहुतसे नगरोंके लोग आपके दर्शनों को आए हुए थे इसलिये नगरमें आपके पधारनेका समाचारसर्व साधारणमें फैलगयाथा तो बहुतसे अन्य-मती भी आपके दर्शनोंको आने लगे। जब श्री सती जी स्वस्थ हुई तो तत्काल ही आपने व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया यद्यपि दुर्बलता बहुत थी परन्तु आपने उसकी ओर ध्यान न दिया। थोड़े दिनोंके व्याख्यान से धर्मका इतना प्रचार हुआ कि, उस मकानमें श्रोता जनोंके बैठनेके लिए पर्य्याप्त स्थान न मिला तब लोगोंने कहा कि व्याख्यान किसी बड़े मकानमें होना चाहिए जिस पर राय मूलसिंह व लाला शंकरदासजी क्षत्रिय मधोकने विनती की कि, हमारा मकान बहुत बड़ा है महाराज जी का व्याख्यान वहां होना चाहिए।

गुजरांवालेमें व्याख्यान दयाके विषयपर।

श्री महासती पार्वती जी महाराजने राय मूलसिंह व शंकरदास क्षत्रिय मधोक की विनती पर उनके मकान पर व्याख्यान देना स्वीकार किया और दो दिन वहां ही व्याख्यान किया श्रोता

जनों की संख्या दस पंद्रहसौ की थी आपने श्री उत्तराध्ययन सूत्रके अठारहवें अध्यायका व्याख्यान सुनाया जिसमें ऐसा वर्णन किया।

कपिलपुर नगरी का राजा संयति नाम जो चौबीसवें तीर्थंकर महाराजसे कुछ समय पहले इसी आर्य्यावर्तमें था जिसको धन यौवनके मदके प्रभाव और सतगुरु की संगतिं के अभाव से आखेट (सिकार) करने का स्वभाव था एक दिन वह राजा कई अपने सवारो को साथ लेकर वन में आखेट करने गया जूंही राजा को एक मृग देख पड़ा और उसकी ओर लक्ष्य करके धनुप ज्या पर बाण लगाया (धनुपका चिल्ला) चढ़ायातो मृगदेखते ही घबरा गया क्योंकि संसार में मृत्यु से बढ़ कर और कोई भय नही है मृग का हृदयकमल मुर्झा गया और नेत्र पथरा गये क्योंकि हृदयकमल और नेत्रोका परस्पर संबंधहै अर्थात् हृदयमें आनन्द हो तो नेत्रों में भी आनन्द छा जाताहै और हृदयमें दुःख हो तो नेत्र भी मुर्झा जातेहैं। इसलिए उस मृगका हृदय कमल मुर्झातेही उसके नेत्र भी सूख गए मृग की शक्ति क्षणमात्र में जाती रही और मृग सोचताहै कि कहां मेरी मृगी कहां मेरे बच्चे

हाय हाय दुष्ट कालने मुझे कहां आ घेराहै मृग इस विचारमें हीथा कि वह बाण जिससे वह भयभीत हो रहाथा आनकी आनमें उस की देहमें बिजली के समान खुभ गया और जो पीड़ा उस निर्दोष मूक जन्तुको हुई उसको सिवा उसके अथवा ज्ञानी महाराज के और कौन जान सकता था। परन्तु प्राणिओंको प्राण ऐसे प्रिय होते हैं कि इस विकट दशामें भी उसने अपने प्राणोंके बचाने का प्रयत्न न छोड़ा अर्थात् तड़पताहुआ वहां से भागा, समीप ही एक दाखोंका मण्डप उसको मिला जिसमें वह प्राण बचाने की इच्छा से घुस गया परन्तु बचाव कैसे सम्भव था जब कि बाण का विष शरीर में रुधिरके साथ मिल चुकाथा। बाणकी उत्कट पीड़ा को न सहन करता हुआ घाव के ठण्डे होते ही प्राणान्त हो गया। इतने में राजा संयति भी घोड़े से उतर कर अपने आखेट (सिकार) को ढूंढता हुआ उस द्राक्षा मंडप में प्रवेश हुआ। झुक कर क्या देखता है कि मृग तो मरा पड़ा है और एक जैन मुनि समाधि लगाए बैठे हैं राजा ने विचारा कि यह मृग तो इसी मुनिका पालतु जान पड़ता है मैंने इसको मारकर निस्सन्देह मुनिका घोरअपराध

कियाहै राजा बहुत भयभीत हुआ और अपने इस अपराध की क्षमा मांगने को कुछ आगे बढ़ा और उसी मुनि के चरणों में नमस्कार करके विनती करने लगा कि मेरा अपराध क्षमाकरें मुझेप्रतीत (मालूम) न था कि यह मृग आपका है।

साधु महाराज ध्यानारूढ़ थे इस लिए कुछ उत्तर न दिया तब साधुके मौन रहनेसे राजा और भी भयभीत हुआ और घबराया कि साधुमहाराज मुझपर अवश्य कुपित हैं कहीं ऐसा न हो कि मुझे अभी शाप देकर भस्म कर दें।



राजाको निर्भयतापर साधुका उपदेश।

तब राजा उक्त विचारसे व्याकुल होकर कांपने लगा और उसका हृदयकमल मृत्यु के भय से मुर्झा गया और नेत्रशुष्क होगये और मनमेंसोचने लगा कि अब मेरे प्राण कैसे बचेगे हाय! कहां हैं मेरी प्राणप्यारी रानियां, कहां हैं मेरे हृदयके टुकड़े प्यारे पुत्र और कहां है मेरा राजपाट और भोग विलास की सामग्रिये हाय हाय मेरेप्राण इस बनमेंही चले॥

तदानन्तरानि वह महानुभाव गर्दभाली नामक साधु अपने ध्यानको पूरा करके बोले हे राजन्!

मुझसे मत भयकर मैं तो साधु हूं साधु कभी किसी को दुःख का कारण नहीं होते यह सुनते ही राजाके हृदयसे सब भयदूर होगया और चित्तमें धीर्य आगई तब साधु महाराजने कहा कि हे राजन् जिस समय तू मेरे सन्मुख आया था और शापके कारण मृत्युके भयसे डरता था उस समय तेरे मनकी दशा कैसीथी और अब जो मैंने तुझे अभय दान दिया है अब तेरी दशा कैसीहै राजा-हे स्वामिन्! उस पहली दशाका दुःख और वर्तमान दशाका सुख अनुमानसे वाहरहै और नाहीं इसके वर्णन करने की मेरे पास कोई युक्तिहै।

साधु—क्या तुझे पहली दशा अच्छी प्रतीत हुई व पिछली।

राजा—हाय हाय पहली दशा तो बड़ीही बुरी दुःखदाईथी पिछली महासुखदायक वचनअगोचरहै।

साधु—हे राजन्! इसीप्रकार बनके पशु पक्षि और प्राणिमात्रको जब मत्यु दृष्टि सन्मुख आतीहै तब सबकी दशा ठीक उसी प्रकारकी हो जातीहै जैसी तेरी पहली दशाथी अर्थात् वह उन सबको ऐसी ही बुरी लगतीहै जैसी तुझको लगी थी, अपितु जैसे मेरे अभय दानदेनेसे तेरी पिछली

दशा हुई है तैसे तू भी इन सब प्राणिमात्रोंको अभय दानदेकर अपनी सी इस पिछलीदशा में पहुंचादें। तब राजाने भी अपनी मतिकी तुलासे दोनों दशाओंकी तुलनाकी और उस मुनिके साम्हने ही कानको हाथ लगाकर कहा कि मैं आज से पीछे कदापि किसी प्राणिको अपनी पहलीसी दशामें न डालूंगा इत्यादि।

इस कथनको सुनाकर आपने श्रोता जनोंके हृदयों पर दयाभावका सच्चा चित्र (फोटो) खैंच दिया, और महासती पार्वतीजी महाराजने अपने पवित्र उपदेश का प्रभाव डालते हुए यह भी कहा कि, जिसका बदला आपसे न दिया जाय उसको लेना भी न चाहिये अर्थात् यदि तुम अपने प्राण देना नहीं चाहते तो दूसरेके प्राण भी न लो जैसे कोई मनुष्य जब किसीसे भाजी (व्यौहार) लेने लगताहै तो वह सोच समझकर लेता है कि इसका बदला मै देसकूंगा व नहीं क्योंकि जितना लेवेंगे उतना देना भी पड़ेगा इसी प्रकारजो औरोंके प्राण लेतेहैं उनको भी सोचना चाहिये कि मुझे अपने प्राणभी देने पड़ेंगे, जैसा किसी कविने कहाहै।

जो सिरकाटे और का अपना रहे कटा।
सांईकी दरगाहमें बदला कहीं न जा॥

वरं एक बार दूसरेके प्राण हरनेकेदोष से एक ही बार अपने प्राणदेने पर छुटकारा न होगा अर्थात् कई जन्मों तक वारम्वार मरना पड़ेगा जैसे व्याज पड़ व्याज वधजाताहै इत्यर्थः-

इस पहले दिनके उपदेशको सुनकर लोगोंके हृदयों पर अहिंस्या परमधर्मका बड़ा ही प्रभाव पड़ा और कई मतान्तरी लोगोंने आखेट (सिकार) करना मांस खाना आदि छोड़ दिया और लाला शंकर-दासजी और कई लोगोंने विनाछाने जल तकका परहेज कर लिया और कहने लगे कि श्रीमती पार्वती देवीजी महाराजने हमलोगोंको प्रातिबोध-कर दिया अर्थात् सूतों को जगा दिया, दूसरे दिनके व्याख्यान में आपने संसारकी अनित्यता दिखलातेहुए निर्मोही राजाका कथनसुनाकर वैराग्य की मूर्ति सम्मुख खड़ी करदी, सभासद गद्गद् होकर वैरागके अश्रुभर लाये और स्त्री समाज पर तो महासतीजी महाराजके उपदेशसे लज्जा दया पतिव्रता आदि धर्मका बड़ा ही प्रभाव पड़ा और जैन मत के ज्ञान वैराग्य दयादि धर्म की प्रशंसा करते

हुए सभा विसर्जन हुई।

आप पूर्वोक्त पेदके कारण निर्बल तो हो ही रही थीं परन्तु लोगोंकी विनती पर आप दो दो अढ़ाई अढाई घण्टे तक एक ही चौकड़ी जमा कर व्याख्यान देती रही इसलिये आपको अजीर्ण होगया जो कई वर्षो तक रहा जिस करके आपको पुस्तकोके लिखने पढ़ने और बनानेमें बड़ी अंत्रायपड़ी ॥

सं० १९४७ वि० का चातुर्मास्य स्यालकोट दूसरीवार।

श्री महासती पार्वतीजी महाराजने गुजरांवालेसे स्यालकोट को विहार कर दिया जब स्यालकोटसे ३-४ कोस उरे ग्राओंथा वहां पधारीं तो स्यालकोटके तीन चार सौ भाई और बाई इनकी अभ्यर्थनाको उस ग्राओंमें उपस्थित हुएँ और बहुतसे भाई और बाई रास्तेमें मिलतेरहे नगर पहुंचने तक अनुमान१००० बाई भाई होगे क्यों नहों इसनगरमें लाहौर अमृतसरकी अपेक्षा जैन भाईयोकी संख्या अधिक है और महासतीजीका पधारना इसलिये रौनक अधिक होनी स्वाभाविक थी। अतः घर घरमें मंगलशब्द हो रहे थे कि धन्य है यह ..

कि जिसमें चौथे आरेकी साक्षात् वंनगी श्री महा सती पार्वतीजी महाराज हमारे क्षेत्रमें पधारी हैं। और वहांके श्रावक श्राविकाओंने आपके चरणों में प्रार्थना की, कि यदि आप हमारे क्षेत्रमें इस चतुर्मासेकी कृपा करें तो धर्मका बड़ा ही प्रचार होगा और जो हानिकारक रीतिआं प्रचलित हैं। वेभी कदाचित् दूरहो जाएंगी। आपने कहा कि चतुर्मासेकी आज्ञा तो श्री पूज मोतीरामजी महाराजके अधीन है। यह सुनतेही लाला रूपाशाह, लाला पालाशाह, लाला जट्टूशाह, लाला विसाखी शाह, लाला मिलखी शाह व लाला जमीतशाह व कर्मचन्द आदिक तीस चालीस श्रावक मालेर कोटला चले गए और श्री श्री १००८ पूज मोतीरामजी महाराजसे बिनती करके आपके चतुर्मासेकी आज्ञा ले आए।

सुतरां सं० १९४७ का चतुर्मासा आपका स्यालकोटमें हुआ इस चतुर्मासेमें लाख सवालाख सामायिक सम्बर और पांच सौ के लगभग दया और सात सौ के अनुमान पोसा और तसि बत्तीस अठाईयां हुई और एक बाई ने १५ दिनका एक व्रत किया और चार चार पांच पांच दिनके व्रत बहुत

हुए। और स्यालकोट में बालकों के विवाहों के अतिरिक्त कन्याओं के विवाह में भी ओसवाल (भावड़ा)बिरादरीमें नगर ज्योनारकीजातीथी आपके उपदेशसे कन्याओंके विवाह पर ज्योनारें बंद हो गईं और रात्रिके समय बरासूई (वरी) चढ़ानेकी जो रीति थी जिस में बहुत मूल्य वस्त्रोंके अतिरिक्त सोने चांदी के भूषण चार पांच थालोंमें दिखावेके लिए नंगे रख कर नाच और बाजोंकेसाथ मशालों की रौशनीसे बाज़ारोंमेसे पोलीसकी रक्षाके साथ जाते हुए कन्या वालेके मकान पर रात्रिके १२ बजे तक पहुंचतेथे जिसमे चोर उचको का भय और मशालोंसे वस्त्रो और दुकानोंके छप्परोको आग लग जानेका अन्देसा भी रहता था यह भी आपके उपदेश से बंद होगई,और धनी व निर्धनका पर्दा भी बना रहा। इसके अतिरिक्त और भी कई एक कुरीतिआं बन्द होगई जिनसे व्यर्थ रुपया लुटता था अर्थात् अपनी सामर्थ्यसे अधिक पुत्रके विवाहमें बराती (जनेती) रथ गाड़ी बहल लेजाने जिससे पुत्र वाले और पुत्री वाले दोनोंका द्रव्य अधिक व्यय होजाना फिर कर्ज चुकाने की चिन्तामे प्रणाम थिर न रहने ताते सामायिक नियमादिक धर्ममें हानी पहुचनी

और बूढ़ेके मरणेपर नगर जीमणहारका करनाबिरादरी में गिदौड़ा व लड्डुओंका बांटना इत्यादि जिनसे लोग वस्तुतः दुःखी थे वह सब कुरीतिआं आपके उपदेश से दूरहोगई जिससे बिरादरीको उभयलोकका लाभ हुआ और जो यात्री आपके दर्शनों को दूर दूरसे आते थे उनका आदर सत्कार भी स्यालकोट वालों ने जी खोलकर किया ।

चतुर्मासा समाप्त होने पर आप फिर गुजरां वाला में पधारी वहां रावल पिण्डीके तीस चालीस श्रावक चतुर्मासे की विनती को आए और वहांसे मालेर कोटला में जाकर श्री श्री १००८ पूज मोती रामजी महाराजसे विनती करके आपके चतुर्मासे की आज्ञा लेआए इस लिए आपका सं० १९४८ का चतुर्मासा रावलपिण्डी का स्वीकार हुआ ।

सं० १९४८ वि० का चातुर्मास्य रावलपिण्डी नगर में ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं० १९४८ वि०का चतुर्मासा रावलपिण्डी नगरमें हुआ। स्याल-कोटकी भांति यह नगर भी जैनियों की अधिकाधिक संख्यासे सुशोभित है लोगोंको आपके चतुर्मासाकी

स्वीकृति पर अति प्रसन्नता हुई। जब आपने रावल पिण्डीकी ओर विहार किया और ग्रामानुग्राम होकर जेलम पधारीं तो वे लोग बड़े उत्साहसे दो तीन सौ की संख्यामें जेहलमके पड़ाव पर ही आउपस्थित हुए इनमेंसे कई श्रावक और श्राविका तो पांव प्यादा ही रावलपिण्डी तक साथ गए जिस दिन आप रावलपिण्डी पहुंची उस दिन नगर भरमें मानों एक मेला था लोग जैनियों की भक्ति देखकर आश्चर्य करते थे जब आपके व्याख्यान होने लगे तो जैन बिरादरीके अतिरिक्त अजैन लोग बहुतायतसे आप की प्रशंसा सुन २ कर आने लगे और धर्मकी बड़ी उन्नति हुई, जिन लोगों को कोई शंकायें थीं उन् लोकोने रीतिपूर्वक चर्चा करके अपनी शंकायों की निवृत्ति की और प्रसन्नतापूर्वक आप की प्रशंसा करने लगे।

एक दिन रायबहादुर सर्दार सोभासिहजी भी आपकी सेवामे व्याख्यान सुनने को पधारे और अपने साथ बताशोके बड़े बड़े दो टोकरे भी लाए उन्होंने आपका उपदेश बड़े ध्यानसे सुना और व्याख्यानके समाप्त होने पर आपकी सेवामें प्रार्थना की, कि पहले आप इसमेंसे कुछ चढ़ावा लेलेवें और

को लोगोंमें बांट देनेकी आज्ञा देवें। श्रीमहासतीजी महाराजने कहा कि भाई साहब हमलोकतो गृहस्थियों के घरोंसे निर्दोष पदार्थ स्वयं याचना करके लातेहैं परन्तु जो वस्तु हमारे लिए रुपया ख़र्च कर ख़रीदी जावे अथवा हमारे लिए बनाई जावे व मकानपर लाई जावे हम उसे अंगीकार नहीं करते हैं किन्तु हमारी जैन साधुओं की वृत्ति ही ऐसी है।

यह वचन सुनकर उक्त सर्दार साहब जैन मुनियों की निर्लोभता पर बड़े प्रसन्न हुए और वह प्रसाद उपस्थित सज्जनोंमें बांट दिया।

और कई कुरीतिआं जो वहां की जैन बिरादरी में प्रचलित थीं वह आपके पवित्र उपदेशके प्रभाव से दूर होगई। और जो लोक दूर दूरसे आपके दर्शनार्थ आतेथे उनका आदर सत्कार रावलपिण्डी वाले श्रावक भली भांति करतेथे अर्थात् जब उनको सूचना मिलती कि, अमुक नगरसे अमुक गाओंसे लोग आते हैं तो वे अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी अभ्यर्थनोंको (लेनेको) रेलवे स्टेशनपर जाते और अंगरेज़ी बाजेके साथ उनको नगरमें लाते उनके रहने का उचित प्रबन्ध करते और यात्रियोंको खान पानके लिए ऐसे बढ़िया भोजन अपने घरसे बनवा

कर देते कि जैसे व्याह शादिओं के अवसर पर दिये जाते हैं।

जज साहब का प्रश्न मुक्तिके विषयपर।

रावलपिण्डिमें जैन सभा भी प्रतिष्ठित है जिसमें दो दिनके लिए जैनबिरादरीने अपना सर्व साधारण उत्सव किया और श्री महासती पार्वतीजी महाराज के चरणोंमे भी प्रार्थना की, कि आप हमारे उत्सवमें पधारें और श्रोता जनोको अपनी पवित्र वाणीसे धर्मका लाभ पहुंचावें किन्तु इसमें कारण यह था कि एकतो उसमें प्रत्येक मतके मैम्बरोंको सम्मिलित होनेका समय दिया गया था और दूसरे श्री महासतीजी महाराजके पधारने की सूचना सवको थी इसालिये बहुत मतोंके लोग इस उत्सवमें सम्मिलित हुए। जिसमें राय नाराण दास साहव जज्ज भी पधारे थे, आपने व्याख्यानमें मद्पान और मांस भक्षण का निषेध किया और अहिंसा और सत्यको परम धर्म वतलाया सभासदोने आपके उपदेशको वड़े ध्यानसे सुना और पश्चात् जज्ज साहवने मुक्तिके विषयमें प्रश्न भी किया जो नीचे लिखा जाता है।

प्रश्न—जज साहव आप मुक्ति किस प्रकार मानते हैं।

उत्तर श्री महासती पार्वती जी महाराज— जीव (चेतन पदार्थ) कर्म (जड़ पदार्थ) अर्थात् जीवके संचित किए हुए कर्म जो सूक्ष्म शरीर अर्थात् तैजस कारमान शरीरमें रहते हैं जिसको अन्तःकरण भी कहते हैं सो साधनाओंद्वारा इस कर्म बंधसे अबंध होकर परमात्म पदको प्राप्त कर सर्वज्ञतारूप सर्वानन्दमें सदैव रहनेको मुक्ति मानते हैं।

जज्जसाहब—हमारे ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदिक पुस्तकोंमें तो मुक्तिका स्वरूप ऐसे लिखा है कि चार अर्ब बीस कोटि वर्ष प्रमाण एक कल्प होता है वह ईश्वरका दिन होता है अर्थात् इतने काल तक सृष्टिकी स्थिति होती है जिसमें सब जीव शुभाशुभ कर्म करते हैं फिर इतने ही वर्ष प्रमाण विकल्प अर्थात् ईश्वरकी रात्रि होती है जिसमें ईश्वर सृष्टिका संहार करलेता है परमाणु आदि कुछभी नहीं रहते तब सब जीवोंकी मुक्ति हो जाती है अर्थात् सब जीव सोए रहते हैं फिर विकल्पके समाप्त होने पर कल्प काल आरम्भ हो जाता है उस समय ईश्वर फिर सृष्टि रचता है तब सब जीव मुक्तिसे सृष्टिपर भेज दिए जाते हैं तब वे शुभ अशुभ कर्म

फिर करने लगजाते हैं यह प्रवाह रूप अनादि इसी प्रकार चलाआताहै और इसी प्रकार चलाजायगा।

श्री महासती पार्वती जी महाराज--

भला यह मुक्ति हुई कि मज़दूरोकी रात हुई जिस प्रकार मज़दूर दिन भर मज़दूरी करते रहे और रातको टोकरी और फावड़ा सिरहाने रख कर सो रहे और प्रातःकाल उठ कर फिर वही दशा। परन्तु एक और भी अंधेर की बात है कि कल्पके समाप्त हो जाने पर जब सब जीवों की मुक्ति हो जाती है तो आपके कथनानुसार जो पापी हिंसक दुष्ट कसाई आदिक हैं उनको भी मुक्ति मिल जाती है और जो मुक्तिके लिये सांसारिक सुखो को अर्थात् गृहस्थाश्रमको छोड़ कर ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंका साधन करते हुए आयुको पूर्ण करते हैं वही मुक्ति उनको मिलती है तो बतलाईये कि जो धर्मात्मा पुरुष संध्या गायत्री आदिका जाप जपते हैं और वेदानुकूल यज्ञ हवन आदि अथवा और कई दया सत्यादि शुभकर्मो मे आयु व्यतीत करते हैं, और जो पापी हिंसक आदिक हिंसा झूठ चोरी व्यभिचार आदि कुकर्मोंमें आयु व्यतीत करते हैं, वे भी कल्प समाप्त होने पर मुक्तिको प्राप्त कर

लेते हैं तो अब आप ही विचारें कि धर्मात्माओं और पापियोंमें क्या भेदरहा अर्थात् धर्मात्माओं के धर्मका फल भी मुक्ति और पापिष्टों के पापका फल भी मुक्ति तो फिर पुण्य और पापमे क्या भेद रहा प्रत्युत पापी बड़े लाभमें रहे क्योंकि मनमाने काम (ऐसो असरत) भी कर लिये अर्थात् मांस खाना मदपीना व्यभिचार करना और हिंसा मिथ्यादि अनेक अत्याचार करलेने फिर कल्पके अन्तमें झट पट मुक्तिके परमानन्दमें जा सम्मिलित होना अर्थात् कल्पके समाप्त होने पर दोनों मुक्तिमें भेज दिये गये और विकल्पके समाप्त होने पर दोनों ही मुक्तिसे निकाल दिये गये, क्या इसी करतूर पर ईश्वरको न्यायकारी मानागया है, बस ऐसी मुक्ति को और ऐसे न्यायवाले ईश्वरको तो वही लोग मानेंगे जो शास्त्रोंके तत्वज्ञानसे अनभिज्ञ होंगे।

जज्जसाहब—हां जी आर्यसमाजियों में तो ऐसा ही मानते हैं हां इतना तो अन्तर है कि जैसे १२ घण्टे का एक दिन और १२ घण्टे की एक रात्रि होती है सो धर्मात्माओको तो घण्टा दो घण्टे पहले मुक्ति मिल जाती है और शेष सब जीवों को १२ घण्टे ही की मुक्ति मिलती है।

श्री महासती जी महाराज–हा ! यह मुक्ति क्या हुई यह तो बड़ा ही अन्याय हुआ क्योंकि ऐसा माननेसे तो पूर्वोक्त धर्मात्माओं का धर्म ही निरर्थक हुआ और पापियों का पाप भी निष्फल गया क्योंकि जिन्होने अशुभ कर्म (पाप) किये उन को भी १२ घण्टेकी मुक्ति मिलेगी और धर्मात्माओं को भी १२ घण्टे की क्या हुआ जो तेरह चौदह घण्टेकी मिल गई। किसी ने कहा भी है कि––

"खञ्जर तले किसीने टुक दम लिया तो फिर क्या"

अर्थात् मुक्ति वह होती है जो फिर जन्म मरण के दुःख का खटका न रहे (बंधसे अबंध होजाय) (फिर बंधमे न पड़े)यदि फेर बंधमें पड़ेतो मुक्ति कैसी।

(नोट) मुक्ति के विषय में।

नोट––श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने यह भी कहा है कि, इस पूर्वोक्त कथनके अनुसार यह भी सिद्ध होता है कि, इस समाजमे मुक्ति मानी ही नही क्योंकि,मुक्तिसे पीछे लौट आए तो पुनरावृतिः (आवागमन) ही रही जैसे और योनियामेसे। जैन मे तो अपुनरावृतिः अर्थात् आवागमन से रहित होजाने को मुक्ति माना है जिसका कारण यह है

कि, स्थूल शरीर तो वारम्वार कर्मानुसार वनता है और टूटता है (विनाश) होता हे परन्तु सूक्ष्म शरीर (अन्तःकरण) जिसको जैनमें तेजस कारमाण शरीर कहते हैं, जिसको मतान्तरी लोक कर्मक शरीर भी कहते हैं। जिसका गुण लक्षण विशेप करके राग द्वेष इच्छा संज्ञादि है अर्थात् इच्छा का (चाह का) होना है जो कर्मों का वीज रूप है वह परवाह रूपसे साथ ही रहता है जिसके कारण पुनः पुनः जन्म मरण होता है जैसे भूख का कारण जठराग्नि है यदि जठराग्नि बुझ जाय तो भूख नहीं लगती ऐसे ही जिसके राग द्वेष इच्छा संज्ञादि दोप ज्ञान वैराग्यादि के बलसे नष्ट होजाएं तो पूर्वोक्त अन्तःकरण भी नष्ट होजाता हे। तब फिर जन्म नही होता जब जन्म नहीं तो मरण कहां इस प्रकार जन्म मरण (आवागमन) से रहित होजाता है अर्थात् स्थूल शरीर (देह) के त्याग के साथ ही सूक्ष्म शरीर (देह) अन्तःकरण का भी त्याग होजाता है तव विदेह आत्मा (मुक्तात्मा) होजाता है अर्थात् सर्वज्ञ सदैवके लिये सर्वानन्दमें रम रहता है। यथा श्लोक–

श्लोकः–दग्ध वीजं यथा युक्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्म वीजं तथा दग्धं नारोहंपि भवाङ्कुरः॥

अर्थः—जैसे जला हुआ वीज अङ्कुर पैदा नहीं करताहै तैसे ही जिसका अन्तःकरण चाहरूप वासनाओ का समूह कर्म वीज नष्ट होजाताहै वह भवाङ्कुर आरोपण नहीं करता अर्थात् जन्म धारण नहीं करताहै अर्थात् कर्म वन्धसे अवन्ध होजाताहै(मुक्त होजाताहै) इत्यर्थः नोट—इसविषयका अधिक स्वरूप देखना होतो श्री१००८महासती पार्वतीजी विरचित (मुक्ति निर्णय प्रकाश)नामक है पुस्तक जो सं० १९७३ वि० में छपाहै वहां से देख सकते हैं।

जज्ज साहव आपका यह उत्तर सुनकर प्रसन्नतापूर्वक कुछ ठहरकर आप वेदों को ही सत्य शास्त्र मानते हैं अथवा कोई और ?

श्री महासतीजी महाराज—क्या आप लोक वेदों के सिवा और शास्त्रों को नहीं मानते।

जज्ज साहव—नहीं।

श्री महासतीजी महाराज—क्यों ?

जज्ज साहव—वेद ईश्वरके वनाए हुए हैं इस लिये यही सत्य मानने योग्य हैं।

श्री महासती—मुसलमान लोग कहते हैं कि. कुरान शरीफ़ खुदा का वनाया हुआ है, यह कैसे।

जज्ज साहब—चुप।

श्री महासती जी महाराज—इसमें यह तो बुद्धिमानोंको सोचना ही पड़ेगा कि दोनोंमें सचाई कहां तक है, पहले तो यह बतलाओ कि जिसको आप लोक ईश्वर कहते हैं, उसीको मुसल्मान खुदा कहते हैं व खुदा कोई और है।

जज्जसाहब—जिसको ईश्वर कहते हैं उसीको खुदा कहते हैं खुदाकी सृष्टि कोई और तो नहीं है।

श्री महासती जी महाराज—अब सोचने की बात यह है कि वेदोंका कर्त्ता भी ईश्वर है और कुरान शरीफ़का कर्त्ता भी ईश्वर ही ठहरा क्योंकि खुदा कोई और तो है ही नहीं इसलिये जिन कृतिओंका कर्त्ता एक है तो उन कृतिओंमें भेद कैसे आसकता है, परन्तु वेद और कुरानमें तो दिन रातका अन्तर है यह क्या।

जज्जसाहब—(कुछ सोचते रहे)

श्री महासती जी महाराज—सोचते क्या हो, क्या तो ईश्वर और खुदा न्यारे २ दो मानने पड़ेंगे और क्या वेद और कुरान इन दोनोंको एक मानना पड़ेगा क्योंकि एक ही कर्त्ताकी कृति होनेसे

केवल भाषा का भेद मानां जायगा जैसा कि वेद संस्कृतमें और कुरान अरबीमें-और क्या ऐसा माना जायगा जैसा जैन शास्त्रोंमें पाया जाता है कि ईश्वर निराकार होनेसे निष्कर्म है इस लिए न तो ईश्वरके बनाए हुए वेद हैं और नां ही खुदाका बनाया हुआ कुरान है, किन्तु वेद ऋषियोने बनाए हैं और कुरान पैग़म्बरका बनाया है क्योंकि वेदोंमे उनके बनाने वाले ऋषियों के नाम भी आते हैं। जैसे (१) अग्नि (२) वायु (३) आदित्य (४) अंगिरा (५) मधुछन्दस (६) अघमर्षण (७) पराशर इत्यादि और कुरानसे भी सिद्ध होता है कि किसी पैगम्बर का बनाया हुआ है क्योंकि कुरान का पहला ही कल्मा यह है—

" बिस्मिल्ला अल् रहमान उल् रहीम "

जिसके शब्दार्थ यह है कि (बे) के अर्थ साथ (इस्म) के अर्थ नाम (अल्ला) के अर्थ पवित्र परमेश्वर (परमेश्वर कैसा है) (अल् रहमान उल् रहीम) के अर्थ निर्दोषों पर दया (कृपा) करने वाला और दोषीयो (पापीयो) को भी क्षमा करने (बखसने) वाला।

इससे सिद्ध हो ग्रया कि कुरानके बनाने वाला

कोई और है क्योंकि वह बनाते समय कहता है कि पवित्र परमेश्वर जिसकी महिमा वर्णन कर चुका हूं उसके नामसे बनाता हूं यदि कहोगे कि कुरान खुदाका कल्मा है (खुदाने खुद बनाया है) तो इसमें सवाल पैदा होगा कि कब और क्यों बनाया और अल्ला का अल्ला कौनथा जिसका नाम लेकर बनाता है वगैरा २ और इसके अतिरिक्त यह भी है कि परमेश्वर आप ही अपनी महिमा नहीं गाता ॥ अब आप इन तीनों बातोंमेंसे कौनसी को युक्ति युक्त मानोंगे ।

जज्जसाहब—(तनक धीरेसे) तीसरी ही ठीक जान पड़ती है, इसके पश्चात् उसदिन की सभा विसर्जित हुई ।

दोनों पार्टियोंका आपको मध्यस्थ बनाना

पाठक ? उन दिन आर्य्य समाजियोंकी दो पार्टियां होने वाली थीं जो प्रायः इन नामोंसे प्रसिद्ध थीं—

(१) घास पार्टी

(२) मास पार्टी

दूसरे दिन दोनों पार्टियोंके महाशय आपकी सेवामें उपस्थित हुए और उन्होने आपके चरणोंमें यह प्रार्थना की कि हम आपको इस समय दोनों

पक्षोंके मध्यस्थ करना चाहते हैं अर्थात् आप हमारी दोनों पार्टियोंके संबंधमें अपनी सम्मति प्रगट करें कि प्रधान सम्मति किस पार्टीकी है।

इस पर श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि ठीकहै? पहले घास पार्टी वाले बोले—हमारी सम्मतिमे मांस खाना और मद्यपीना अयोग्य है अर्थात् मांसका न खाना और मद्यका न पीना हम आर्य्यों का परम धर्म है आपकी इस विषयमे क्या सम्मति है।

इस पर आपने दूसरी पार्टीको कहा कि आप भी अपनी सम्मति प्रगट करें, तब मांस पार्टी वाले बोले कि हमारी सम्मति यह है कि जिह्वाके स्वादके लिये मांस मदिरा न खाना चाहिये परन्तु देहकी रक्षाके लिये अर्थात् रोग आदिक अवस्थामें खाने का दोष नहीं।

पाठक! देखिए कलियुगका प्रभाव कि अभी यह मत निकला और अभी इनमें फूट भी आ वसी जिसने सोसायटीमें ही भेद डालदिया।

जब श्री महासती पार्वती जी महाराजने दोनों पार्टियोंकी सम्मतियोको सुन लिया तो कहा कि आपका यह कथन तो सत्य है कि मांस न खाना

और मद्य न पीना आर्य्य धर्म है परन्तु दूसरी पार्टी का यह कहना कि देह रक्षाके निमित्त खालेनेमें कोई दोष नहीं सो यह बात विचारणीय है। क्योंकि इस नियम से यह आवश्यक नहीं कि मांस मद्यके सेवनसे ही देहकी रक्षा होती है अर्थात् मांस और मद्यसे रोग अवश्य दूर हो जाते हैं नहीं नहीं मांस मद्य के सेवन करते हुए भी देहका नाश हो जाता है अर्थात् मांसाहारी भी अमर नहीं रहते इसलिये इस विनाशमान देहके लिये अपने आर्य्य धर्मके विरुद्ध मांस मद्यका सेवन करना मानो सत्य धर्मको छोड़ना है इस लिये सत्य सम्मति यही है कि आर्य्य धर्म मांस मद्के सेवन करनेसे कदापि स्थिर नहीं रह सकता।

आपके इस निर्णयको सुन कर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और सभासदोंमें से बहुतोंके हृदयमें यह चिन्ह होगया कि मद्य मांसके परित्यागका ही नाम आर्य धर्म है और सभा आपकी प्रशंसा करती हुई विसर्जित हुई।

महासती श्री पार्वती जी महाराजके उपदेश से उपकार।

बहुत भाइयोंने अभयदान (जीवरक्षा)के लिये कुछ रुपया जमा कर लिया और कई भाइयोंने

जूआ सतरञ्ज गंजफा चौपड़ आदिक का खेलना छोड़ दिया और कई भाईयोंने भांग, तमाकू, चड़स, गांजा, अफीम, चुरट, सिगरट, कोकिन, बीड़ी, पान आदिक सब प्रकारके नशा पैदा करने वाले पदार्थों के सेवन करनेका त्याग कर दिया और बहुत भाइयों ने हाड, चाम, का पहरना और शस्त्रकी जात चक्कु करद, छुरी, आदिकका व्यापार (बेचने) का परित्याग कर दिया।

और कई भाइयोंने गौ, बैल, बच्छा आदिक पशुओं का बूचड़ कसाब आदिक मलेच्छोंके देना छोड़ दिया और कई भाइयोंने विवाह बरात आदिक में वेश्या भांड आदिकके नाच लेजाने (नाटक कराने का) त्यागकर दिया और बहुत भाइयोंने नित प्रति सामायिक का करना स्वीकार किया।

किं बहुना इस चतुर्मासामे रावलपिण्डीके श्रावक व श्राविकाओंने दान, शील, तप, भावना का बड़ा ही लाभ उठाया और दया पोसा लग भग डेढ़ सहस्र और सामायिक अनुमान डेढ़ लाख श्रावक श्राविकाओंमें हुई और आठके थोकड़े (अठाइएं) १४ ग्यारह का थोकड़ा १ बारह का थोकड़ा १ तेरह का १ चौदह का १ पंद्रहके थोकड़े दो और पांच २ चार २ दिनके व्रत बहुत

हुए और आपके विहारसे पहले आपको पचरंगी तपस्या की भेंट दी गई चतुर्मासा समाप्त होने पर आपने वहां से विहार कर दिया।



पाठकगण! श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजके जीवनके कथन सम्वत् १९४८ तक इस पुस्तकमें बहुत संक्षेपसे वर्णन किये जाचुके हैं, वाकी १९७०तकके वर्षों के कथन (वृत्तान्त) द्वितीय भागमें प्रकाशित करूंगा, जिसमें सत्यधर्म उपदेशिका बाल ब्रह्मचारिणी जैनाचार्य्या श्री श्री श्री १००८ महासती श्रीमती पार्वती जी महाराजके धर्म उपकार और मनोरञ्जक हितोपदेश जो आत्मज्ञान, वैराग्य, त्याग, तथा साधुधर्म, गृहस्थ धर्म, तथा ब्रह्मचर्य्य धर्म, क्षमा धर्म, विनय धर्म के विषय मे और आर्य्य समाज, मूर्तिपूजक, तेरह पन्थी आदिकोंसे प्रश्नोत्तरों का कथन द्वितीय भागमें वर्णन करूंगा। जिनके पठन और श्रवण करने से स्त्री व पुरुष अपने आत्माके सुधार का महालाभ उठावेंगे अथवा जिन सज्जनों को श्रीमहासती पार्वती जी महाराजके दर्शन व व्याख्यान श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ होगा वे सज्जनभी इस पुस्तक के पठन करनेसे श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजकी

विद्वत्ता, न्याय शीलता, तथा सत्यासत्य का विचार इत्यादिसे परिचित होजायेंगे और उनको गृह पर ही धर्मका लाभ प्राप्त होगा। और जैन धर्मके मन्तव्य (माननेके) योग्य और कर्तव्य (करनेके) योग्य नियम जो सम्वत्१९४८की मर्दुमशुमारीपर स्यालकोटमें डिपटी कमिश्नर साहिब बहादुरने लाला रूपेशाह पालेशाह ओसवाल म्यून्सीपल कमिश्नरोंसेपूछा,कि आपकेनियम क्या हैं,और जैनधर्मके मतभेदोंके विषयमें नो प्रश्न पूछे तब उन्होंने उत्तर दिया कि आजकल श्री १००८ महासती श्रीपार्वतीजी महाराज रावलपिण्डीमें विराजमानहैं उनसे पता लेकर अर्ज़ कर देवेंगे, फिर उन्होने महासतीजी की सेवामें पत्र लिख दिया, जिस के प्रत्युत्तर (जवाब) में श्री महासतीपार्वतीजी महाराज ने जैन शास्त्रोके अनुसार जैनधर्मके१०दस नियम लिख कर और नौ प्रश्नोका उत्तर भी साथही लिखवादिया, जिसको लाला कृपाराम मन्त्री जैन सभा अमृतसर ने सम्वत् १९४९ वि०मे बाई राजमतीजी स्यालकोट निवासिनी की दीक्षा पर अमृतसरमें छपवाकर बांटे थे, फिर कई वार लुधिआना,पटिआला, जालन्धर, रावलपिण्डी,लाहौर आदि स्थानोमे हिंदी,उर्दू,अंग्रेजी, गुरुमुखी अक्षरों में प्रकाशित हो चुके हैं। यथा—

जैनधर्म के १० नियम।

(१) परमेश्वरके विषयमें—परमेश्वर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द, अयोनि, अमर, अमूर्ति, निष्कलङ्क, निष्प्रयोजन, निष्कर्म, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, परमपवित्र, सदा एक रस, आनन्दरूप, परमात्म पद को अनादि मानते हैं।

(२) जीवोंके विषयमें—जीव आत्माओं को अनन्त और अनादि मानते हैं।

(३) लोक (जगत्) के विषयमें—जड़ और चेतन के समूह जीव योनि रूप लोकको परवाह रूप अनादि मानते हैं।

(४) अवतारोंके विषयमें—वीतराग जिन देवों को जैनधर्म के बताने वाले धर्मावतार मानते हैं।

(५) मुक्तिके विषयमें—चेतनका कर्मोंके बन्धसे अवन्ध होकर परमात्मपद को प्राप्त करके सदैव सर्वज्ञ सर्वानन्द अवस्थामें रम रहने को मुक्ति मानते हैं।

(६) साधुधर्मके विषयमें—दया, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, इन पाञ्च महाव्रतों के पालने वालों को साधु मानते हैं।

(७) श्रावक धर्मके विषयमें—शास्त्रों के सुनने वाले गृहस्थ सच्चे देव गुरु धर्म पर निश्चय करके सुमार्ग पर चलने वालों को श्रावक मानते हैं।

(८) परोपकारके विषयमें—जिनोक्त द्वादशाङ्ग सत्य शास्त्रों के पठन पाठन आदि से धर्म की वृद्धि करने को परोपकार मानते हे।

(९) यात्रा धर्मके विषयमें—चतुर्विध संघतीर्थ के परस्पर धर्म विचार करने को यात्रा मानते हैं।

(१०) सिद्धान्तके विषयमें—श्रुतधर्म और चारित्र धर्म का सिद्धान्त मुक्ति का होना मानते हैं।

नोट—इन नियमो का सविस्तर अर्थ देखना चाहो तो जैनधर्म के नियम नामक छोटेसे पुस्तकके रूपमें (ट्रेकट) मे देख सकते हो।

जैनाचार्य्या श्री १००८ श्रीपार्वतीजी महाराज के

जीवन चरित्र का

प्रथम भाग समाप्तम्



जैनधर्म के १० नियम।

(१) परमेश्वरके विषयमें—परमेश्वर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द, अयोनि, अमर, अमूर्ति, निष्कलङ्क, निष्प्रयोजन, निष्कर्म, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, परमपवित्र, सदा एक रस, आनन्दरूप, परमात्म पद को अनादि मानते हैं।

(२) जीवोंके विषयमें—जीव आत्माओं को अनन्त और अनादि मानते हैं।

(३) लोक (जगत्) के विषयमें—जड़ और चेतन के समूह जीव योनि रूप लोकको परवाह रूप अनादि मानते हैं।

(४) अवतारोंके विषयमे—वीतराग जिन देवों को जैनधर्म के बताने वाले धर्मावतार मानते हैं।

(५) मुक्तिके विषयमें—चेतनका कर्मोंके बन्धसे अबन्ध होकर परमात्मपद को प्राप्त करके सदैव सर्वज्ञ सर्वानन्द अवस्थामें रम रहने को मुक्ति मानते हैं।

(६) साधुधर्मके विषयमें—दया, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, इन पाञ्च महाव्रतों के पालने वालों को साधु मानते हैं।

अशुद्धि शुद्धि पत्रम् ।

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१	११	विद्वान	विद्वान्	५७	२०	स्त्री	स्त्रि
७	५	पृष्टि	पृष्ठ	५६	१८	विशन	विष्ण
९	१	जाये	जाय	६१	२१	विराटरी	बरादरी
११	९	दुस्य	दु ख	६२	३	सम्बधीओं	सम्बन्धियों
१३	४	घा	धा	६२	६	ननद	ननन्द
२३	६	शु	सु	६२	१२	मती	मति
२३	१८	विशेपन	विशेप	६३	७	श्रीत	श्राति
२४	३	प्यत	प्यत्	६३	१३	आप	आपका
२४	२०	दरस्यत	द्रष्यत	६३	१३	लाहारे	लाहौर
२५	३	मर्स	वर्ष	६४	१८	स्तोतर	स्तोत्र
२७	४	गुछ	गछ	६५	१८	प्रत्यृं	पर्यृं
२८	६	प्रवर्तनी	प्रवर्तिनी	६७	७	भेटा	भेंट
२६	२	महाभाग	महाभाग्य	६७	१२	णी	नी
३७	१५	पधारे	पधार	६७	२१	मान्	मान
३७	१७	फेर	फिर	७३	१३	पयान	प्रयाण
४३	४	जायेगे	जायगे	७३	१२	पला	पाला
४३	१०	श्रीमान	श्रीमान्	७५	१	ससरा	ससारा
४३	९	इसाई	ईसाई	७६	१६	रण्डओं	रण्डिओं
४४	११	जात	जाति	७६	२०	द्वितिया	द्वितीया
४४	११	पात	पाति	७७	१०	रमन	रमण
४५	२१	हिस्या	हिंस्या	७९	१६	सुफल	सफल
४६	३	अपने	अपनी	८२	१८	विराजी	विराजी
४६	१४	पट	छट्	८३	८	की	को
४९	४	श्रिष्ट	श्रेष्ठी	८४	१०	पहुंची	पहुचा
४६	२०	विशू	विपू	८७	८	" ?	"
५१	३	विघाडी	विघयाडी	८७	१०	।	?
५१	८	नसे	नशे	८७	१६	घर	घर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
८८	१	द्वेत	द्वैत
८६	१६	दुखी	दुःखी
६२	१३	शारीरिक	शारीरक
१०२	१३	विद्वान	विद्वान्
१०३	१	होती	होता
१०४	१८	भाविक	भावक
१०६	६	कमके	कौमके
१०६	८	कलव	क्रुञ्च
१०८	१७	जाय	जाय
११०	१७	बुद्धिमता	बुद्धिमान्
११०	१८	पैसा	पैशा
११०	२०	वणज्य	वाणिज्य
१११	२	मस्जिद	मसजिद
१११	१३	अमका	अमुक
१११	२०	विस्मत	विस्मित
११२	३	आश्रु	अश्रु
११२	४	खेम	क्षेम
११२	११	अदव	अदाब
११३	२	उन्हे	वे
११३	४	हयवान	हैवान
११३	५	गाय	गाये
११३	८	वगेरा	वगैरा
११३	१६	पीय	पी
११५	८	अये	अय
११८	२	देवता	देवता,
११८	६,	भापन	भाषण
११८	१६	परयत	प्रयत
१२२	७	हुडवी	हुंडी
१२२	६	परतीति	प्रतीति
१२५	१५	सहत	सहते
१२५	१७	भाइयों	भाईयो ?
१२६	८	बिल्लि	विल्ली
१३७	१६	करनेके	करने
१३८	७	कारणा	काणा
१४०	११	निरूपम	निरुपम
१४२	६	गवन	गमन
१४२	१०	वेग	वैग
१४३	८	नर्क	नरक
१४४	३	शूद्रो	शूद्रों
१४५	१४	रणे	रणों
१४६	६	है	हैं
१४७	१४	हैं	हों
१५२	१३	गई	गई
१५४	१५	मै	मैं
१५५	२	क	कम
१५६	७	देवा	देव
१६३	६	अकज्ञ	अकज्ज
१६८	११	थोडा	थोडे
१६६	१	रहगई	रहगई कोई झाडीकी कोई पहाडी की ओर
१६९	८	दिय	दिया
१६९	९	रथनेमि	रहनेमि
१७०	४	पिंटोआ	पिण्डिआ
१७१	३	न्नु	न्तु
१७३	४	न कुल	गधन कुल
१७३	१५	गरू	गुरू
१७४	८	किरोड	करोड
१७५	२	कूबेर	कुबेर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१६३	२	प्रधनाता	प्रधानता
१६३	२१	कैवर्ती	कैवर्तो
१६४	८	वान	वान्
१६४	१६	वान	वान्
१६६	२	और	तो
१६६	९	हाइ	हाई
१९७	६	परिक्षा	परीक्षा
१६६	१९	अवृत	ज वृत
१६८	२१	वेवश	विवश
२०१	३	विपाद	विषवाद
२०३	५	चण्डाल	चाण्डाल
२०३	६	फींवर	फीवर
२०३	६	पामर	पामर
२०५	११	अरव्य	अरुज
२०६	१३	कायिक	कायक
२०७	३	मुकदमे	मुकद्दमें
२१०	१८	श्लाक	श्लोक
२१०	१८	महा	महो
२११	१५	थोंचे	चौथे
२१९	१०	के	की
२२०	५	सग्रह	सग्रह
२२१	४	श्रोत	श्रोत्र
२२७	११	अवतीर्ण	अनुतीर्ण
२३६	१७	पुच्छ	पूच्छ
२३६	१६	राद	राध
२४१	४	कारना	करना
२४१	१७	त्रा	त्ता
२४४	१	साक्षि	साक्षी
२४५	१७	भाइयो	भाईयो
२४६	७	राजी	रामजी
२४८	२०	दक्खन	दक्षिण
२५०	६	शन	शन
२५०	१७	गोतम	गौतम
२५१	८	हैं	है
२५२	१३	कस्तुरी	कस्तूरी
२५५	३	रेगा	रता
२५५	७	पडेगा	पडता है
२५५	१८	टुकड	के टुकड़के
२५६	१३	ब्राह्मणो से	ब्राह्मण से
२५६	११	अन्वार्थ	अन्वयार्थ
२६२	२०	वालो	वालों
२६३	१७	णाम्	णा
२६३	१८	स्त्रिया	स्त्रिय
२६५	१३	दन्तु	तन्तु
२६५	२१	लिखने	लेख
२६६	३	ईर्षा	ईर्ष्या
२६७	२०	(अतिकठिन)	(अतिउत्तम)
२६७	२१	महाराने	महाराजने
२६८	१	पर्क	परक
२६८	३	को	के
२६८	४	पर्क	परक
२६६	७	आत्म	आत्मा
२७१	१०	गले	लगे
२७२	१८	कि किसी	किसी
२७१	१०	समा	सामा
२७५	११	भाई	भाइ
२७६	४	मह	महा
२७७	६	मक्ष्यादि	मक्षणादि
२७७	७	सर्वो	सर्वो
२७७	६	पर्य्यूपन	पर्य्यूपण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२७७	१०	सव्रत	सवत्
२७७	१२	कडा	कड़ाह
२७८	४	हुश्यार	होशियार
२७८	७	लक्षमन	लक्ष्मण
२७६	६	१७१८	१७२०
२८७	१६	होता	होती
२८७	१६	रहा	रही
२८७	२०	शनै	शनैः
२८८	१	सतकारादि।	सत्कारादि
२८६	८	(सिकार)	(शिकार)
२८६	१०	जूही	यूही
२६०	५	सिवा	सिवाय
२६०	१७	प्रवेश	प्रविष्ट
२६१	२०	तदानन्तरानि।	तदमतरही
२६२	४	धीर्य	धैर्य
२६२	१७	मत्यु	मृत्यु
२६५	२	पेट	खेद
२६५	७	निखने	लिखने
२६५	७	अत्राय	अन्तराय
२६६	८	मासे	मांसे
२६६	२०	अटाईया	अटाइया
३००	१८	नॉ	ना
३०४	१६	घएटे	घएटा
३०७	८	नामक है	नामक
३११	१४	आदिक	आदिकी

इत्यादि इन से अतिरिक्त इस पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटी यदि पाठक महाशयों की दृष्टि गोचर होय तो हितेच्छुयन कर हमको सूचना देने की कृपा करेंगे तो हम उनके आभारी होंगे और द्वितीयावृत्ति में शुद्ध कराने के अधिकारी होंगे शुभ भूयात् ॥

